Registered with the Registrar of Newspaper for India
R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946
94251-01132

Supported by:
Kisaan Helpline
+91-7415538151

# मध्य भारत कृषक भारती

READ FOR ONLINE EDITION
Website: www.krishakbharti.in
E-mail: bhartikrishak75@gmail.com

ISSN-2582-5976

हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली मासिक पत्रिका

वर्ष-20 अंक-12 ग्वालियर, मार्च -2026 मूल्य 30 रुपए

## होली की हार्दिक शुभकामनाएं

रंगोत्सव पर काव्य की पिचकारी गह हाथ।
शब्द-रंग से काजिये, तर अपना सिर-माथ।।

*****

फागें, होरी गाइये, भावों से भरपूर।
रस की वर्षा में रहें, मौज-मजे में चूर।।

*****

भंग भवनी इष्ट हों, गुझिया को लें साथ।
बांह-चाह में जो मिले उसे मानिये नाथ।।

*****

लक्षण जो-जैसे वही, कर देंगे कल्याण।
दूर सभी मिटाइये, हों इक तन-मन-प्राण।।

*****

जल की महत्ता को बयाँ हम कर नहीं सकते।
बिना पानी के जीवन में हम रह नहीं सकते।।

## आओ खेलें सूखी होली....

### मध्य प्रदेशः प्रदर्शित कृषि उपकरणों का किया अवलोकन

किसान कल्याण एवं कृषि विकास मंत्री श्री एदल सिंह कंषाना ने टीटी नगर दशहरा मैदान में प्रदर्शित कृषि उपकरणों का अवलोकन किया।

### छत्तीसगढ़ : भारत मंडपम में एआई इम्पैक्ट समिट में स्टॉल बना आकर्षण केन्द्र

भारत मंडपम, नई दिल्ली में आयोजित एआई इम्पैक्ट समिट में छत्तीसगढ़ द्वारा स्थापित स्टॉल देश-विदेश से आए निवेशकों, तकनीकी विशेषज्ञों, उद्योग प्रतिनिधियों और आगंतुकों के लिए प्रमुख आकर्षण का केंद्र रहा।

श्री गणेशाय नमः

श्री सॉवलिया सेठ

# किसान कृषि सेवा केन्द्र

Gmail
Kisankrishisevakendramanasa@gmail.com

7692967419 9109726855

हमारी सेवाएँ:-

सभी तरह के उन्नत बीज- अश्वगंधा, अकरकरा, कलौंजी, तुलसी, केमोमाईल, चिया, जीरा, हल्दी, सौफ, सर्पगंधा, तरबूज एवं सभी प्रकार की सब्जिया एवं फुलो के बीज, कृषि दवाईया, उर्वरक, वर्मी कम्पोस्ट यूनिट, अजोला यूनिट, किसान के घर पर तैयार वर्मी कम्पोस्ट, जैविक खेती से संबंधित सभी कार्य, सभी फसलो के फोरोमेन ट्रेप, सोयाबीन स्पाईरल ग्रेडर, कृषि एवं किसान संबंधित समस्त प्रकार के ऑर्डर की विश्वास पूर्ण, पूर्ति करना हमारा परम ध्येय है।

कृषि विभाग एवं उद्यानिकी विभाग संबंधित सभी योजनाओं के पंजियन किए जाते है।

उन्नत किस्म के नर्सरी के पौधे, मासिक, साप्ताहिक कृषि साहित्य सभी प्रकार की पत्रिका उपलब्ध है।

स्थान- पुराना टॉकीज, एल.आई.सी. ऑफिस के सामने, रामपुरा रोड़ मनासा जिला नीमच (म.प्र.) 458110

An ISO 9001:2008 Certified Company

# कृषि दर्शन®

खेत-खलिहान का राजा

1988

थ्रेशर 35HP हापर मॉडल

हडम्बा कटर थ्रेशर

ऑटोफीडिंग थ्रेशर

मक्का थ्रेशर

मिनी कम्बाईन थ्रेशर

रेज बेड सिड ड्रील

स्प्रे पंप 500 लि. गन बूम मॉडल

मोटर लिफ्टर

सुदर्शन इण्डस्ट्रीज

विक्रम नगर मौलाना, बड़नगर, जिला-उज्जैन-456771 (म.प्र.)
फोन : 07367-262235, मोबा.: 09827078882

वेब : www.krishidarshan.com, ई-मेल : krishidarshan@rediffmail.com

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# चुनावों में मुफ्त उपहारों के वादे क्या लोकतंत्र को कमजोर कर रहे?

**यह** भारतीय लोकतंत्र की विडंबना ही कही जाएगी कि राजनीतिक दलों ने मुफ्त की योजनाओं को चुनाव जीतने का जरिया ही बना लिया है। मतदाताओं को चंद आर्थिक लाभ व सुविधाएं देकर मुफ्त की रेवड़ियों को सफलता का शॉर्टकट माना जाने लगा है। यही वजह है कि कुछ राज्यों में आसन्न चुनाव से पहले मुफ्त की योजनाओं की संस्कृति के वर्चस्व को देखते हुए देश की शीर्ष अदालत ने तल्ख टिप्पणी की है। जिससे यह मुद्दा एक बार फिर राष्ट्रीय विमर्श में शामिल हो गया है। उल्लेखनीय है कि अगले दो-तीन महीनों में देश के चार प्रमुख राज्यों असम, पश्चिम बंगाल, केरल और तमिलनाडु में चुनाव होने जा रहे हैं। हालांकि, लोकतंत्र की कल्याणकारी अवधारणा के चलते लोकहित में चलायी जाने वाली जनहितकारी योजनाएं शासन का अनिवार्य स्तंभ भी रही हैं। लेकिन लक्षित समर्थन और चुनाव पूर्व दिखायी जाने वाली अतिरेक उदारता के बीच अंतर तेजी से धुंधला होता जा रहा है। देश की शीर्ष अदालत ने इस बाबत चेतावनी दी है कि मुफ्त की योजनाओं का अनियंत्रित विस्तार राज्यों के राजकोषीय अनुशासन को कमजोर कर सकता है। निस्संदेह, इस बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती है कि राज्यों का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वे विशेष रूप से कमजोर वर्ग के लोगों की खास तौर से देखभाल करें। हालांकि, जब राजस्व घाटे वाले राज्य मुफ्त की योजनाओं पर बड़ी रकम खर्च करते हैं, तो सरकारी खजाने पर दबाव और अधिक बढ़ जाता है। विडंबना यह है कि जिस धनराशि का इस्तेमाल बुनियादी ढांचे में सुधार, स्वास्थ्य सेवाओं को सक्षम बनाने और शिक्षा की सुविधा को समृद्ध करने के लिये किया जाना चाहिए, वो राशि अल्पकालिक राजनीतिक लाभ के लिये खर्च कर दी जाती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि राजनेता मुफ्त की बिजली, मुफ्त बस यात्रा और नकद राशि बांटने की होड़ में शामिल हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि लोकलुभावनवाद के आगे राजकोषीय विवेक कमजोर पड़ रहा है।

निस्संदेह, देश के सर्वोच्च न्यायालय ने इस बाबत तार्किक प्रश्न पूछा है कि राज्य मुफ्त की रेवड़ियां बांटने के बजाय रोजगार सृजन और कौशल विकास के लिये बजट प्रस्ताव क्यों नहीं पेश करते? इसमें दो राय नहीं कि रोजगार के नये अवसर पैदा करना जन साधारण के सशक्तीकरण का एक स्थायी रूप है। जो लोगों को स्वावलंबी बनाता है। वहीं दूसरी ओर वोटरों को लुभाने के लिये सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों द्वारा लगातार जारी की जा रही मुफ्त की योजनाएं लोगों को अकर्मण्य बना देती हैं। लोग परिश्रम से आर्थिक उपलब्धि हासिल करने के बजाय सरकारी सुविधा पर अधिक निर्भर हो जाते हैं। जरूरत इस बात की है कि कौशल विकास के जरिये लोगों को इस तरह सक्षम बनाया जाए जिससे उन्हें दीर्घकालिक व स्थायी लाभ मिल सकें। निस्संदेह,चुनावी निष्पक्षता के लिये यह आवश्यक हो गया है कि चुनाव से पहले घोषित की गई या लागू की गई लोकलुभावनी नीतियों व योजनाओं की गहन पड़ताल की जाए।

## फसल विविधीकरण से बदली धमतरी के किसानों की तक़दीर, रागी-दलहन ने खोले आय के नए द्वार

**रायपुर।** धान-प्रधान खेती के लिए पहचाने जाने वाले धमतरी जिले में अब कृषि विविधीकरण की नई तस्वीर उभर रही है। परंपरागत धान फसल के साथ-साथ जिले के किसान तेजी से फसलचक्र परिवर्तन को अपना रहे हैं और दलहन, तिलहन एवं मोटे अनाजों की खेती की ओर अग्रसर हो रहे हैं। सरसों, चना, मक्का के साथ रागी (मंडुआ) की खेती में बढ़ती भागीदारी जिले में सकारात्मक बदलाव का स्पष्ट संकेत है। यह परिवर्तन न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक बन रहा है, बल्कि भूमि की उर्वरता संरक्षण और जल संसाधनों के संतुलित उपयोग में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वर्तमान रबी मौसम में धमतरी जिले में दलहन फसलों की खेती लगभग 18,450 हे. क्षेत्र में की जा रही है। इसमें चना का रकबा लगभग 14,200 हेक्टेयर, अरहर 2,150 हे. तथा मसूर करीब 2,100 हेक्टेयर है। वहीं तिलहन फसलों में सरसों किसानों की पहली पसंद बनी हुई है। जिले में तिलहन फसलें लगभग 9,600 हेक्टेयर क्षेत्र में ली जा रही हैं, जिनमें 8,300 हेक्टेयर में सरसों तथा शेष 1,300 हेक्टेयर में अन्य तिलहन फसलें बोई गई हैं। मोटे अनाजों को बढ़ावा देने की दिशा में जिले में रागी फसल की खेती विशेष रूप से प्रोत्साहित की जा रही है। कम लागत, कम पानी में तैयार होने वाली और पोषण से भरपूर रागी छोटे एवं सीमांत किसानों हेतु लाभकारी सिद्ध हो रही है।


### सदस्यता ग्रहण करने एवं विज्ञापन प्रकाशन हेतु निम्न प्रतिनिधियों से सम्पर्क करें

| | | |
|---|---|---|
| छिंदवाड़ा ( म.प्र. ) | मुंगावली ( म.प्र. ) | उड़ीसा |
| रामप्रकाश रघुवंशी | भगवानदास चौबे | समीर रंजन नायक |
| 98272-78063 | 96854-88453 | 70422-31678 |
| *** | बलिया ( उ.प्र. ) | *** |
| | आर.एन. चौबे-94535-77732 | |
| नरसिंहपुर ( म.प्र. ) | पश्चिम बंगाल | हापुड़ ( उ.प्र. ) |
| नवीन शुक्ला: 89894-36330 | राजेश नायक-98831-57482 | मयंक गौड़: 83848-66823 |

### Online मंगाएं साहित्य

मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ में अत्यंत लोकप्रिय हिन्दी मासिक समाचार पत्रिका **मध्य भारत कृषक भारती** द्वारा प्रकाशित कृषि साहित्य अब आप ऑनलाइन भी खरीद सकते हैं। हमारी वेबसाइट **www.krishakbharti.in** पर जाकर **Purchase** को क्लिक करके ऑनलाइन ऑर्डर कर सकते हैं।


### वैज्ञानिक/लेखकों के लिए सूचना

प्रत्येक माह की 20 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को प्रिंट एडिशन में स्वीकार किया जाता है तथा 21 से 30 तारीख तक प्राप्त समाचार/लेख/फोटो फीचर को डिजीटल एडिशन में सम्मिलित किया जाना संभव हो सकेगा। लेख में मोबाइल नम्बर होना अनिवार्य है।

-संपादक

**मध्य भारत कृषक भारती** में प्रकाशित पाठ्य सामग्री में व्यक्त विचार वैज्ञानिकों/लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। किसी त्रुटि शंका या समाधान के लिये वैज्ञानिकों/लेखकों के पते प्रकाशित किये जाते हैं जिस पर संपर्क किया जा सकता है। सभी प्रकार के विवादों के लिये न्याय क्षेत्र ग्वालियर होगा। सभी पद मानसेवी हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in

मध्य भारत
# कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका

सदस्यता एवं विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें
0751-4070802

▪ वार्षिक ₹ 400 ▪ द्विवार्षिक ₹ 750
▪ पंचवार्षिक ₹ 1800

▪ वर्ष 20 ▪ अंक 12 ग्वालियर, मार्च 2026 मूल्य ₹ 30/-

**: सम्पादक मण्डल :**

प्रधान सम्पादक
राजू गुर्जर (MJC)
94251-01132
94245-22090

❖

प्रसार/मार्केटिंग टीम
डी.के. बरार
91791-85002, 70247-93010
महेश अहिरवार: 94251-48365

**: तकनीकी मार्गदर्शन/वैज्ञानिकगण :**

डॉ. व्ही.एस. तोमर (पूर्व कुलपति)
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय
***
डॉ. अर्पिता श्रीवास्तव
(Assistant Professor)
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
***
डॉ. आर.के.एस. तोमर
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि वि.वि. ग्वालियर (म.प्र.)
***
डॉ. अनिल कुमार सिंह (उद्यान वैज्ञानिक)
कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी (पूर्वी चम्पारण), डॉ.रा.प्र.के.कृ.वि.वि.,पूसा, समस्तीपुर

प्रो. (डॉ.) के. आर. मौर्य
पूर्व कुलपति, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय पूसा (बिहार), एवं महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय जयपुर (राजस्थान)
***
डॉ. रंजु कुमारी (स.प्रा. सह कनीय वैज्ञानिक)
पादप प्रजनन एवं अनुवांशिकी विभाग, नालन्दा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय (नालन्दा), बिहार कृषि वि.वि.,सबौर, भागलपुर
***
डॉ. भागचन्द जैन
प्राध्यापक एवं प्रचार अधिकारी
कृषि महाविद्यालय, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
***
डॉ. विश्वनाथ सिंह कंसाना
कृषि वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
कृषि विज्ञान केन्द्र दतिया (म.प्र.)

डॉ. विनीता सिंह, अध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
AKS विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)
***
तपस्या तिवारी पीएचडी शोधार्थी, मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आज़ाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)
***
बसंत कुमार दादरवाल
इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर साइंस बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी (उ.प्र.)
***
श्रीमती रिया ठाकुर (वैज्ञानिक उद्यानिकी)
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल: 9907279542
***
डॉ. मोहब्बत सिंह जमरा (असिस्टेंट प्रोफेसर)
पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू, (म.प्र.)

# अंदर के पन्नों पर

## मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़


- आजीविका सुदृढ़ीकरण में कृषि वानिकी की भूमिका 07
- गेंदे की उन्नत तकनीक से करें खेती 08
- गृह वाटिका: पोषण, पर्यावरण और आर्थिक लाभ 09
- अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष 2026 ... 10
- गपशुओं में एफिमेरल फीवर 11
- सरदार पटेल विश्वविद्यालय बालाघाट का कृषि ड्रोन 12
- श्वानों के बेहतर स्वास्थ्य हेतु विशेष उपयोगी सुझाव 13
- कृषि बजट 2026: दीर्घकालिक कृषि विकास की ओर निर्णायक कदम 14
- तपती गर्मी में सब्जियों की मुस्कान... 15
- फरवरी-मार्च के महीनों में आम... 16
- पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन में मार्कर सहायतित चयन... 17
- प्राकृतिक खेती: प्रकृति के संग खेती 18


## उत्तर प्रदेश


- आम की फूल अवस्था में रोग पहचान एवं रोकथाम ... 19
- खेती में संतुलन का विज्ञान : 20
- भारत मे प्रथम बार केरल ने 'बैसिलस सबटिलिस ... 21
- एग्रोनॉमी आधारित जैविक कीट प्रबंधन:... 22
- फसल अवशेष प्रबंधन के साथ गेहूँ की बुवाई: ... 23
- खेती का नया मंत्र: उत्पादन भी, लाभ भी 24
- कृषि मूल्य संवर्धन से बढ़ती किसानों की आय 25
- सहजन (मोरिंगा) का औषधीय उपयोग 26
- छोटा खेत, बड़ा मुनाफा: छोटे किसानों के लिए ... 27
- गेहूँ की अंतिम अवस्था का समेकित प्रबंधन:... 28
- पशुओं के गर्भावस्था से जुड़ी किसानों हेतु ... 29
- नसदार तोरई की वैज्ञानिक खेती 30
- धान का झुलसा (शीथ ब्लाइट) रोग:... 31
- बढ़ती खाद्य कीमतें: एक वैश्विक संकट 32
- संगठित किसान, समृद्ध किसान: 33
- कृषि संसाधनों का कुशल प्रबंधन: ... 34
- पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की सीधी बुवाई: ... 35
- जैविक खेती और किसानों का भविष्य 36
- सतत कृषि में जैव उर्वरकों की भूमिका एवं लाभ 37
- तरबूज की वैज्ञानिक खेती 38
- सतत कृषि में पादप प्रजनन और आनुवंशिकी की भूमिका 39
- उर्वरकों का असंतुलित उपयोग भारतीय कृषि, ... 40
- कृषि-वानिकी: टिकाऊ कृषि और ग्रामीण ... 41
- हल्दी की व्यावसायिक खेती: कम लागत में ... 42
- कमरख की उन्नत खेती 43
- जल बचत से दोगुनी पैदावार: ज़ायद फसलों... 44


## राजस्थान


- जैविक खेती की बढ़ती मांग और उससे जुड़ी चुनौतियां 45
- गेंदा: एक बहुउपयोगी गार्डन पौधा 46
- कृषि उपज मंडी समिति अधिनियम (APMC एक्ट) 47
- केले की खेती के लिए उपयुक्त उन्नत किस्मों की विशेषताएं 48
- वृक्षायुर्वेद आधारित औषधीय पादप विपणन मॉडल 49
- स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस: आधुनिक और टिकाऊ ... 50
- कृषि में टिकाऊ/पुनर्योजी खेती 51


## हिमाचल प्रदेश


- नदी तल पर कद्दूवर्गीय सब्जियां की खेती ... 52


## हरियाणा


- माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण: समस्या, परिणाम ... 53
- सब्जी फसलों में मधुमक्खी पालन:... 54
- गुलाबी सुंडी से बचाव हेतु कपास में अवशेष प्रबंधन ... 55


## बिहार


- जलवायु परिवर्तन और भारत का भविष्य: ... 56
- खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की भूमिका 57
- गरमा हरा चारा उत्पादन हेतु ज्वार की वैज्ञानिक खेती 58
- प्राकृतिक खेती के प्रमुख घटक एवं उनका महत्व 59
- देशी गायों की विशेषताएं एवं प्राकृतिक खेती में इनका महत्व 60
- जलवायु अनुकूल, पोषण सुरक्षा: बाजरा की खेती ... 61


## पंजाब


- गाजर की फसल में प्रमुख रोग, उनके लक्षण एवं समेकित... 62


## उत्तराखण्ड


- धान सघनता पद्धति: धान उत्पादन की आधुनिक तकनीक 63

# छिंदवाड़ा जिले की महिला किसानों की पहल को मिली प्रदेश स्तर पर सराहना

**छिन्दवाड़ा।** छिंदवाड़ा जिले के मोहखेड़ ब्लॉक की महिला किसान श्रीमती ज्योति सोमकुंवर ने प्राकृतिक खेती के क्षेत्र में अपने नवाचार, अनुभव और जमीनी प्रयासों से प्रदेश स्तर पर पहचान बनाने में सफलता पाई है। भोपाल के मिंटो हॉल में आयोजित "मनन 2026" (MANAN 2026) प्राकृतिक खेती विषयक कार्यक्रम में प्रदेश की महिला किसानों ने अपने अनुभव साझा किए, जिसमने छिंदवाड़ा जिले की ज्योति सोमकुंवर को भी अपने अनुभव साझा करने का अवसर मिला, जिसकी प्रदेश स्तर पर सराहना की गई। उप संचालक कृषि जितेंद्र सिंह ने बताया कि यह कार्यक्रम कृषि विभाग के सचिव निशांत वरवड़े (आईएएस) के मार्गदर्शन में आयोजित किया गया था। इस अवसर पर सचिव मध्यप्रदेश राज्य जैव-विविधता बोर्ड श्री अजय यादव (आईएफएस), उप संचालक कृषि (आईटी, आरकेवीवाय, पीकेवीवाय) सहित अन्य वरिष्ठ अधिकारीगण, निजी क्षेत्र, सिविल सोसाइटी संगठनों तथा किसान प्रतिनिधियों सहित लगभग 150 बहु-हितधारकों ने सहभागिता की। जिले के विकासखंड मोहखेड़ की महिला किसान एवं हकदर्शिका श्रीमती ज्योति सोमकुंवर ने हकदर्शिका संस्था से जुड़कर किसानों को शासन की विभिन्न योजनाओं से जोड़ने के अपने अनुभव साझा किए। उन्होंने बताया कि किस प्रकार वे गांव-गांव जाकर किसानों को उनके अधिकारों और शासकीय योजनाओं की जानकारी देकर उन्हें लाभान्वित कर रही हैं। उनके इस कार्य की जानकारी राज्य समन्वयक अमोल गावंडे (आरपीएलसी कार्यक्रम) द्वारा साझा की गई। वहीं नव गठित पांढुर्णा जिले के विकासखंड सौंसर से महिला किसान श्रीमती मीता धुर्वे एवं श्रीमती कविता सिरसाम ने भी बड़ादेव जैविक उत्पादक समूह के माध्यम से ग्राम जोबनढाना में सृजन संस्था के सहयोग से संचालित जैविक उत्पाद केंद्र (बीआरसी) की गतिविधियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि किस प्रकार जैविक उत्पाद बनाकर किसानों को प्राकृतिक खेती की ओर प्रेरित किया जा रहा है और इससे ग्रामीण स्तर पर रोजगार एवं आय के नए अवसर भी सृजित हो रहे हैं। मोहखेड़ एवं सौंसर ब्लॉक की जैविक उत्पाद केंद्र से जुड़ी इन महिला किसानों द्वारा प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के किए का रहे प्रयासों को प्रदेश स्तर पर सराहा गया। महिला किसानों की यह पहल न केवल अन्य किसानों के लिए प्रेरणास्रोत बनी है, बल्कि प्राकृतिक खेती को अपनाने की दिशा में एक मजबूत संदेश भी दे रही है।

# वनाधिकार अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन पर जिला स्तरीय कार्यशाला आयोजित

**सीधी।** मध्यप्रदेश शासन जनजातीय कार्य विभाग के आदेश-निर्देशों के तहत वनाधिकार अधिनियम 2006 के अंतर्गत वन संसाधनों के संरक्षण, संवर्धन एवं अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के उद्देश्य से 2 दिवसीय जिला स्तरीय मास्टर ट्रेनर प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन कलेक्ट्रेट सभागार सीधी में किया गया।

प्रशिक्षण कार्यक्रम में शासन के निर्देशानुसार शासकीय अधिकारी-कर्मचारी, अशासकीय सदस्य एवं जनप्रतिनिधियों की सहभागिता सुनिश्चित की गई। कार्यक्रम के दौरान जिला पंचायत के अतिरिक्त मुख्य कार्यपालन अधिकारी श्री धनंजय मिश्रा, सहायक संचालक श्री दीपक निगम, एसडीओ वन विभाग, समस्त जनपद पंचायतों के मुख्य कार्यपालन अधिकारी, नायब तहसीलदार, जनजातीय कार्य विभाग के मंडल संयोजक सहित विभिन्न विभागों के अधिकारी-कर्मचारी उपस्थित रहे। प्रशिक्षण सत्र में मास्टर ट्रेनर श्री कमल किशोर आर्मो एवं श्री शोबेंद्र कुमार सिंह द्वारा वनाधिकार अधिनियम 2006 के प्रावधानों, सामुदायिक वन संसाधन प्रबंधन, अधिकारों के संरक्षण तथा जमीनी स्तर पर प्रभावी क्रियान्वयन से संबंधित विस्तृत जानकारी प्रदान की गई।

## घोषणा-पत्र

### मध्य भारत कृषक भारती हिन्दी मासिक पत्र का विवरण

| | | |
|---|---|---|
| समाचार पत्र का नाम | : | **मध्य भारत कृषक भारती** |
| समाचार पत्र की भाषा | : | हिन्दी |
| समाचार पत्र की अवधि | : | मासिक |
| समाचार पत्र का प्रकाशन का स्थान | : | ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर (म.प्र.) |
| स्वामित्व का विवरण व पद एवं पूरा पता | : | **राजू सिंह गुर्जर** सी-5, बलराम नगर, भिण्ड रोड, गोला का मंदिर, ग्वालियर (म.प्र.) |
| प्रकाशक का नाम | : | **राजू सिंह गुर्जर** |
| राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| पता | : | सी-5, बलराम नगर, भिण्ड रोड, गोला का मंदिर, ग्वालियर (म.प्र.) |
| संपादक का नाम | : | **राजू सिंह गुर्जर** |
| पता | : | सी-5, बलराम नगर, भिण्ड रोड, गोला का मंदिर, ग्वालियर (म.प्र.) |
| जिस स्थान पर मुद्रण का काम होता है उसका सही तथा ठीक विवरण | : | **कंचन ऑफसेट** चिंतामणि शास्त्री की गली, साठ भाई की गोठ, लक्कड़ खाना, ग्वालियर, मध्य प्रदेश-474001 |
| प्रकाशन का स्थान | : | ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर (म.प्र.) |

मैं **राजू सिंह गुर्जर** घोषणा करता हूँ कि **मध्य भारत कृषक भारती** मासिक पत्र के संबंध में दिए गए उपरोक्त सभी विवरण सही और सत्य हैं।

हस्ताक्षर
**राजू सिंह गुर्जर**
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

**दिनांक:** 01 मार्च 2026

## खेत बना तालाब, बगिया बनी सहारा और कविता हुई लखपति

**रीवा।** जनपद पंचायत जवा के ग्राम पंचायत बराह की रहने वाली श्रीमती कविता सोनकर की कहानी महज़ एक व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है, बल्कि यह उन हज़ारों महिलाओं के लिए उम्मीद की किरण है जो घर की चारदीवारी से निकलकर खुद की पहचान बनाना चाहती हैं। एक समय था जब कविता के लिए परिवार की बुनियादी जरूरतों को पूरा करना एक चुनौती थी। लेकिन उनके भीतर कुछ बड़ा करने की तड़प थी। बदलाव तब शुरू हुआ जब वे मध्यप्रदेश राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत महालक्ष्मी स्वसहायता समूह से जुड़ीं। यहाँ से उन्हें न केवल आर्थिक मदद मिली, बल्कि आत्मविश्वास और सही दिशा भी मिली।

**कविता सोनकर की स्वावलंबन कहानी**

कविता ने हार न मानने का संकल्प लिया और समूह से 45 हजार रुपए का ऋण लेकर अपनी बंजर ज़मीन को उपजाऊ बनाने का निर्णय लिया। कविता ने मनरेगा के सहयोग से अपने खेत में तालाब खुदवाया और उसमें वैज्ञानिक तरीके से मछली पालन शुरू किया, जिससे आज वे सालाना एक लाख रुपए की शुद्ध आय अर्जित कर रही हैं। मछली पालन की सफलता ने उनके साहस को दोगुना कर दिया। उन्होंने 60 हजार रुपए का दूसरा ऋण लिया और मुख्यमंत्री की महत्वाकांक्षी योजना ÷एक बगिया माँ के नाम÷से जुड़ गई। उन्होंने अपनी भूमि पर अमरूद की बगिया लगाई। लेकिन उन्होंने खाली ज़मीन का भी सदुपयोग किया और पंक्तियों के बीच मिर्च की खेती शुरू की। मिर्च की फसल ने उन्हें तुरंत नकद आय देना शुरू कर दिया, जिससे परिवार का खर्च और बगिया का रख-रखाव आसान हो गया। कविता एक सफल उद्यमी के साथ ही आत्मनिर्भरता की मिसाल बन चुकी हैं। उनके पास आय के तीन सशक्त स्त्रोत हैं। उन्होंने मछलीपालन को सालाना आय का मुख्य जरिया बनाया, अमरूद की बगिया लगाकर दीर्घकालिक निवेश किया और नियमित घरेलू खर्च के लिए मिर्च की खेती की। यदि सही मार्गदर्शन और सरकारी योजनाओं का साथ हो, तो ग्रामीण महिलाएं आसमान छू सकती हैं। यह कविता की सफलता का मूल मंत्र है।

### मंत्री सिलावट ने क्षेत्र में पहुंचकर फसलों की स्थिति का लिया जायजा

# जल संसाधन मंत्री सिलावट के निर्देश पर प्रभावित क्षेत्रों में सर्वे और राहत कार्य तेज

**इन्दौर।** जल संसाधन मंत्री श्री तुलसीराम सिलावट ने बेमौसम बारिश एवं तेज हवाओं से प्रभावित सांवेर विधानसभा क्षेत्र के गांवों में गेहूं की फसल के नुकसान का त्वरित और निष्पक्ष सर्वे कर पात्र किसानों को शीघ्र मुआवजा प्रदान करने के निर्देश दिए हैं। उन्होंने क्षेत्र में पहुंचकर फसलों की स्थिति का जायजा लिया और किसानों से चर्चा की । उन्होंने कलेक्टर श्री शिवम वर्मा को निर्देशित किया कि सभी प्रभावित गांवों में सर्वे कार्य प्राथमिकता से पूर्ण कर प्रतिवेदन शासन को भेजा जाए, ताकि किसानों को समय पर राहत मिल सके। साथ ही प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के अंतर्गत बीमित किसानों को नियमानुसार बीमा लाभ दिलाने के लिए भी अधिकारियों को आवश्यक कार्रवाई करने को कहा गया है। उल्लेखनीय है कि गत दिनों बेमौसम बारिश एवं तेज हवाओं के कारण सांवेर विधानसभा क्षेत्र के कजलाना, बड़ोदिया खान, दर्जी कराड़िया, बालौदा टाकून, पोटलोद, चंद्रावतीगंज, पाल कांकरिया, रतनखेड़ी, बसान्द्रा, बीबीखेड़ी, खामोद आंजना, नाहरखेड़ा सहित आसपास के गांवों में अनेक स्थानों पर तैयार फसल खेतों में आड़ी (गिर) गई है, जिससे उत्पादन प्रभावित होने की संभावना है। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए मंत्री श्री सिलावट ने प्रभावित क्षेत्रों का दौरा कर गांव-गांव पहुंचकर खेतों में फसल की स्थिति का निरीक्षण किया तथा किसानों से चर्चा कर नुकसान की जानकारी ली। उन्होंने किसानों को आश्वस्त किया कि मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के नेतृत्व में प्रदेश सरकार प्रभावित किसानों के साथ है और उन्हें शीघ्र समुचित राहत प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। जल संसाधन मंत्री श्री सिलावट ने कहा कि किसान हितैषी सरकार किसानों को हर संभव सहायता उपलब्ध कराएगी और यह सुनिश्चित किया जाएगा कि किसी भी पात्र किसान को राहत से वंचित न रहना पड़े।

12/2025-26

डॉ. द्वारका अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

निशा चढ़ार एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

# आजीविका सुदृढ़ीकरण में कृषि वानिकी की भूमिका

## सारांश

कृषिवानिकी वह प्रणाली है जिसमें एकीकृत रूप से कृषि फसलों, वृक्षों और पशुपालन का समन्वय किया जाता है। यह न केवल पर्यावरणीय संरक्षण में सहायक होती है, बल्कि ग्रामीण समुदायों, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों की आजीविका को सुदृढ़ करने का भी प्रभावशाली माध्यम है। इस प्रणाली में किसानों को वृक्ष आधारित उत्पादों जैसेकृलकड़ी, फल, चारा, औषधीय पौधों तथा कार्बन क्रेडिट से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। यह लेख कृषिवानिकी द्वारा आजीविका सशक्तिकरण, आय विविधता, जोखिम प्रबंधन, और सतत आर्थिक विकास में निभाई जाने वाली भूमिका का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

## 1. प्रस्तावना

ग्रामीण भारत में आजीविका के अधिकांश स्रोत खेती, पशुपालन और वानिकी आधारित हैं। जलवायु परिवर्तन, वर्षा पर निर्भरता और फसल विफलता जैसे कारकों के कारण आजीविका अस्थिर होती जा रही है। ऐसे में कृषिवानिकी एक लचीली एवं विविधतापूर्ण प्रणाली के रूप में उभर रही है जो आजीविका को मजबूत करने में सहायक है।

## 2. कृषिवानिकी का ढाँचा और लाभ

* बहुस्तरीय उत्पादन प्रणाली- फसलें, वृक्ष और पशुपालन एक साथ
* लंबी और छोटी अवधि की आय- तात्कालिक आमदनी (फसलें), दीर्घकालिक आय (लकड़ी, फल, बीज)
* संपत्ति निर्माण- वृक्षों के रूप में स्थायी परिसंपत्ति

## 3. आय के विविध स्रोत

* **लकड़ी एवं इंधन-** शीशम, बांस, सागौन, यूकेलिप्टस
* **फलदार वृक्ष-** आम, आंवला, नींबू, जामुन
* **चारा एवं पत्तियाँ-** नीम, ग्लिरिसिडिया
* **औषधीय पौधे-** अश्वगंधा, तुलसी, गिलोय
* **कार्बन क्रेडिट-** जलवायु अनुकूलन हेतु आय का नया माध्यम

## 4. रोजगार सृजन और महिला भागीदारी

* वृक्षारोपण, नर्सरी प्रबंधन, बीज संग्रह, फल प्रसंस्करण
* महिलाओं के लिए स्वरोजगार के अवसर
* स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उत्पादों का विपणन

## 5. जोखिम प्रबंधन और लचीलापन

* सूखा, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं में वृक्ष आधारित प्रणाली अधिक सहनशील
* कृषिवानिकी फसलों की विफलता पर भी आय की निरंतरता बनाए रखती है

## 6. नीति समर्थन और योजनाएँ

* राष्ट्रीय कृषि वानिकी नीति (2014)

* मनरेगा, जलवायु अनुकूल कृषि परियोजनाओं में कृषिवानिकी का समावेश
* आईसीएआर, आईसीआरएएफ, नाबार्ड द्वारा तकनीकी मार्गदर्शन एवं वित्तीय सहायता

## निष्कर्ष

* कृषि वानिकी एक ऐसी सतत प्रणाली है जो पर्यावरण, जैव विविधता और आर्थिक सशक्तिकरण के त्रिस्तरीय लक्ष्यों को प्राप्त करती है। यह आजीविका के लिए एक सुरक्षित, लाभकारी और बहुआयामी विकल्प बन चुकी है। यदि इसकी वैज्ञानिक रूप से योजना बनाकर कार्यान्वयन किया जाए, तो यह ग्रामीण भारत की आर्थिक रीढ़ को मजबूत करने का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकती है।

# सीएम हेल्पलाइन शिकायतों के संतुष्टिपूर्ण निराकरण में छिन्दवाड़ा जिला इस माह भी ए ग्रेड में

**छिन्दवाड़ा।** राज्य स्तर से सीएम हेल्पलाइन शिकायतों के निराकरण में ग्रेडिंग जारी की गई, जिसमें इस बार भी छिंदवाड़ा जिला ए ग्रेड में शामिल रहा है। कलेक्टर श्री हरेंद्र नारायन द्वारा की गई सतत मॉनिटरिंग के फलस्वरूप 81.45 प्रतिशत वेटेज स्कोर और ए ग्रेड के साथ जिले ने यह उपलब्धि हासिल की है। कलेक्टर श्री नारायन द्वारा सीएम हेल्पलाइन शिकायतों की स्वयं नियमित समीक्षा की जाती है। उनके द्वारा विभागवार शिकायतों की गंभीरता से समीक्षा कर समयबद्ध और संतुष्टिपूर्ण निराकरण सुनिश्चित किया जा रहा है। अधिकारियों की बैठक लेकर प्रकरणों की प्रगति पर नजर रखी जाती है और लापरवाही पर कार्रवाई भी की जाती है।

जैन बीज भण्डार एवं पशु आहार
मैन बाजार, चीनोर रोड,
छीमक जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मुकेश जैन, मोबाइल: 9977638510
04/2025-26

# गेंदें की उन्नत तकनीक से करें खेती

गुंजा सिंह, मंजू शुक्ला, डॉ. संजय सिंह
डॉ. अखिलेश कुमार, डॉ. राजेश सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र रीवा (म.प्र.)

गेंदा एक अत्यन्त लोकप्रिय व्यावसायिक फूल है, जिसे देश के विभिन्न भागों में उगाया जाता है, यह एस्टरेसी 'कम्पोजिटी' परिवार का पौधा है, इसका जन्म स्थान 'मैक्सिको' है, मौसमी पौधों में गेंदे का विशेष एंव महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसके फूल सालभर मिलते रहते है, उद्यान में इसे शोभा अभिवृध्दि हेतु उगाया जाता है, इसके बीजों को उत्पादन करके विदेशों को निर्यात किया जाता है। जिससे विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है। भारतवर्ष में गेंदा हर घर में सभी तरहकार्यों में उपयोग होने के कारण इसके फूलों की मांग सदैव बाजार में बनी रहती है।गेंदा की खेती मुख्यतया दक्षिणी अफ्रीका, ब्राजील और आस्टेलिया में की जाती है, री भारत के मैदानी और पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी खेती होने लगी है।इसकी व्यावसायिक खेती उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश व जम्मू कश्मीर में की जाती है।

## जलवायु

गेंदे को साल भर, तीनों ही ऋतुओं में आसानी से उगाया जा सकता है। इसके अच्छी पैदावार शरद ऋतु उपयुक्त पाई जाती है। इसका पौधा पाले से प्रभावित होता है। खुला स्थान जहाँ पर सूर्य की रोशनी सुबह से शाम तक रहती हो, ऐसे स्थानों पर गेंदा की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। गेंदा के अच्छे उत्पादन के लिये शीतोष्ण और समशीतोष्ण जलवायु अच्छी मानी जाती है. अधिक गर्मी एवं अधिक सर्दी पौधों के लिए अच्छी नहीं मानी जाती है। इसके उत्पादन के लिये तापमान 15-30 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए। गेंदे की बीज की मात्रा किस्मों के आधार पर भिन्न होती है. जैसे कि संकर किस्मों का बीज 700 से 800 ग्राम प्रति हेक्टेयर तथा सामान्य किस्मों का बीज 1 से 1.5 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हेतु पर्यास होती है। गेंदे का बीज एक वर्ष से अधिक समय तक अंकुरण क्षमता बनाए रखने वाले होते हैं। इसके बावजूद बहुत पुराना बीज नहीं लगाना चाहिए क्योंकि पुराने बीज की अंकुरण क्षमता घट जाती है।

## गेंदे की उन्नत किस्में

अधिक उपज लेने के लिए परम्परागत किस्मों की जगह केवल उन्नत किस्मों की ही खेती करनी चाहिए। गेंदे की मुख्यतः दो प्रजातियां अफ्रीकन गेंदा और फ्रेन्च गेंदा होती है।

## प्रमुख प्रजातियां

**अफ्रीकन गेंदाः** अर्का बंगारा, अर्का बंगारा 2, अर्का अग्नि, पिस्ता, येलो, सुप्रीम, जीनिया गोल्ड, क्राउन आफ गोल्ड, मैलिंग स्माइल, नांरगी जाइंट डबल पीला, क्राउन आफ गोल्ड येलो स्पेन, फर्स्ट लेडी और सपन गोल्ड। इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा भी गेंदे की दो किस्में पूसा नांरगी गेंदा और पूसा बसंती गेंदा निकाली गई है। जो की वर्तमन समय में बहुत ही प्रचलित किस्में है।

## फ्रेन्च गेंदा

**प्रमुख प्रजातियां-** पूसा दीप, पूसा अर्पिता, अर्का हनी, अर्का परी, बोलेरो, बटरस्काच, बटरवॉल, ब्राउन स्काउट, गोल्डन और गोल्डन जेम, स्टार ऑफ इंडिया, येलों क्राउन, रेड हेट आदि।नर्सरी एवं पौध तैयार करना

## पौध रोपण समय एवं दूरी

नर्सरी में बीज बोने के 25-30 दिनों के बाद जब तीन-चार पत्तियां पौधों पर हो जाये तो पौधा रोपाई के लिए तैयार हो जाता है। गेंदा के पौधों की रोपाई समतल क्यारियों में की जाती है। रोपाई की दूरी गेंदे की किस्म पर निर्भर करता है। अफ्रीकन गंदे में पौधों की दूरी 40 सेमी एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 40 सेमी रखी जाती है जबकि फ्रेन्चगेंदे में यह दूरी 30×30 सेमी रखते हैं। नर्सरी से पौधे उखाड़ते समय हल्की सिंचाई कर देने से उखाड़ते समय पौधों की जड़ों को क्षति नहीं पहुंचता है। रोपण का कार्य सायंकाल के समय करना चाहिए। रोपाई के बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक है।

## गेंदा में पोषक तत्व

अधिक उत्पादन एवं वृद्धि के लिए नत्रजन, फास्फोरस एंव पोटाश की उचितमात्रा की आवश्यकता होती है। जिस भूमि में गेंदे की खेती करनी हो सर्वप्रथम उसमें से फसलों के अवशेष, कंकड़ पत्थर और खरपतवार आदि को चुनकर निकाल देना चाहिए। भूमि की अंतिम जुताई के समय गोबर की सड़ी खाद या कंपोस्ट खाद 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से डालनी चाहिए। खेत में प्रति हेक्टेयर 150-200 किग्रा नत्रजन, 100-150 किग्रा फास्फोरस एवं 80-100 किग्रा पोटाश रोपाई के पूर्व भूमि में डालकर मिला देना चाहिए। नत्रजनकीआधी मात्रा एवं फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा को रोपाई के समय दें। यूरिया की शेष आधी मात्रा को रोपाई के 30 दिन एवं 45 दिन बाद पौधो के आसपास कतारों के बीच में दें। तत्पश्चात खेत में सिंचाई की नलियां तथा क्यारियां बना लेनी चाहिए।

## सिंचाई तथा निदाई गुड़ाई

गेंदे की फसल में सिंचाई का विशेष महत्व है। सिंचाई की मात्रा फसल की किस्म और मौसम की दशा पर निर्भर करती है। आमतौर पर वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है पर फिर भी काफी समय तक वर्षा न हो तो सिंचाई कर देनी चाहिए। जाड़े में 8-10 दिन तथा गर्मी 5-6 दिन के अंतर पर सिंचाई करने से फूल का उत्पादन अच्छा होता है। आवश्यकता से अधिक पानी देने से फसल को क्षति हो सकती है। खेत में भूसा, पुवाल एवं कागज की तह बिछा देने पर पानी की आवश्यकता कम पड़ती है। गेंदे की फसल के साथ अनेक खरपतवार उग आते हैं जो मुख्य फसले के साथ प्रकाश, पोषक तत्व तथा स्थान आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। अच्छे पुष्पोत्पादन हेतु 2 से 3 निदाई गुड़ाई करनी चाहिए।

## पौधों की शीर्ष कलियों की कटाई

अच्छे पुष्पोत्पादन हेतु अफ्रीकन गेंदे की किस्मों को लगाने के 30-40 दिनों के बाद जब प्रथम कली दिखाई पड़े, तो शाखाओं की शीर्ष कलिकाओं के अग्र भाग को ऊपर से दो तीन सेमी काटकर हटा देने से शाखाएं अधिक संख्या में निकलती है और पौधे अधिक घने एवं झाड़ीदार हो जाते है जिससे फूलों की संख्या तथा आकार बढ़ जाता है और फूलों की कुल उपज बढ़ जाती है। पौधों को सहारा देना आवश्यक गेंदे के पौधों की बढ़वार अधिक तेजी से होती है। पौधों पर अधिक संख्या में फूल खिलने से वनज बढ़ जाता है जिससे उनके गिरने की आशंका बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में गेंदे के पौधों के साथ बास की पट्टियां गाड़कर बांध देना चाहिए जिससें पौधे टूटे नहीं।

## फलों की तोड़ाई, उपज

गेंदे की पौधे रोपने के 60-70 दिन बाद फूल देना शुरू कर देते हैं। फूलों को तब तोड़ना चाहिए जब वे पूर्णरूपेण विकसित हो जायें। गेंदे के फूलों को सुबह शामको तोड़ना चाहिए। फूलों की तोड़ाई के समय यदि खेत में नमी हो तो प्रास फूल अधिक समय तक ताजा बने रहते हैं। गेंदे की फूलों की उपज उगाई गई किस्म, भूमि की उर्वरा शक्ति और फसल की देखभाल पर निर्भर करती है। सामान्यता प्रति हेक्टेयर 150-180 क्विंटल अफ्रीकन गेंदा फूल एंव 120-150 क्विंटल फ्रेन्च गेंदा फूल की उपज होती हैं ।

## भण्डारण

फूलो की कटाई करने के बाद छायादार स्थान पर फैलाकर रखना चाहिए. पूरे खिले हुए फूलो की ही कटाई करानी चाहिए. कटाई किए हुए फूलों का भण्डारण शीत गृह में 4 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर किया जाता है।

## रोग एवं रोकथाम-

डैमपिंग आफ यह बीमारी राइजोकटोनिया सोलेनाई कवक का प्रकोप होने पर नर्सरी में होती हैं। इस बीमारी का प्रकोप होने पर नर्सरी में ही पौधों की मृत्यु हो जाती हैं। अधिकतर यह बीमारी नर्सरी में पौधों को बहुत अधिक पानी देने के कारण होती है।रोकथाम - इसकी रोकथाम के लिए क्यारीयों में बीज की बुवाई करने से पहले क्यारी में किसी भी कापर कवकनाशी (कैप्टान) का घोल (2.2 प्रतिशत सान्द्रता) का ड्रेच करना चाहिए या मिट्टी को फार्मल्डीहाइड नामक रसायन के घोल (2 प्रतिशत सान्दता) से उपचरित कर देना चाहिए।

**फ्लावर बड़-रॉट-** यह बीमारी अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में अधिक देखी जातीहै । इस बीमारी से गेंदे की कलियों पर ब्राउन धब्बे पड़ जाते हैं । इस प्रकार की कलियाँ पूर्ण रूप से खिल नहीं पाती हैं।रोकथाम - इसकी रोकथाम के लिए डाइथेन एम- 45 का 2.2 प्रतिशत सान्द्रता के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

## कालर रॉट, फूट रॉट एवं रूट रॉट- यह बीमारियां

राइजोकटोनिया सोलेनाई, फाइटोप्थोरा स्पेशीज, पीथियम स्पेशीज़, इत्यादि कवकों के कारण होती है। कालर राट गेंदेकी फसल में किसी अवस्था में देखा जा सकता है। फूट रॉट एवं रूट रॉट अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्र में तथा क्यारी में अधिक पानी होने के कारण भी होता है। रोकथाम - इसकी रोकथाम के लिए नर्सरी की मिट्टी को बीज की बुवाई से पहले फार्मल्डीहाइड की घोल से उपचरित करें, रोग रहित बीज का प्रयोग करें, रोगग्रसित पौधों को उखाड़ दें, बहुत घना नर्सरी या पौध रोपण न करें तथा बुवाई से पहले कैप्टान से बीज को उपचारित करें। लीफ स्पाट यह बीमारी अल्टरनेरिया टॅजेटिका कवक के करण होता है। इस बीमारी से प्रभावित पौधों के पत्तियों के ऊपर भूरा गोल धब्बा दिखने लगता है, जो धीरे-धीरे पौधों की पत्तियों को खराब कर देता है।रोकथाम - इस बीमारी की रोकथाम के लिए बाविस्टीन 1 से 1.5 ग्राम पाउडर प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।

**पाउडरी मिल्ड्यू-** गेंदा में पाउडरी मिल्ड्यू ओडियम स्पेशीज और लेविल्लुला टैरिका कवकों के प्रकोप होने के कारण होता है। इस बीमारी में पौधों के पत्तियों के उपर सफेद पाउडर दिखाई देने लगता हैं। कुछ समय बाद पूरे पौधे पर सफेद पाउडर दिखने लगता है।

**रोकथाम -** इसकी रोकथाम के लिए कैराथेन 1.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

**कीट व्याधियाँ एवं नियंत्रण रेड स्पाइडर माइट-** माइट गेंदे की पत्तियों का रस चूस लेते हैं।जिससे पत्तियाँ हरे रंग से भूरे रंग में बदलने लगती हैं और पौधों की बढ़वार बिल्कुल रुक जाती हैं। इसका अत्याधिक प्रकोप होने पर पुष्पोत्पादन भी नहीं हो पाता, जो कलियां बनती भी हैं, वह खिल भी नहीं पाती हैं।रोकथाम - इसकी रोकथाम के लिए हिल्फोल 1.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

**एफिड्स-** एफिड्स रस चूसने वाला कीट है। इनका प्रकोप गेंदे की पत्तियों, टहनियों एवं पुष्प कलियों पर होता है। यह पौधे की वृद्धि को कम कर देता है। रोकथाम - इसकी रोकथाम के लिए मैलाथियान का छिड़काव 2.0 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर करना चाहिए।

**कैटरपिलर -** कैटरपिलर हरा एवं भूरा काले रंग का कीट है। यह गेंदे की पत्तियों, टहनियों एवं कलियों को नुकसान पहुंचाते हैं।रोकथाम - इसकी रोकथाम के लिए 1.5 मिलीलीटर मैलाथियान एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# गृह वाटिका: पोषण, पर्यावरण और आर्थिक लाभ

अभिषेक यादव, मनीषा पाठक, रोहित कुमार यादव, राहुल अहिरवार
(पीएचडी शोधार्थी) उद्यानिकी विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

हमारे शरीर के पूर्ण विकास के लिए विभिन्न प्रकार के खनिज तत्वों की आवश्यकता होती है जो महत्वपूर्ण क्रियाओं को पूरा करने सहयोग करते हैं। सब्जियाँ हमारे पोषण मूल्यों को बढ़ाने के साथ-साथ शरीर को शक्ति, स्फूर्ति, वृद्धि एवं अनेक प्रकार के रोगों के प्रति रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाती है। सब्जियों में अनेक प्रकार के पोषक तत्व जैसे-कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आयरन, वसा, विटामिन तथा खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। सब्जियाँ देश को कुपोषण एवं विशेषकर सूक्ष्म तत्व जनित कुपोषण को दूर करने मे महत्वपूर्ण योगदान देती है। पूरे वर्ष में एक औसत परिवार (05 सदस्यीय) को संतुलित आहार में आवश्यक सब्जियाँ प्राप्त करने हेतु 250 वर्ग मीटर क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है। गृह वाटिका में छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाकर पत्ती, तना, जड़, फूल व फल वाली सब्जियों के साथ-साथ फलदार वृक्ष जैसे-नींबू, पपीता, केला व अमरूद आदि पौधों को भी लगाया जाता है। इस वाटिका से स्वादिष्ट, ताजी व रसायनिक कीटनाशकों से मुक्त सब्जियाँ प्राप्त कर सकते हैं। वर्ष भर सब्जियों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए जल्दी, मध्य व देर से तैयार होने वाली किस्मों को उगाना चाहिए। कीटों एवं रोगों के प्रकोप से बचने के लिए गृह वाटिका में उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।

## गृह वाटिका से लाभ

* गृहवाटिका सभी सदस्यों के लिए मनोरंजन तथा व्यायाम का एक साधन है।
* गृहवाटिका में सुबह या शाम को लगाया गया एक या दो घण्टे का समय एक अच्छा व्यायाम तथा मस्तिष्क को एक स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करता है।
* घर के पास रिक्त पड़ी जमीन का समुचित उपयोग हो जाता है।
* गृह वाटिका में हर वर्ग के लोगों के द्वारा कम लागत में अधिक सब्जियाँ उगाई जा सकती हैं।
* हर समय ताजी, स्वादिष्ट व विष रहित सब्जी मिल जाती है।
* घर के फालतू पानी व कूड़े-कचरे का उपयोग हो जाता है।
* बाजार से सब्जियाँ खरीदने वाले खर्च को घटाती है।
* अतिरिक्त समय का सदुपयोग हो जाता है।

## सब्जियों में पाये जाने वाले पोषक पदार्थ

मानव शरीर की उचित वृद्धि और विकास के लिए कम से कम 10 खनिज पदार्थों की आवश्यकता होती है। इनमें से कैल्शियम, आयरन तथा फास्फोरस तत्वों की आवश्यकता अधिक मात्रा में पड़ती है। खनिज पदार्थों का विशिष्ट महत्व इस प्रकार है-

**कैल्शियम :** हड्डियों को मजबूत तथा शरीर को रोगरोधी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके महत्वपूर्ण स्रोत बन्दगोभी, गाजर, फूलगोभी, प्याज, मटर तथा टमाटर आदि हैं।

**आयरन :** आयरन रक्त में हिमोग्लोबिन की मात्रा को बढ़ता है जो आक्सीजन के संवहन के लिए आवश्यक होता है। इसकी प्रमुख स्रोत हरी पत्तीदार सब्जियाँ हैं।

**फॉस्फोरस-** शरीर के सभी सक्रिय ऊतकों के लिए यह अनिवार्य तत्व है। फास्फोरस की उपलब्धता आलू, गाजर, टमाटर, खीरा, पालक की सब्जियों में ज्यादा होती है।

**विटामिन -** गृह वाटिका से प्राप्त सब्जियाँ विष मुक्त एवं विटामिन से भरपूर होती हैं। कुछ विशिष्ट विटामिन की उपलब्धता जैसे विटामिन ए, बी, सी, डी तथा विटामिन ई सब्जियों से प्राप्त की जा सकती है।

## गृह वाटिका का चयन

गृह वाटिका के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जहाँ धूप पर्याप्त मात्रा में एवं

गृह वाटिका मे सब्जियों हेतु फसल चक्र

अधिक समय तक रहती हो क्योंकि किसी भी पौधे के विकास के लिए धूप बहुत जरूरी है। अधिक गर्मियों में पौधों को धूप से बचाने के लिए जालीदार शेड लगाना चाहिए। यहाँ इस बात का भी ध्यान देना चाहिए कि बड़े पेड़ की छाया से सब्जियों की पैदावार पर कोई प्रभाव न पड़े। छाया या कम महत्व वाली जगह में एक या दो कम्पोस्ट के गड्ढे अवश्य बनाना चाहिए।

## महत्वपूर्ण कृषि कियाएं

* बीजों का क्रय किसी सरकारी संस्थान या विश्वसनीय स्रोत से ही करना चाहिए।
* लगभग छह महीने पुरानी गोबर व कम्पोस्ट की खादों का ही प्रयोग करना चाहिए।
* सिंचाई के लिए रसोईघर या घर के बेकार पानी का उपयोग करना चाहिए।
* कम बढ़वार होने पर 2.0 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

## फसल संरक्षण के उपाय

* नीम खली या नीम के तेल का उपयोग करना चाहिए।
* रासायनिक कीटनाशियों का उपयोग कम से कम करें।
* जैविक जीवनाशियों का उपयोग अवश्य करें।

## महत्वपूर्ण सुझाव

* समय-समय पर मिट्टी की गुड़ाई करना चाहिए ताकि गमलों या क्यारियों की मिट्टी में हवा और पानी अच्छी तरह मिलता रहे।
* टमाटर, मटर, सेम आदि को सहारा दिया जाना चाहिए ताकि ये फसलें कम से कम जगह घेरें।
* बारिश खत्म होने के बाद हर साल अगस्त-सितम्बर में सभी पौधों की जड़ें निकाल दें और उन जड़ों को मिट्टी में मिला दें। इससे पौधा तो बड़ा होगा लेकिन उसकी जड़ें नही फैलेंगी।
* लौकी, तरोई, करेला आदि लतादार सब्जियों को बाड़ के सहारे उगाना चाहिए।
* प्रति पौध अधिक फल देने वाली सब्जियाँ जैसे-पालक, बीन्स, पुदीना, धनिया, मेथी, टमाटर, बैगन, मिर्च, बीन आदि को किसी छोटे गमले में लगाना चाहिए।

| सब्जियों के नाम | समय |
|---|---|
| पत्तागोभी सह फसल सलाद के साथ ग्वार तथा बीन | नवंबर - मार्च, मार्च - अक्टूबर |
| फूलगोभी सह फसल गाठगोभी, लोबिया (ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु) | सितंबर - फरवरी, मार्च - अगस्त |
| फूलगोभी, मुली, प्याज | जुलाई - नवंबर, नवंबर - सितंबर |
| आलू, लोबिया, फूलगोभी | नवंबर - मार्च, मार्च - जून |
| बैगन सह फसल पालक, भिंडी सह फसल चौलाई | जुलाई - मार्च, मार्च - जून |
| मिर्च सह फसल शिमला मिर्च, भिंडी | अगस्त - अप्रैल, मई - जुलाई |

अरुण एम.एस.सी. (कृषि) शस्य विज्ञान मंदसौर वि.वि.
डॉ. विपुल सिंह सहायक प्रोफेसर, मंदसौर विश्वविद्यालय
प्रकाश रेगर एम.एस.सी. (कृषि) शस्य विज्ञान, मंदसौर वि.वि.

# अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष 2026 ( मध्यप्रदेश की कृषि: दालों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता )

औसत नाइट्रोजन स्थिरीकरण (अनुमानित)

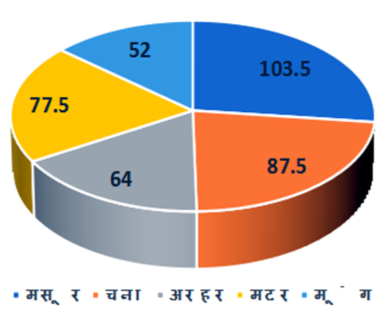


अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष 2016 की सफलता के बाद, हर साल 10 फरवरी को विश्व दलहन दिवस मनाया जाता है। वर्ष 2026 में यह दिन और भी खास है क्योंकि इसका विषय "विश्व की दालें: विनम्रता से उत्कृष्टता तक" रखा गया है। इस अवसर पर स्पेन के वल्लादोलिद शहर में वैश्विक समारोह आयोजित किया जा रहा है, जो दालों के प्रति बढ़ती वैश्विक जागरूकता और प्रतिबद्धता को दर्शाता है। इस वैश्विक पहल के अनुरूप, भारत ने भी दालों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हासिल करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम उठाया है। इसकी शुरुआत मध्य प्रदेश से हुई, जो देश के दलहन उत्पादन में अग्रणी राज्य है।

## भारतीय दलहन फसलें: पोषण का आधार

एक सामान्य शाकाहारी भारतीय थाली की कल्पना दालों के बिना करना लगभग असंभव है। सदियों से हमारी कृषि परंपरा में विभिन्न दलहनी फसलें महत्वपूर्ण स्थान रखती आई हैं, क्योंकि ये प्रोटीन का न केवल सस्ता, बल्कि अत्यधिक सुलभ स्रोत भी हैं। दलहनी फसलों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें प्रोटीन की मात्रा सामान्य अनाज वाली फसलों की तुलना में काफी अधिक होती है। अनाज में प्रोटीन मुख्यतः दानों के बाहरी छिलके (एल्यूरोन परत) में पाया जाता है, जो अक्सर प्रसंस्करण (मिलिंग/पॉलिशिंग) के दौरान नष्ट हो जाता है। इसके विपरीत, दलहनी फसलों में प्रोटीन दानों के भीतरी भाग (बीजदल या कोटिलेडॉन) में समाहित रहता है, जिससे यह प्रसंस्करण के बाद भी सुरक्षित एवं पूर्ण रूप से उपलब्ध रहता है। पोषण की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ ये फसलें कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के लिए भी अत्यंत लाभकारी हैं। ये मृदा की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होती हैं, विशेषकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके। **शोध बताते हैं कि विभिन्न दलहनी फसलें मृदा में प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की महत्वपूर्ण मात्रा का स्थिरीकरण करती हैं:**

* **चना:** 41 से 134 किग्रा. * **अरहर:** 31 से 97 किग्रा. * **मूंग:** 30 से 74 किग्रा. * मसूर: 60 से 147 किग्रा. * मटर: 30 से 125 किग्रा.

**मध्य प्रदेश में दलहन उत्पादन को बढ़ावा देने की रूपरेखा:** मध्य प्रदेश सरकार ने वर्ष 2026 को 'किसान कल्याण वर्ष' के रूप में मनाने की घोषणा की है, जिसके तहत दलहन उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए कई ठोस कदम उठाए जा रहे हैं .

**क्लस्टर मॉडल और प्रसंस्करण को बढ़ावा:** उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों को क्लस्टर में संगठित किया जाएगा। साथ ही, फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान को रोकने और किसानों को उनकी उपज का सही मूल्य दिलाने के लिए देशभर में 1,000 नई दाल मिलें स्थापित की जाएंगी, जिनमें से 55 मिलें मध्य प्रदेश के विभिन्न क्लस्टरों में खोली जाएंगी . इन मिलों को स्थापित करने के लिए सरकार 25 लाख रुपये तक की सब्सिडी भी प्रदान करेगी .

**बीज सुधार एवं वितरण:** अब बीजों का विमोचन दिल्ली से न होकर विभिन्न राज्यों में किसानों के बीच किया जाएगा, ताकि उन्नत किस्मों के बीज जल्द से जल्द किसानों तक पहुंच सकें . किसानों को बेहतर उत्पादन तकनीक अपनाने के लिए बीज किट और 10,000 रुपये प्रति हेक्टेयर की वित्तीय सहायता भी दी जाएगी .

**प्रदेश सरकार की पहल:** मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के नेतृत्व में मध्य प्रदेश सरकार ने किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य रखा है। इसके तहत उड़द और मसूर के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए एक विशेष योजना जल्द ही लागू की जाएगी। इसके अलावा, दलहन उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य सरकार अरहर पर लगने वाले मंडी शुल्क को पहले ही समाप्त कर चुकी है और उड़द एवं मसूर पर भी राहत देने पर विचार कर रही है। इंदौर में आयोजित ऑल इंडिया दाल मिल एसोसिएशन के सम्मेलन में मुख्यमंत्री ने यह भी घोषणा की कि दलहन उत्पादन से जुड़े किसानों, मिल मालिकों, व्यापारियों और विशेषज्ञों की एक कार्यशाला जल्द ही भोपाल में आयोजित की जाएगी।

## मध्य प्रदेश की विशेष पहलें और योजनाएं

**1. दलहन आत्मनिर्भरता मिशन के तहत प्रोत्साहन**

**प्रोत्साहन राशि:** क्लस्टर में शामिल होने वाले आदर्श किसानों को दलहन की खेती के लिए प्रति हेक्टेयर रु. 10,000 तक की सहायता दी जाएगी ।

**बीज से बाजार तक:** सरकार "बीज से बाजार तक" के दृष्टिकोण पर काम कर रही है, जिसमें उच्च उपज देने वाले बीज किट उपलब्ध कराना और कम अवधि वाली बीज किस्मों को बढ़ावा देना शामिल है।

**दाल मिलें:** देशभर में 1,000 नई दाल मिलें स्थापित करने का लक्ष्य है, जिनमें से 55 मिलें मध्य प्रदेश के विभिन्न क्लस्टरों में खोली जाएंगी। प्रति इकाई रु. 25 लाख की सब्सिडी दी जाएगी ।

**2. किसान कल्याण वर्ष 2026**

मध्य प्रदेश सरकार ने वर्ष 2026 को 'किसान कल्याण वर्ष' के रूप में मनाने की घोषणा की है। इस दौरान किसानों को दलहन की ओर रुख करने हेतु प्रोत्साहित किया जाएगा।

**3. रानी दुर्गावती श्री अन्न प्रोत्साहन योजना**

इस योजना के तहत बाजरा और दालों की खेती को बढ़ावा देने के लिए किसानों को ?3,900 प्रति हेक्टेयर तक का प्रोत्साहन दिया जाता है ।

**4. सुनिश्चित खरीद और मूल्य समर्थन (PM-AASHA)**

**100% खरीद:** केंद्र सरकार ने NAFED और NCCF के माध्यम से MSP पर तुअर, उड़द और मसूर की 100% खरीद की प्रतिबद्धता जताई है।

**भावांतर भुगतान योजना:** यदि बाजार मूल्य MSP से नीचे चला जाता है, तो अंतर की राशि सीधे किसानों के बैंक खातों में डाली जाती है।

**5. ICARDA साझेदारी:** अंतर्राष्ट्रीय शुष्क क्षेत्र कृषि अनुसंधान केंद्र (ICARDA) की सीहोर में नई अत्याधुनिक प्लांट टिशुकल्चर प्रयोगशाला और प्रशिक्षण केंद्र का उद्घाटन किया गया है, जो उन्नत दलहन बीजों और तकनीक के विकास में सहायक होगा ।

## किसानों के लिए महत्वपूर्ण निर्देश

**पंजीकरण:** किसानों को सलाह दी जाती है कि वे अपनी फसलों का पंजीकरण ग्राम स्तरीय सहकारी समितियों में आधार कार्ड और बैंक खाता संख्या के साथ करा लें।

**बीज प्राप्ति:** गुणवत्तापूर्ण बीजों हेतु SATHI पोर्टल का उपयोग करें या अपने नजदीकी कृषि सेवा केंद्र से संपर्क करें।

**महत्वपूर्ण न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) 2025-26**

| फसल | **MSP** (रु. प्रति क्विंटल) |
|---|---|
| तुअर (अरहर) | रु. 8,000 |
| उड़द | रु. 7,800 |
| मसूर (मसूर) | रु. 7,000 |
| चना | रु. 5,875 |

**निष्कर्ष:** अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष 2026 की थीम के अनुरूप, मध्य प्रदेश न केवल देश का दलहन उत्पादन केंद्र बना हुआ है, बल्कि अब वह राष्ट्रीय दलहन आत्मनिर्भरता मिशन की सफलता की कमान भी संभाल रहा है। केंद्र और राज्य सरकार की संयुक्त पहल, किसानों को सीधा लाभ, उन्नत तकनीक पर फोकस और प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देने वाली नीतियां मिलकर मध्य प्रदेश को दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता के इस राष्ट्रव्यापी अभियान का मॉडल राज्य बनाती हैं। आमलाहा से शुरू हुई यह दाल॒ ाँति न केवल भारत को आयात पर निर्भरता से मुक्ति दिलाएगी, बल्कि प्रदेश के किसानों की आय को दोगुना करने में भी मील का पत्थर साबित होगी।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



# पशुओं में एफिमेरल फीवर

✍ डॉ. रवि सिकरोडिया, दलजीत छाबरा,
✍ जोयसी जोगी, राखी गांगिल, राकेश शारदा
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू (म.प्र.)

एफिमेरल फीवर, जिसे सामान्यतः थ्री-डे सिकनेस कहा जाता है, पशुओं में होने वाला एक तीव्र, संक्रामक एवं विषाणुजनित रोग है। यह रोग मुख्य रूप से गाय, भैंस तथा अन्य जुगाली करने वाले पशुओं को प्रभावित करता है। रोग का नाम "एफिमेरल" इसलिए पड़ा क्योंकि इसका अवधि काल अल्पकालिक (सामान्यतः 2-3 दिन) होता है। यद्यपि रोग की अवधि कम होती है, परंतु इस दौरान पशु में तेज बुखार, अत्यधिक कमजोरी, दर्द, दुग्ध उत्पादन में भारी गिरावट तथा कभी-कभी मृत्यु तक हो सकती है। यह रोग विशेष रूप से ट्रोपिकल एवं सबट्रोपिकल क्षेत्रों में पाया जाता है, जहाँ ओर्थोपोड वेक्टर्स की संख्या अधिक होती है। भारत जैसे देशों में, जहाँ डेयरी उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार है, यह रोग आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

## रोग का कारण

एफिमेरल फीवर का कारक बोवाइन एफिमेरल फीवर वायरस 'Bovine Ephemeral Fever Virus - BEFV' है। यह वायरस रेब्डोविरिडी फैमिली का मेम्बर है और संरचना में यह सिंगल स्ट्रैंड आर.एन.ए वायरस होता है। यह वायरस बाह्य वातावरण में अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाता, किंतु ओर्थोपोड वेक्टर्स के माध्यम से पशुओं में आसानी से प्रवेश कर जाता है। वायरस का मुख्य लक्ष्य शरीर की मांसपेशियाँ, जोड़ तथा ब्लड वेसेल्स होती हैं, जिसके कारण रोग के विशिष्ट लक्षण उत्पन्न होते हैं।

## रोग का संचरण

एफिमेरल फीवर का संचरण डायरेक्ट कांटेक्ट से नहीं होता। यह रोग मुख्यतः बायोलोजिकल वेक्टर्स के द्वारा फैलता है। मुख्य वाहक के रूप में मच्छर, क्यूलिकोइड्स कुछ ब्लड पीने वाली मक्खियाँ भी होती है बरसात के मौसम में, जब नमी और तापमान अधिक होता है, इन कीटों की संख्या बढ़ जाती है, जिससे रोग के फैलने की संभावना भी बढ़ जाती है। रोग एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में हवा के साथ उड़ने वाले कीटों द्वारा भी फैल सकता है।

## संवेदनशील पशु

इस रोग गाय, भेंस, बैल, जंगलो जुगाली करने वाले पशु में मुख्य रूप से देखने को मिलता है भैंसों में यह रोग सामान्यतः अधिक गंभीर रूप ले सकता है, जबकि बछड़ों और कम उम्र के पशुओं में रोग अपेक्षाकृत हल्का रहता है।

## रोग के लक्षण

एफिमेरल फीवर के लक्षण अचानक प्रकट होते हैं और प्रायः 2 से 3 दिनों में समाप्त हो जाते हैं।प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं: अचानक तेज बुखार (40 से 42° सेंटीग्रेड), ठंड लगना एवं कंपकंपी, भूख न लगना, दूध उत्पादन में तीव्र गिरावट, मांसपेशियों एवं जोड़ों में दर्द, लंगड़ापन या चलने में कठिनाई, पशु का बैठ जाना और उठने में असमर्थताए आँखों एवं नाक से स्राव, हृदय गति एवं श्वसन दर में वृद्धि, गंभीर मामलों में पशु पूरी तरह बैठ जाता है और सेकेंडरी जीवाणु संक्रमण, निर्जलीकरण या अन्य जटिलताओं के कारण मृत्यु भी हो सकती है।

## रोगजनन

कीट के काटने के माध्यम से वायरस पशु के रक्त में प्रवेश करता है। इसके बाद यह वायरिमिया उत्पन्न करता है, जिससे तेज बुखार होता है। वायरस के प्रभाव से मांसपेशियों में सूजन, जोड़ो में दर्द, ब्लड वेसल्स की पेर्मिअबिलिटी में वृद्धि होती है, जिसके परिणाम स्वरूप पशु में कमजोरी और चलने-फिरने में कठिनाई उत्पन्न होती है।

## रोग का निदान

रोग का प्रारंभिक निदान मुख्यतः नैदानिक लक्षण, रोग का अचानक फैलाव,मौसम एवं कीटों की उपस्थिति के आधार पर किया जाता है। प्रयोगशाला में RT&PCR, सीरोलॉजिकल परीक्षण, रक्त परीक्षण कर बिमारी की डायग्नोसिस की जा सकती है।

## उपचार

एफिमेरल फीवर एक विषाणुजनित रोग है, अतः इसका कोई विशिष्ट एंटीवायरल उपचार उपलब्ध नहीं है। उपचार पूर्णतः सहायक 'Supportive' होता है। उपचार में फीवर एवं दर्दनाशक दवाएँ, नॉन-स्टेरॉयडल एंटी-इंफ्लेमेटरी दवाएँ, फ्लूइड थेरेपी, सेकेंडरी इन्फेक्शन रोकने हेतु एंटीबायोटिक, पशु को आरामदायक, सूखी और स्वच्छ जगह पर रखना, समय पर उपचार से अधिकांश पशु 2-3 दिनों में पूरी तरह स्वस्थ हो जाते हैं।

## रोकथाम एवं नियंत्रण

**रोग की रोकथाम के लिए निम्न उपाय अपनाए जाते हैं:** कीट नियंत्रण, पशु शालाओं की नियमित सफाई, कीटनाशकों का छिड़काव, उच्च जोखिम क्षेत्रों में टीकाकरण

नए पशुओं को पृथक रखकर निरीक्षण, कुछ देशों में इस रोग के विरुद्ध प्रभावी टीके उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग रोग-प्रभावित क्षेत्रों में किया जाता है।

एफ्हेमरल फीवर एक अल्पकालिक किंतु गंभीर रोग है, जो पशुओं के स्वास्थ्य और पशुपालन अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। समय पर पहचान, उचित सहायक उपचार तथा प्रभावी रोकथाम उपायों द्वारा इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। पशुपालकों में जागरूकता बढ़ाकर इस रोग से होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

# सरदार पटेल विश्वविद्यालय बालाघाट का कृषि ड्रोन कृषि की नई उड़ान

✍ **माजिद खान** छात्र, बी.एससी. (ऑनर्स) कृषि, कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, डोंगरिया, बालाघाट

✍ **डॉ. नीरज नाथ परिहार, डॉ. अंकित कुमार गोयल**
सहायक प्राध्यापक, सरदार पटेल वि.वि., डोंगरिया, बालाघाट

✍ **अवधेश सिंह चौधरी** विभागाध्यक्ष, कृषि संकाय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट

**भूमिका:** भारत को सदियों से कृषि प्रधान देश के रूप में जाना जाता है। यहाँ की अर्थव्यवस्था, संस्कृति और सामाजिक संरचना का आधार खेती रही है। आज भी देश की बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। हालांकि समय के साथ खेती की परिस्थितियाँ बदलती गई हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्यान्न की मांग में वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन, असमय वर्षा, सूखा, कीटों का प्रकोप और बढ़ती उत्पादन लागत जैसी समस्याएँ किसानों के सामने बड़ी चुनौती बनकर खड़ी हैं। पारंपरिक खेती की पद्धतियाँ अब इन नई चुनौतियों का सामना करने में पूरी तरह सक्षम नहीं रह गई हैं। ऐसे में कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाना समय की आवश्यकता बन गया है। डिजिटल इंडिया और स्मार्ट फार्मिंग जैसे प्रयासों ने यह संकेत दिया है कि भविष्य की खेती तकनीक आधारित होगी। ड्रोन, सेंसर, डेटा एनालिटिक्स और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी आधुनिक तकनीकें अब खेतों तक पहुँच रही हैं।

इसी परिवर्तनशील दौर में **सरदार पटेल विश्वविद्यालय बालाघाट** के कृषि संकाय के छात्रों ने एक सराहनीय पहल करते हुए कृषि ड्रोन का निर्माण किया है। यह प्रयास केवल एक तकनीकी उपलब्धि नहीं, बल्कि युवा शक्ति, शोध और नव सोच का प्रतीक है। छात्रों ने किसानों की वास्तविक समस्याओं को समझते हुए ऐसा समाधान तैयार किया है, जो खेती को अधिक सरल, सुरक्षित और लाभदायक बना सकता है। यह कृषि ड्रोन इस बात का प्रमाण है कि यदि शिक्षा को व्यवहारिक अनुभव और सामाजिक जरूरतों से जोड़ा जाए, तो विद्यार्थी समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा तैयार किया गया यह ड्रोन न केवल किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है, बल्कि यह अन्य युवाओं को भी कृषि क्षेत्र में नवाचार और अनुसंधान के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार, "सरदार पटेल विश्वविद्यालय का कृषि ड्रोन" आधुनिक तकनीक और कृषि शिक्षा के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो भारत की कृषि को नई दिशा और नई उड़ान देने की क्षमता रखता है।

**कृषि संकाय के छात्रों की पहल:** कृषि ड्रोन को सरदार पटेल विश्वविद्यालय के कृषि विद्यार्थियों ने अपने गहन अध्ययन, शोध कार्य और तकनीकी समझ के आधार पर विकसित किया है। यह केवल एक शैक्षणिक परियोजना नहीं, बल्कि किसानों की वास्तविक समस्याओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया एक व्यावहारिक समाधान है। छात्रों ने खेतों का दौरा किया, किसानों से सीधे संवाद स्थापित किया और उनकी दैनिक चुनौतियों को करीब से समझा। उन्होंने पाया कि कीटनाशकों और उर्वरकों के छिड़काव में अत्यधिक समय और श्रम लगता है। कई बार दवाइयों का असमान वितरण फसल को नुकसान पहुँचाता है, वहीं रसायनों के संपर्क में आने से किसानों के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन समस्याओं का समाधान खोजने के उद्देश्य से छात्रों ने तकनीक की मदद से कृषि ड्रोन की योजना बनाई।

इस पूरी प्रक्रिया में शिक्षकों के मार्गदर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। अनुभवी प्राध्यापकों ने छात्रों को तकनीकी दिशा-निर्देश, शोध संबंधी परामर्श और व्यवहारिक सुझाव प्रदान किए। शिक्षकों के मार्गदर्शन में विद्यार्थियों ने ड्रोन की संरचना, उसकी भार क्षमता, उड़ान प्रणाली, स्प्रे मैकेनिज्म और सुरक्षा पहलुओं पर गहन कार्य किया। उनके सहयोग से यह परियोजना एक सफल और उपयोगी मॉडल के रूप में तैयार हो सकी। यह पहल दर्शाती है कि जब विद्यार्थियों की ऊर्जा और रचनात्मकता को शिक्षकों के अनुभव और मार्गदर्शन का साथ मिलता है, तो परिणाम अत्यंत प्रभावशाली होता है। आज के एग्रीकल्चर स्टूडेंट्स केवल किताबों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे अपने ज्ञान को व्यवहार में उतारकर ऐसे समाधान विकसित कर रहे हैं, जो सीधे किसानों के जीवन को सरल, सुरक्षित और अधिक लाभदायक बना सकते हैं।

**कृषि ड्रोन क्या है?** कृषि ड्रोन एक आधुनिक तकनीक आधारित मानव रहित हवाई यान है, जिसे विशेष रूप से खेती के कार्यों हेतु तैयार किया जाता है। यह ड्रोन रिमोट कंट्रोल के माध्यम से संचालित किया जाता है। पारंपरिक तरीकों की तुलना में यह अधिक तेज, सटीक और प्रभावी ढंग से कार्य करता है। इस कृषि ड्रोन में एक विशेष टैंक, पंप और स्प्रे सिस्टम लगाया है, जिसके माध्यम से कीटनाशक, उर्वरक, पोषक तत्व या पानी का छिड़काव किया जाता है। यह ड्रोन निर्धारित ऊँचाई और गति से खेतों के ऊपर उड़ते हुए दवाइयों का समान और नियंत्रित वितरण करता है। इससे फसल को आवश्यक मात्रा में ही रसायन मिलता है जिससे दवाइयों की बर्बादी कम होती है और उत्पादन की गुणवत्ता बेहतर होती है। इस प्रकार, कृषि ड्रोन आधुनिक विज्ञान और कृषि का समन्वय है, जो खेती को अधिक स्मार्ट, सुरक्षित और उत्पादक बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

**ड्रोन की विशेषताएँ:** कृषि ड्रोन आधुनिक तकनीक से सुसज्जित एक उन्नत उपकरण है, जो खेती के कार्यों को सरल, तेज और अधिक प्रभावी बनाता है। इसकी कई महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, जो इसे पारंपरिक तरीकों से अलग और अधिक उपयोगी बनाती हैं।

**कम समय में अधिक क्षेत्र का कवरेज:** कृषि ड्रोन कुछ ही मिनटों में बड़े खेत में दवाइयों या उर्वरकों का छिड़काव कर सकता है। जहाँ पारंपरिक तरीकों से घंटों का समय लगता है, वहीं ड्रोन यह कार्य बहुत कम समय में पूरा कर देता है।

**सटीक और समान छिड़काव:** ड्रोन में लगे स्प्रे सिस्टम और नोजल दवाइयों का समान वितरण सुनिश्चित करते हैं। इससे हर पौधे तक आवश्यक मात्रा में रसायन पहुँचता है और फसल की गुणवत्ता बेहतर होती है।

**श्रम और लागत में कमी:** ड्रोन के उपयोग से श्रमिकों की आवश्यकता कम होती है। इससे किसानों का खर्च घटता है और समय की बचत भी होती है।

**स्वास्थ्य सुरक्षा:** कीटनाशकों और रसायनों के सीधे संपर्क से किसानों को स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ हो सकती हैं। ड्रोन के उपयोग से किसान सुरक्षित दूरी पर रहकर छिड़काव कर सकते हैं।

**कठिन और दुर्गम क्षेत्रों में उपयोग:** जलभराव, कीचड़ या ऊबड़-खाबड़ भूमि वाले खेतों में जहाँ मशीन या व्यक्ति का पहुँचना कठिन होता है, वहाँ ड्रोन आसानी से कार्य कर सकता है।

**किसानों को लाभ:** सरदार पटेल विश्वविद्यालय के कृषि संकाय के छात्रों द्वारा विकसित कृषि ड्रोन किसानों के लिए अनेक प्रकार से लाभकारी सिद्ध हो सकता है। यह तकनीक न केवल खेती के कार्य को सरल बनाती है, बल्कि उत्पादन और आय दोनों में सकारात्मक प्रभाव डालती है।

**समय की बचत:** जहाँ पारंपरिक तरीके से दवाइयों का छिड़काव करने में कई घंटे लग जाते हैं, वहीं ड्रोन कुछ ही मिनटों में बड़े क्षेत्र को कवर कर सकता है। इससे किसान कम समय में अधिक कार्य कर पाते हैं।

**श्रम और लागत में कमी:** ड्रोन के उपयोग से मजदूरों की आवश्यकता कम हो जाती है। इससे श्रम लागत घटती है और दवाइयों का नियंत्रित उपयोग होने से अनावश्यक खर्च भी बचता है।

**स्वास्थ्य की सुरक्षा:** पारंपरिक छिड़काव के दौरान किसान रसायनों के सीधे संपर्क में आते हैं, जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ हो सकती हैं। ड्रोन के माध्यम से किसान सुरक्षित दूरी से कार्य कर सकते हैं, जिससे स्वास्थ्य जोखिम कम होता है।

**आधुनिक तकनीक से जुड़ाव:** ड्रोन के उपयोग से किसान नई तकनीक से जुड़ते हैं, जिससे वे स्मार्ट खेती की ओर बढ़ते हैं। इससे युवा पीढ़ी भी कृषि क्षेत्र में रुचि लेने लगती है।

**आय में वृद्धि की संभावना:** कम लागत और अधिक उत्पादन के कारण किसानों की आय में वृद्धि हो सकती है। साथ ही, यदि गाँव स्तर पर ड्रोन सेवा उपलब्ध हो, तो यह अतिरिक्त रोजगार के अवसर भी प्रदान कर सकती है।

**कृषि क्षेत्र में नई क्रांति:** कृषि ड्रोन तकनीक डिजिटल इंडिया और स्मार्ट खेती की दिशा में एक बड़ा और प्रभावशाली कदम है। यह तकनीक पारंपरिक खेती को वैज्ञानिक और आधुनिक स्वरूप प्रदान करती है। ड्रोन के माध्यम से खेतों की सटीक निगरानी, समय पर कीटनाशक और उर्वरक का छिड़काव, तथा फसल की गुणवत्ता का विश्लेषण संभव हो पाया है। इससे न केवल लागत में कमी आती है, बल्कि उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता दोनों में वृद्धि होती है। यह तकनीक युवाओं को कृषि क्षेत्र की ओर आकर्षित कर रही है। आज का युवा तकनीक से जुड़ा हुआ है, और जब कृषि में ड्रोन, सेंसर, आधुनिक सुविधाएँ जुड़ती हैं, तो खेती एक स्मार्ट और सम्मानजनक पेशा बनकर उभरती है। इससे रोजगार के नए अवसर भी पैदा होते हैं, जैसे ड्रोन ऑपरेटर, तकनीकी विशेषज्ञ और कृषि सलाहकार। अंततः कहा जा सकता है कि सरदार पटेल विश्वविद्यालय बालाघाट के कृषि संकाय के छात्रों का कृषि ड्रोन वास्तव में "कृषि की नई उड़ान" है। यह पहल न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, संसाधनों के संतुलित उपयोग और टिकाऊ कृषि प्रणाली को भी बढ़ावा देगी। यह तकनीक भारत को आत्मनिर्भर कृषि की ओर अग्रसर करने के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर आधुनिक कृषि की दिशा में एक मजबूत पहचान दिलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

# श्वानों के बेहतर स्वास्थ्य हेतु विशेष उपयोगी सुझाव

**डिम्पी सिंह** सहायक प्राध्यापक, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय महू (म.प्र.)

**अखिलेश पांडेय** प्राध्यापक, पशु चिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, महू (म.प्र.)

**अमित शाक्य** पशु चिकित्सा अधिकारी, पशुपालन विभाग, सारंगपुर, जिला-राजगढ़ (म.प्र.)

आधुनिक परिवेश की जिंदगी में श्वानों की बहुआयामी उपयोगिता हर परिवार एवं समाज में दिनों दिन बढ़ती जा रही है। हर शहर व कस्बों मे श्वानो की उन्नत नस्ले देखने मिल जायेंगी। आज श्वानों के विशेषज्ञ पशु चिकित्सक हैं उनके खाने, खेलने के सामान से लेकर सजने सवारने के सामान एवं टॉनिक-दवाईया भी बाजार में उपलब्ध हैं। सभी श्वान पालक श्वानो के रख-रखाव, खान-पान व टीकाकरण आदि के बारे मे तो सामान्य जानकारी रखते हैं, किन्तु कुछ विशेष बीमारियों को रोकने के लिये आवश्यक देख-रेख व ज्ञान की जानकारी नही रखते।

इस आज्ञानता व लापरवाही के कारण उनके श्वान विशेष बीमारियों से ग्रसित हो जाते है, जो न सिर्फ श्वान की जिन्दगी को तकलीफ देह जीवन जीने के लिये मजबूर कर देती है, वरन् श्वान पालकों की मुसीबत का कारण भी बन जाती है। आइये यहाँ हम आपको कुछ विशेष देखभाल के बारे में बतायेंगे जिसे अपनाकर आप व आपका श्वान दोनों स्वस्थ खुशीपूर्वक जीवन जी सकते हैं।

**1. त्वचा की देखभाल:** स्वस्थ त्वचा एवं बाल श्वान का आकर्षण होते हैं। श्वान नस्ल के अनुसार छोटे तथा बड़े बाल के होते है। लम्बे बाल की नस्ल वाले श्वानों की देखभाल बहुत आवश्यक होती है। मनुष्यों पर प्रयोग होने वाले शैम्पू एवं साबुन का प्रयोग नहीं करें, क्योंकि श्वान मे पसीने की ग्रन्थियों का अभाव रहता है। श्वान में कंघी (ग्रूमिंग) न करने पर धूल के कण त्वचा मे बैठ जाते है जिससे कि खुजलाहट होती है, जो कि त्वचा को कीटाणु, जीवाणु, विषाणु, कवक एवं बाह्य परजीवियों के लिये संवेदनशील बनाती है। यह श्वानों मे सबसे अधिक होने वाली बीमारियों मे से एक हैं। श्वानों को मल-मूत्र या व्यायाम में ले जाते समय विभिन्न प्रजातियों की घास (मुख्यतः गाजर घास) के सम्पर्क में आने से एलर्जी होती है। स्वस्थ त्वचा की पहचान उसकी रंगत, चमक और लचीलापन देखकर की जा सकती है। त्वचा मे रूसी, पिस्सू, किल्ली, जूँ, का संक्रमण त्वचा संबंधित बीमारियों को जन्म देता है। बाजार में कई तरह के शैम्पू एवं पाउडर उपलब्ध है, जिससे कि सामान्य एवं औषधियुक्त शैम्पू को श्वान विशेषज्ञ की सलाह से ही प्रयोग करें। श्वानों मे आन्तरिक एवं बाह्य परजीवियों हेतु एक माह से आजीवन कृमिनाशक दवाएं देना अत्यन्त जरूरी है। त्वचा के लिये स्वास्थ्य टॉनिक बाजार में उपलब्ध है। नमक एवं मीठा श्वानों को यथासंभव नहीं देना चाहिये।

**2. मुँह, नाक एवं दन्त रोग:** प्रायः श्वानों मे मुँह, नाक और दांतों का विशेष ध्यान नही रखा जाता है। श्वान माँसाहारी होते है। इनके दाँतो की बनावट चबाने के लिए नहीं होती है। मुलायम भोजन देने से पायरिया जैसी गंभीर बीमारी पैदा होती है, अतः शुरू से ही उसके मुंह और दांतों की साफ सफाई एवं आहार का ध्यान रखने से पायरिया से बचा जा सकता है। इसके लिये मुँह को क्लोरहेक्सीडीन से कुल्ला करवाना और दांतों को ब्रश करवाना शुरू से ही सप्ताह मे कम से कम एक बार जरूर करवाएं। साथ ही साथ कड़ा एवं रेशेदार भोजन दें। नाक, कान मुंह में गंध आना, रंगहीन होना, लार का रिसाव, खाने की

शैली में बदलाव आना, इन बीमारियों के प्रारम्भिक लक्षण होते है। श्वानो मे भी मशीनों द्वारा डेन्टल स्केलिंग होती है। साल मे तीन से चार बार श्वान विशेषज्ञ को दिखाते रहे। मनुष्यों जैसी कई आधुनिक पद्धतियां विभिन्न व्याधियों हेतु श्वानों मे प्रचलित है।

**3. कान मे होने वाली व्याधियां:** श्वानों के कान न सिर्फ अति संवेदनशील होते है, बल्कि यह एक विशेष आकर्षण प्रदान करते है। प्रारम्भिक अवस्था से ही इनकी सफाई पर ध्यान देना चाहिए। कई दवाईयां श्वान के कान के लिये उपलब्ध हैं। यह श्वान विशेषज्ञ के परामर्शानुसार उपयोग करे। धूल, परागकण, पानी इत्यादि अन्दर जाने पर कान से स्त्राव होता है, जिससे यह कान खुजलाते है और घाव होता है, जिससे कि कान मे सूजन (उटाइटिस) और हिमेटोमा जैसे रोग होते है, जो कि सिर्फ शल्य क्रिया से ठीक होते है। ऐसी अवस्था मे शल्य विशेषज्ञ को दिखाएं।

**4. आंखों की देखभाल:** श्वानों में सामान्यतः निकट्दृष्टि दोष जन्मजात होती है। स्वभाव एवं प्रकृति के अनुसार आंखों में चोट लगना और यदि इसकी तुरन्त चिकित्सा उपलब्ध न कराई जाए तो परिणाम गंभीर होते है। कनजक्टीवायटिस, कॉर्नियल अल्सर, किरेटाइटिस, कॉर्नियल ओपेसिटी, मोतियाबिंद, ऐपीफोरा जैसी बीमारियाँ मनुष्यों के समान श्वानों में भी होती है। समय-समय पर विशेषतः पांच वर्ष की उम्र के ऊपर आंख का परीक्षण श्वान विशेषज्ञ से नियमित रूप से कराएं। आंख की अधिकांश बीमारियों का इलाज संभव है एवं मोतियाबिंद को लेंस प्रत्यारोपण एवं शल्य क्रिया से ठीक किया जाता है। आंख से लगातार आंसू आने (एपीफोरा) पर आंख के मध्य की तरफ अश्रु नलिका को दबाने पर सामान्यतः यह ठीक हो जाता है। आंख की जांच से शरीर की कई आंतरिक बीमारियों का पता लगाया जा सकता है।

**5. पैरों की देखभाल:** प्रारम्भिक अवस्था से ही पंजों और नाखूनो का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उम्रानुसार पैर का विकास सन्तुलित आहार एवं व्यायाम से ही संभव है। बड़ी नस्ल के श्वानों में व्यायाम बहुत आवश्यक है जबकि छोटी नस्ल के श्वान घर में पर्याप्त व्यायाम कर लेते हैं। कैल्शियम की कमी से रिकेट्स नामक बीमारी हो जाता है जिससे की पैरों में विकृति एवं अपंगता आ जाती है जो कि श्वान पालक को एक बोझ बन जाता है जिससे वह कष्टप्रद जिंदगी जीने में मजबूर हो जाता है। पैरों में मोच, हड्डी का खिसकना, फ्रेक्चर का इलाज आधुनिक शल्य क्रिया से संभव है। जोड़ों में सूजन (आर्थराइटिस) एवं दर्द का आधुनिक इलाज संभंव है।

**6. गुदा रोग:** श्वानों में गुदा के नीचे की ओर पॉच और सात बजे की दिशा में दो गुदा ग्रन्थियाँ होती है, जिनका उपयोग श्वान टेरीटरी मार्किंग के लिये करते है, जिसकी उपयोगिता घर में नही है, अतः पालतू श्वान इनको खर्च नही कर पाता, फलस्वरूप स्त्राव भरता जाता है। जिससे कि इम्पैक्शन, फोड़ा, फिस्चुला, फ्रंकुलोसिस, ट्यूमर जैसी बीमारियों का जन्म होता है । साल में कम से कम तीन बार पशु चिकित्सक से इसका परीक्षण कराते रहे, जो कि इनको खाली करके दवा लगाते है । इनके विभिन्न रोगों की उन्नत शल्य क्रिया संभव है। श्वान द्वारा गुदा द्वार को लगातार चाटना, जमीन से रगड़ना, मल मूत्र में जोर लगाना, गन्ध आना जैसे लक्षण प्रकट हो तो श्वान विशेषज्ञ से संपर्क करें।

**7. प्रजनांगो की देखभाल:** व्यस्क नर एवं मादा श्वान ईस्ट्रस (गर्मी) के समय संपर्क में आते हैं जिससे कि आठ से दस दिन रक्त स्त्राव होता है। बच्चेदानी का मुंह इस समय खुला होने के कारण संक्रमण की संभावना रहती है। नर या मादा यदि किसी ग्रसित श्वान से मिलते हैं तो इनमें वैनेरल ग्रेनुलोमा बहुतायत से पाया जाता है, जो कि सेक्सुअली ट्रांसमिटेड डिसीज है। यह जनमांगों में होता है और बूंद-बूंद रक्त गिरता है। यह एक प्रकार का कैंसर है, जिसका इलाज कीमोथैरेपी द्वारा किया जाता है ।

यदि मादा ने बच्चे न दिये हो, या बच्चों के बीच लम्बा अन्तर हो, तो गर्भाशय में मवाद (पायोमेट्रा) बन जाता है जो कि एक गंभीर बीमारी है। बीमारी से ग्रसितं मादा में पानी ज्यादा, पीना, जननांगों को चाटना, बुखार आना एवं जननांगो से मवाद आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इसका इलाज दवाईयों एवं शल्य क्रिया द्वारा सफलतापूर्वक किया जाता है। अगर आप श्वान शिशु नर या मादा को प्रजनन के लिये उपयोग न कर रहे हों, तो प्रारंभिक छह माह की अवस्था में ही कैस्ट्रेषन या ओवेरियोहिस्टेटेक्टोमी करवा लें जिससे श्वान गम्भीर बीमारियाँ जैसे वेनेरल ग्रेनुलोमा, ओवेरोहिस्टरेक्टोमी, स्तनगांठ पायोमेट्रा, फाइमोसिस एवं पैराफाइमोसिस से मुक्त स्वस्थ जीवन बिता सकता है।

**8. आहार सम्बन्धी:** श्वानो को घर में बना हुआ भोजन दें। श्वानों को उनके भार का 5 से 10 प्रतिशत भोजन देना चाहिए। यह खुराक श्वान की बढ़ती उम्र के अनुसार बढ़ाना चाहिए। श्वान को कैल्सियम अधिक मात्रा में दें। प्याज एवं लहसुन से फ्राई भोज्य पदार्थ यथा संभव श्वान को नही देना चाहिए। श्वान के वर्तन को नियमित रूप से साफ रखे एवं फर्श को कीटाणुनाशक से साफ करें। श्वान को एक ही प्रकार के भोजन को लंबे समय तक नहीं दें। कार्य के अनुसार श्वान को विशेष खुराक दें। चॉकलेट, मछली, एवं चिकिन के बड़े टुकड़े श्वान को नहीं देना चाहिए ।

**9. अन्य:** श्वान का टीकाकरण समय से करवाना बहुत जरूरी है। टीकाकरण श्वान को एट इन वन (8 IN 1) एवं रेबीज जैसी बीमारियों से बचाव के लिये किया जाता है। एट इन वन श्वान को आठ घातक बीमारियां एवं रेबीज प्रतिरोधक टीका रेबीज से बचाव करता है ।

| | |
|---|---|
| एट इन वन / सेवेन इन वन | प्राथमिकः 6-7 सप्ताह |
| | बूस्टरः एक महीने बाद |
| रेबीज प्रतिरोधक टीका | |
| | प्राथमिकः 12-14 सप्ताह |
| | बूस्टरः एक महीने बाद |

इसके बाद प्रतिवर्ष दोनों की एक-एक खुराक लगवायें।

- श्वान को नियमित रूप से श्वान विशेषज्ञ को दिखायें।
- श्वान को हवादार कमरे में रखें।

श्वानों के इलाज हेतु आधुनिक पद्धतियां जैसे एक्सरे, सोनोग्राफी, सी आर्म, लैप्रोस्कोपी, फिजियोथेरिपी, डायथर्मी, नर्व स्टिमुलेटर, डेन्टल स्केलर, आथैल्मोस्कोप, ई.सी.जी. आदि उपलब्ध है।

# कृषि बजट 2026: दीर्घकालिक कृषि विकास की ओर निर्णायक कदम

कपिल मारन पीएच.डी. शोधार्थी, कृषि विस्तार शिक्षा विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय (म.प्र.)

रविंद्र डोहले पीएच.डी. शोधार्थी, कृषि विस्तार शिक्षा विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय

केन्द्रीय बजट 2026-27 में सरकार ने एक बार फिर यह स्पष्ट किया है कि देश की आर्थिक मजबूती की नींव कृषि और किसान हैं। इस वर्ष कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों के लिए लगभग रु. 1.62 लाख करोड़ का प्रावधान किया गया है, जो वर्ष 2025-26 के रु. 1.51 लाख करोड़ की तुलना में अधिक है। यह बढ़ा हुआ आवंटन दर्शाता है कि सरकार अब खेती को केवल परंपरागत क्षेत्र नहीं, बल्कि आय, रोजगार और खाद्य सुरक्षा का प्रमुख स्तंभ मानते हुए आगे बढ़ रही है।

## कुल कृषि बजट: आंकड़ों में मजबूती

बजट 2026 में कृषि क्षेत्र को मिली अतिरिक्त राशि का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ कृषि अवसंरचना, बाजार व्यवस्था और किसानों की आय सुरक्षा को मजबूत करना है। इस बजट में फसल उत्पादन के साथ-साथ पशुपालन, मत्स्य पालन, बागवानी और ग्रामीण विकास को भी शामिल किया गया है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को समग्र रूप से सशक्त किया जा सके।

## किसान आय बढ़ाने पर विशेष ध्यान

कृषि बजट 2026 का प्रमुख लक्ष्य किसानों की आय को स्थिर और सुरक्षित बनाना है। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (PM-KISAN) के तहत मिलने वाली सीधी नकद सहायता किसानों के लिए एक बड़ा सहारा बनी हुई है। इसके साथ ही न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) के तहत गेहूं, धान, दालों और तिलहनों की खरीद जारी रखी गई है। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले नुकसान की भरपाई में मदद करती है, जबकि किसान क्रेडिट कार्ड के माध्यम से किसानों को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध होता है।

## तकनीक आधारित खेती की ओर कदम

बजट 2026 में खेती को आधुनिक और वैज्ञानिक बनाने के लिए तकनीक को प्रमुख स्थान दिया गया है। डिजिटल कृषि प्लेटफॉर्म, मिट्टी स्वास्थ्य कार्ड, मोबाइल आधारित फसल सलाह और आधुनिक कृषि यंत्रों पर सब्सिडी जैसे प्रावधान किसानों को सही समय पर सही निर्णय लेने में मदद करेंगे। इससे खाद, बीज और पानी का संतुलित उपयोग होगा, लागत घटेगी और उत्पादन बढ़ेगा।

## भंडारण, कोल्ड चेन और खाद्य प्रसंस्करण

देश में हर साल बड़ी मात्रा में कृषि उपज भंडारण और परिवहन की कमी के कारण खराब हो जाती है। इसे ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना के तहत कोल्ड स्टोरेज, वेयरहाउस और खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के विस्तार पर जोर दिया गया है। इन सुविधाओं से किसान अपनी उपज

को लंबे समय तक सुरक्षित रख सकेंगे और बाजार में बेहतर दाम मिलने पर ही बिक्री कर पाएंगे।

## सौर ऊर्जा और सिंचाई में राहत

PM-KUSUM योजना के विस्तार से किसानों को सोलर पंप और सस्ती ऊर्जा उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। इससे डीजल और महंगी बिजली पर निर्भरता कम होगी और सिंचाई की लागत घटेगी। सौर ऊर्जा आधारित सिंचाई न केवल किसानों की बचत बढ़ाएगी, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक होगी।

## मध्य प्रदेश के किसानों के लिए विशेष अवसर

मध्य प्रदेश जैसे कृषि प्रधान राज्य को इस बजट से विशेष लाभ मिलने की संभावना है। राज्य में स्क्क पर गेहूं, चना, मसूर और सोयाबीन की खरीद, फसल बीमा, सोलर पंप और भंडारण परियोजनाओं का सीधा लाभ किसानों को मिलेगा। केंद्र से राज्यों को मिलने वाले बढ़े हुए अनुदान से ग्रामीण सड़कें, मंडियां, वेयरहाउस और सिंचाई परियोजनाएं मजबूत होंगी।

## केंद्र और राज्य प्रायोजित योजनाओं का समन्वय

केंद्र सरकार की PM-KISAN, PM-FBY, PM-KUSUM और PM-AASHA जैसी योजनाएं किसानों को सीधा लाभ देती हैं, जबकि राज्य सरकारें MSP बोनस, सिंचाई सहायता और स्थानीय फसल प्रोत्साहन योजनाएं लागू करती हैं। केंद्र और राज्य के बेहतर समन्वय से योजनाओं का लाभ अंतिम किसान तक पहुंचाना आसान होगा।

## किसानों के साथ उपभोक्ताओं को भी लाभ

कृषि बजट 2026 का प्रभाव केवल किसानों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सीधा लाभ उपभोक्ताओं को भी मिलता है। किसानों को जब स्थिर आय, कम उत्पादन लागत और बेहतर भंडारण व विपणन सुविधाएं प्राप्त होती हैं, तो वे बिना दबाव के अपनी उपज बाजार में ला पाते हैं। कोल्ड स्टोरेज, वेयरहाउस और खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों के विस्तार से फसल की बर्बादी कम होती है, जिससे बाजार में खाद्यान्न की उपलब्धता बनी रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ताओं को अनाज, दालें, सब्जियां और फल उचित दरों पर मिलते हैं तथा अचानक मूल्य वृद्धि की स्थिति कम होती है।

## निष्कर्ष

कृषि बजट 2026 किसानों के लिए केवल राहत नहीं, बल्कि सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता की दिशा में एक ठोस कदम है। यदि योजनाओं का प्रभावी और पारदर्शी क्रियान्वयन होता है, तो यह बजट भारतीय कृषि को आधुनिक, टिकाऊ और लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रो. बालिक दास राय
बन्टी राय
98276-11495
88715-18885
मै. माँ उर्वरक केन्द्र

अमित राय
रसायनिक एवं
जैविक खाद बीज
एवं दवाई के विक्रेता

पताः भितरवार रोड, डबरा (म.प्र.)
03/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
मध्य प्रदेश

हेमन्त कुमार सिन्हा कृषि वैज्ञानिक
छतरपुर, (म.प्र.)

# तपती गर्मी में सब्जियों की मुस्कान

# भिण्डी, मिर्च और टमाटर की उन्नत खेती से निरंतर उत्पादन

भारत के मध्य भाग, विशेषकर मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड सूखाग्रस्त क्षेत्रों जैसे छतरपुर में मार्च से जून तक तापमान 45-49 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। ऐसी परिस्थितियों में सब्जी उत्पादन बनाए रखना किसानों के लिए चुनौतीपूर्ण होता है।

अधिक तापमान, तेज लू, नमी की कमी तथा फूल झड़ने जैसी समस्याएँ आम हैं। फिर भी यदि सही समय पर बुवाई, गर्मी सहनशील किस्मों का चयन तथा उन्नत कृषि तकनीकों का समुचित उपयोग किया जाए, तो भिंडी, मिर्च और टमाटर से गर्मी के पूरे मौसम में निरंतर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए जनवरी-फरवरी से ही फसल की वैज्ञानिक योजना बनाना आवश्यक है, ताकि अप्रैल से जून तक बाजार में ताजी सब्जियों की नियमित उपलब्धता बनी रहे और किसानों को बेहतर मूल्य मिल सके।

भिण्डी को गर्मी की सबसे उपयुक्त और भरोसेमंद फसल माना जाता है। इसकी बुवाई फरवरीङ्कमार्च में करने पर अप्रैल से जुलाई तक निरंतर तुड़ाई मिलती रहती है। यह फसल 25 से 35 डिग्री तापमान में अच्छी वृद्धि करती है तथा 40 डिग्री तक सहन करने की क्षमता रखती है। खेत में 45×30 सेंटीमीटर की दूरी पर बुवाई तथा 8-10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज दर उपयुक्त रहती है। बुवाई से पूर्व बीजोपचार ट्राइकोडर्मा से करने पर जड़ संबंधी रोगों से बचाव होता है। नाइट्रोजन की आपूर्ति दो से तीन किस्तों में करने से पौधों की बढ़वार बेहतर होती है। पीला मोजेक वायरस से बचाव हेतु सफेद मक्खी का नियंत्रण आवश्यक है। नियमित अंतराल पर तुड़ाई करने से नई फलियों का निर्माण होता रहता है और उत्पादन लंबे समय तक बना रहता है। मिर्च एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है जिसकी मांग गर्मी में अधिक रहती है। जनवरी-फरवरी में नर्सरी तैयार कर फरवरी-मार्च में रोपाई करने से अप्रैल से जून तक उत्पादन प्राप्त होता है। 20 से 35 डिग्री तापमान मिर्च के लिए अनुकूल है, किंतु अधिक तापमान में फूल झड़ने की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इससे बचाव के लिए नियमित एवं हल्की सिंचाई, मल्चिंग तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे बोरॉन का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव लाभकारी सिद्ध होता है। थ्रिप्स एवं माइट जैसे कीटों की निगरानी आवश्यक है, जिनके नियंत्रण हेतु नीम आधारित जैव कीटनाशकों का प्रयोग प्रभावी रहता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली अपनाने से पौधों को नियमित नमी मिलती है, जल की बचत होती है तथा उत्पादन स्थिर बना रहता है। टमाटर सामान्यतः शीतकालीन फसल मानी जाती है, परंतु गर्मी सहनशील किस्मों और उन्नत तकनीकों के माध्यम से इसे गर्मी में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

जनवरी में नर्सरी तैयार कर फरवरी में रोपाई करने से अप्रैल से जून तक फलन प्राप्त होता है। 18 से 30 डिग्री तापमान फल निर्माण के लिए आदर्श है, जबकि 35 डिग्री से अधिक तापमान पर परागण प्रभावित हो सकता है। इस स्थिति में 50 प्रतिशत शेड नेट का उपयोग, काली पॉलिथीन मल्चिंग तथा नियमित सिंचाई अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। कैल्शियम नाइट्रेट एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित छिड़काव ब्लॉसम एंड रॉट जैसी समस्याओं को कम करता है। पौधों को सहारा देने (स्टेकिंग) तथा समय-समय पर छंटाई करने से गुणवत्तापूर्ण और अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। अतः यदि किसान फरवरी-मार्च में भिंडी, मिर्च और टमाटर की वैज्ञानिक ढंग से रोपाई करें तथा ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, संतुलित उर्वरक प्रबंधन और समेकित कीट-रोग प्रबंधन तकनीकों को अपनाएं, तो गर्मी के पूरे मौसम में निरंतर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इससे न केवल घरेलू आवश्यकता की पूर्ति होती है, बल्कि बाजार में ऊँचे दाम मिलने से किसानों की आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। वैज्ञानिक योजना और समयबद्ध प्रबंधन ही गर्मी के मौसम में सफल सब्जी उत्पादन की कुंजी है।

✍ डॉ. राम कुमार राय गेस्ट फैकल्टी (उद्यानिकी विभाग) जवारलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय पन्ना (म.प्र.)

# फरवरी-मार्च के महीनों में आम (MANGO) की फसल में किए जाने वाले मुख्य कृषि कार्य

**1. मंजर (फूल) आने का समय-** * इस समय आम में मंजर (बौर) आता है। * पेड़ों की नियमित निगरानी करें। * फूलों पर कीट या रोग का प्रकोप न हो, इसका ध्यान रखें।

**2. कीट नियंत्रण-** आम में मिलीबग (Mealy Bug) और हॉपर (Mango Hopper) दो प्रमुख कीट हैं, जो फूल और फल अवस्था में अधिक नुकसान करते हैं

**आम का मिलीबग (Mango Mealy Bug)**

**वैज्ञानिक नामः** ड्रोसिफ़िला मैंगिफ़ेरी

**पहचान व नुकसान** * दिसंबर-जनवरी में जमीन से निम्फ निकलकर तने पर चढ़ते हैं। * कोमल पत्तियों, मंजरियों और फलों का रस चूसते हैं। * पत्तियाँ मुड़ जाती हैं, मंजरियाँ सूखती हैं, फल झड़ते हैं। * मधुरस (हनीड्यू) छोड़ते हैं, जिस पर कालिखी फफूंद (Sooty mold) लगती है।

**जीवन-चक्र**

* मादा अक्टूबर-नवंबर में मिट्टी में 200-400 अंडे देती है। * अंडे 2-3 माह बाद (दिसंबर-जनवरी) फूटते हैं। * निम्फ पेड़ पर चढ़कर 3-4 अवस्थाओं से गुजरते हैं। * मार्च-अप्रैल में प्रौढ़ बनते हैं और फिर जमीन में अंडे देते हैं।

**समेकित नियंत्रण (IPM)**

**कर्षण उपाय**

* अक्टूबर-नवंबर में पेड़ के चारों ओर 15-20 सेंमी गहरी खुदाई करें, अंडे नष्ट होंगे।

* बगीचे की साफ-सफाई रखें, खरपतवार हटाएँ।

* तने पर चढ़ने से रोकने के लिए पॉलीथीन/अल्काथीन बैंड (25-30 सेंमी चौड़ा) दिसंबर के प्रथम सप्ताह में बाँधें।

* बैंड के नीचे ग्रीस/चिकना तेल लगाएं ताकि रेंगकर चढ़ने बाले कीट तने से ऊपर की ओर न पहुंच सकें ।

**यांत्रिक उपाय**

* निम्फ दिखते ही झाड़कर मिट्टी में गिराएँ और नष्ट करें।

* तने पर चिपचिपा बैंड लगाकर ऊपर चढ़ने से रोकें।

**जैविक नियंत्रण**

* 5% नीम अर्क (NSKE) या नीम तेल 2-3 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। * लाभकारी कीट जैसे लेडीबर्ड बीटल का संरक्षण आवश्यक हैं।

**रासायनिक नियंत्रण (आवश्यकता होने पर)** * क्लोरपायरीफॉस 20 EC 2-2.5 मि.ली./लीटर पानी या * इमिडाक्लोप्रिड 17.8 SL 0.3 मि.ली./लीटर पानी * पहला छिड़काव निम्फ अवस्था (जनवरी) में, आवश्यकता अनुसार 10-15 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

फरवरी माह में आम के पेड़ में मंजर (फ्लॉवरिंग) का चित्र।

**आम का हॉपर (Mango Hopper)**

**मुख्य प्रजातियाँः** * इडियोस्कोपस क्लिपियलिस * इडियोस्कोपस निटिडुलस * अमृतोडस एटकिंसनी

**पहचान व नुकसान** * छोटे भूरे/हरे रंग के कीट, फूल अवस्था (जनवरी-मार्च) में अधिक।

* पत्तियों व मंजरियों से रस चूसते हैं।

* फूल सूखते हैं, फल सेटिंग कम होती है।

* हनीड्यू से कालिखी फफूंद लगती है।

**जीवन-चक्र** * मादा कोमल टहनियों/मंजरियों में अंडे देती है। * 4-7 दिन में निम्फ निकलते हैं। * 2-3 सप्ताह में प्रौढ़ बन जाते हैं। * साल में कई पीढ़ियाँ।

**समेकित नियंत्रण (IPM)**

**कर्षण उपाय** * संतुलित उर्वरक प्रबंधन (अधिक नाइट्रोजन से बचें)। * घनी छँटाई से बचें, उचित वायु संचार रखें। * फूल आने से पहले बगीचे की सफाई।

**निगरानी** * प्रति मंजरि 5-10 हॉपर दिखें तो नियंत्रण आवश्यक। * सुबह-शाम पेड़ों को हिलाकर संख्या का आकलन करें।

**जैविक उपाय** * 5% नीम अर्क या नीम तेल 2-3 मि.ली./लीटर। * बवेरिया बेसियाना (Beauveria bassiana) का छिड़काव (लेबल अनुसार)।

**रासायनिक नियंत्रण (फूल अवस्था में सावधानी से)**

* इमिडाक्लोप्रिड 17.8 स्र 0.3 मि.ली./लीटर या थायमेथोक्साम 25 WG 0.25 ग्राम/लीटर अथवा लैम्ब्डा-सायहेलोथ्रिन 5 EC 0.5 मि.ली./लीटर उपयोग मे लाये

* पहला छिड़काव मंजरि निकलते समय, दूसरा 10-15 दिन बाद (आवश्यकता अनुसार)।

* मधुमक्खियों की सुरक्षा हेतु शाम के समय छिड़काव करें।

**विशेष सावधानियां**

* एक ही दवा का बार-बार प्रयोग न करें (रोटेशन अपनाएँ)। * अनुशंसित मात्रा ही लें। * फल तुड़ाई से पहले प्रतीक्षा अवधि (Waiting period) का पालन करें। * IPM अपनाएँ, केवल रसायनों पर निर्भर न रहें।

**3. रोग नियंत्रण**

* पाउडरी मिल्ड्यू (सफेद चूर्णी रोग) ङ्क फूल और छोटी फलियों पर सफेद परत दिखती है। आम मे चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यु ) रोकथाम के लिये 250 ग्राम कैराथेन का 500 लीटर पानी

* बचाव हेतु फफूंदनाशी जैसे गंधक (सल्फर ) 500 ग्राम/पौधा चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए या डायानोकेप 1 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव फरवरी-मार्च में 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

* एन्थ्रेक्नोज रोग - फूल और फलों पर काले धब्बे।

**4. सिंचाई प्रबंधन**

* फूल आने के समय हल्की सिंचाई करें।

* अधिक पानी न दें, वरना फूल झड़ सकते हैं।

* यदि बारिश न हो तो 10-15 दिन के अंतराल पर हल्की सिंचाई करें।

**5. खाद एवं उर्वरक**

आम की फसल में पोषक तत्वों की मात्रा क्षेत्र विशेष, मृदा प्रकार एवं पौधों की आयु पर निर्भर करती हैद्य 73 ग्राम नत्रजन , 18 ग्राम स्फूर (फॉस्फोरस ) एवं 68 ग्राम पोटाश बाग लगाने के प्रथम वर्ष, दूसरे वर्ष मात्रा का दोगुना फिर तीन गुना ठीक इसी प्रकार दशवें वर्ष यह मात्रा 730 ग्राम नत्रजन, 180 ग्राम स्फुर (फॉस्फोरस) एवं 680 ग्राम पोटाश के अनुसार देना है उर्वरकों की मात्रा 2 बराबर भागों में जुलाई अगस्त एवं अक्टूबर माह में देना चाहिए। कार्बनिक खाद एवं फास्फेटिक उर्वरक फल तुड़ाई के तुरंत बाद में जबकि अमोनियम सल्फेट की मात्रा फूल आने से कुछ समय पहले प्रयोग में लाना चाहिए द्य ध्यान रखें इस समय नाइट्रोजन की हल्की मात्रा दी जा सकती है। जैविक खाद (गोबर की सड़ी खाद) उपयोगी रहती है एवं सूक्ष्म पोषक तत्व (जैसे जिंक, बोरॉन) का स्प्रे फलों के बनने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है

**6. सफाई एवं निराई-गुड़ाई**

* पेड़ के नीचे की घास-फूस हटाएं क्योंकि पेड़ो के तनों के आस - पास पड़ी हुयी घास-पूस, खरपतवार, कीटों एवं रोगों का आश्रय होते है। * बगीचे की साफ-सफाई रखें ताकि कीट व रोग कम फैलें।

**7. फल गिरने की रोकथाम**

* यदि फल बनना शुरू हो जाए तो अल्फ़ा नेफ्थेलिक एसिटिक एसिड NAA (प्लैनोफिक्स) 200 ppm का हल्का छिड़काव फल झड़ने से बचाता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

# पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन में मार्कर सहायतित चयन (Marker Assisted Selection)

डॉ. प्रतिमा घृतलहरे, डॉ. केशर परवीन
पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु विश्वविद्यालय दुर्ग (छत्तीसगढ़)

पशु आनुवांशिकी एवं प्रजनन (Animal Genetics and Breeding) आधुनिक पशुपालन का एक महत्वपूर्ण विज्ञान है, जिसका मुख्य उद्देश्य पशुओं की उत्पादकता, प्रजनन क्षमता, स्वास्थ्य एवं आर्थिक गुणों में सुधार करना है। पारंपरिक रूप से चयन (Selection) बाह्य रूप (Phenotype) और वंशावली (Pedigree) के आधार पर किया जाता था, परंतु जैव-प्रौद्योगिकी के विकास के साथ अब आणविक स्त रपर चयन संभव हो गया है। इसी उन्नत पद्धति को मार्कर सहायतित चयन (Marker Assisted Selection- MAS) कहा जाता है

**मार्कर सहायतित चयन का अर्थ:** मार्कर सहायतित चयन एक ऐसी विधि है जिसमें डीएनए मार्कर (DNA Marker) की सहायता से उन जीनों की पहचान की जा सकती है जो किसी विशेष आर्थिक गुण (Economic Trait) को नियंत्रित करते हैं। इन मर्करो के आधार पर श्रेष्ठ पशुओ का चयन किया जाता है, जिससे अगली पीढी में वांछित गुणों की अभिव्यक्ति अधिक प्रभावी रूप से हो सके। यह पद्धति पारंपरिक चयन से अधिक सटीक, तेज और वैज्ञानिक मानी जाती है क्योंकि इसमे Genotype के आधार पर चयन किया जाता है, न कि केवल Phenotype के आधार पर।

**डीएनए मार्कर क्या होते है?** डीएनए मार्कर ऐसे विशिष्ट डीएनए अनुक्रम (DNA Sequences) होते हैं जो जीनोम में किसी विशेष स्थान पर उपस्थित होते हैं और किसी विशेष आर्थिक गुण से जुड़े हो सकतेहैं, इसलिए उनके माध्यम से उस जीन की उपस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

**प्रमुख डीएनए मार्कर प्रकार**

1. RFLP (Restricted Fragment Length Polymorphism)
2. Microsatellite Markers
3. SNP (Single Nucleotide Polymorphism)

आजकल SNP मार्कर का अधिक उपयोग किया जाता है क्योंकि ये अधिक सटीक और व्यापक होते हैं

**मार्कर सहायतित चयन की आवश्यकता**

* पारंपरिक चयन विधियों में कई सीमाएं होती हैं, जैसे-
* कम विरासनियता (Low Heritability) वाले गुणों का चयन कठिन होता है
* देर से अभिव्यक्त होने वाले गुण (जैसे दुग्ध उत्पादन) का मूल्यांकन करने में समय लगता है
* केवल Phenotype पर आधारित चयन में पर्यावरणीय प्रभाव भी शामिल हो जाते हैं।

**MAS इन समस्याओ को कम करता है क्योंकि-**

* यह प्रारंभिक अवस्था में ही चयन की सुविधा देता है
* नर पशुओ में दुग्ध उत्पादन जैसे गुणों का चयन संभव बनाता है
* चयन की सटीकता (Accuracy) बढ़ाता है

**MAS की कार्यप्रणाली**

मार्कर सहायतित चयन निम्न चरणों में किया जाता है-

1) **QTL (Quantitative Trait Loci) की पहचान**- पहले यह निर्धारित किया जाता है कि कौन सा जीन या जीन-क्षेत्र (QTL) किसी आर्थिक गुणों को नियंत्रित करता है।

2) **मार्कर की पहचान** - उस जीन के निकट स्थित डीएनए मार्कर की खोज की जाती है।

3) **Genotyping** - पशुओ के डीएनए का परिक्षण करके यह देखा जाता है की उनमे वांछित मार्कर उपस्थित है या नहीं।

4) **चयन (Selection)**- जिन पशुओ में वांछित मार्कर पाया जाता है, उन्हें प्रजनन के लिए चुना जाता है।

**पशुपालन में MAS के उपयोग**

* **दुग्ध उत्पादन में सुधार**- गाय और भैस में अधिक दूध देने वाले जीन की पहचान।
* **रोग प्रतिरोधक क्षमता**- जैसे mastitis प्रतिरोधकता से समन्धित जीन का चयन
* **मास उत्पादन** - तेजी से बढ़ने वाले पशुओ का चयन
* **प्रजनन क्षमता**- बेहतर प्रजनन दर वाले पशुओ का चयन

उदहारण के रूप में, डेयरी पशुओ में दुग्ध उत्पादन से सम्बंधित जीनो की पहचान कर उनका चयन किया जाता है, जिससे भविष्य की पीढियों में अधिक उत्पादन प्राप्त होता है7

**MAS के लाभ** * चयन की अधिक सटीकता * कम समय में आनुवांशिक सुधार * कम विरासनियता वाले गुणों में भी सुधार * लिंग-सिमित गुणों (Sex-Limited) का चयन संभव * रोग नियंत्रण में सहायक

**MAS की सीमाएं** * प्राम्भिक लागत अधिक होती है * प्रयोगशाला सुविधाओ और तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता * सभी गुणों के लिए उपयुक्त मार्कर उपलब्ध नहीं है * जटिल गुण (Polygenic traits) के लिए पूरी तरह प्रभावी नहीं

पारंपरिक चयन बनाम **MAS**

| आधार | पारंपरिक चयन | **MAS** |
|---|---|---|
| चयन का आधार | PHENOTYPE | GENOTYPE |
| सटीकता | मध्यम | अधिक |
| समय | अधिक | कम |
| लागत | कम | प्रारम्भ में अधिक |
| पर्यावर्णीय प्रभाव | अधिक | कम |

**भविष्य की सम्भावनाए:** आज के समय में जेनोमिक चयन (genomic selection) और बायोइन्फार्मेटिक्स के विकास के साथ MAS और भी प्रभावी हो गया है। SNP चिप्स और सम्पूर्ण जीनोम विश्लेषण के माध्यम से हजारो मार्करो का एक साथ परिक्षण संभव है। भविष्य में यह तकनीक भारत जैसे देश में पशुधन सुधार कार्यक्रमों को नयी दिशा दे सकती है।

**निष्कर्ष:** मार्कर सहायतित चयन पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन के क्षेत्र में एक क्रन्तिकारी तकनीक है। यह पारम्परिक चयन विधियों की सीमाओं को दूर कर अधिक सटीक और तीव्र आनुवांशिक सुधार संभव बनाता है। यद्दपि इसकी लागत और तकनीकी आवश्यकताएं अधिक हैं, फिर भी दीर्घकाल में यह पशुपालन की उत्पादकता और लाभप्रदता बढ़ाने में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। भारत में वैज्ञानिक प्रजनन कार्यक्रमों में MAS का समुचित उपयोग करके दुग्ध, मांस और अन्य पशु उत्पादों की गुणवत्ता एवं मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
छत्तीसगढ़

✍डॉ. थानेश्वर कुमार, डॉ. अंजली पटेल
सहायक प्राध्यापक, कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, पखांजूर, कांकेर (छ.ग.)
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

# प्राकृतिक खेती : प्रकृति के संग खेती

## प्राकृतिक खेती

प्राकृतिक खेती, कृषि की प्राचीनतम विधि है, जो भूमि के प्राकृतिक स्वरूप को बनाए रखती है। प्राकृतिक खेती में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग नहीं होता है, बल्कि प्रकृति में आसानी से उपलब्ध होने वाले प्राकृतिक तत्वों तथा जीवाणुओं के उपयोग से खेती की जाती है। यह पद्धति पर्यावरण के अनुकूल है तथा फसलों की लागत कम करने में कारगर है। प्राकृतिक खेती में जीवामृत (जीवों के लिये अमृत), घन जीवामृत एवं बीजामृत का उपयोग पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने के लिए किया जाता है। इनका उपयोग फसलों पर घोल के छिड़काव अथवा सिंचाई के पानी के साथ में किया जाता है प्राकृतिक खेती में कीटनाशकों के रूप में नीमास्त्र, ब्रम्हास्त्र, अग्निअस्त्र, दशपर्णी अर्क, नीम पेस्ट, गोमूत्र का इस्तेमाल किया जाता है। प्राकृतिक खेती में प्रकृति में उपलब्ध जीवाणुओं, मित्र कीट और जैविक कीटनाशक द्वारा फसल को हानिकारक कीट-रोगों से बचाया जाता है।

प्राकृतिक खेती को रासायनमुक्त खेती के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें केवल प्राकृतिक आदानों का उपयोग करते है। कृषि-पारिस्थितिकी में अच्छी तरह से आधारित यह एक विविध कृषि प्रणाली है जो फसलों, पशुधन, जीव-जन्तु और पेड़ों को एकीकृत करती है, जिससे कार्यात्मक जैव विविधता के इष्टतम उपयोग की सुविधा मिलती है।

## प्राकृतिक खेती की आवष्यकता

हमें पिछ्ले कई वर्षो से खेतो में उपयोग होने वाले रसायनिक कीटनाशकों से खेती में काफी नुकसान देखने को मिल रहा है, इसका मुख्य कारण कीटनाशकों का बढ़ता उपयोग है। भूमि के प्राकृतिक स्ववरूप में भी काफी बदलाव हो रहे हैं जो हमारे लिए काफी नुकसानदायक हो सकते हैं। रासायनिक खेती से जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण प्रतिदिन बढ़ रहा है। इस प्रदूषण के कारण प्रकृति और मनुष्य के स्वास्थ्य में काफी गिरावट आई है। किसानों की फसल द्वारा अर्जित आय का आधा हिस्सा रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक खरीदने में चला जाता है। क्योंकि रासायनिक कीटनाशक काफी महंगे होते हैं। रासायनिक खाद और कीटनाशक के उपयोग से भूमि अपनी उर्वरा क्षमता खोती जा रही है। साथ ही खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता खत्म हो जाती है, जिससे हमारे स्वयस्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि किसान खेती में अधिक और दीर्घकालीक मुनाफा कमाना चाहता है तो उसे प्राकृतिक खेती की तरफ अग्रसर होना चाहिए। प्राकृतिक खेती से उगाई गई खाद्य पदार्थों में जिंक और आयरन जैसे कई सारे खनिज तत्व उपस्थित होते है जो हमारे स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक होती है।

## प्राकृतिक खेती का महत्व

भोजन के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट 2017 में कहा गया है कि कृषि-पारिस्थितिकी (Agroecology) विश्व की संपूर्ण आबादी को भोजन उपलब्ध कराने और उसका उपयुक्त पोषण सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त पैदावार देने में समक्ष है। ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं जहां गांव प्राकृतिक खेती की ओर आगे बढ़ते हुए ग्रामीण जीवन में रूपांतरण ला रहे हैं तथा शहरों में भी प्राकृतिक खेती के सफल प्रयोग हो रहे हैं।

## प्राकृतिक खेती के मुख्य घटक

**1.जीवामृत:** यह देशी गाय के गोबर (10 किग्रा), गोमूत्र (5-10 लीटर), गुड़ (2 किग्रा), दाल का आटा (2 किग्रा), पानी (200 लीटर) और खेत की मेड़ से ली गई मुठ्ठीभर मिट्टी का तरल है। जीवामृत से मृदा को पोषक तत्व मिलते हैं और यह एक उत्प्रेरक के रुप में कार्य करता है, जिसकी वजह से मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ जाती है। इसके अलावा जीवामृत की मदद से पेड़-पौधों को कवक और जीवाणु से उत्पन्न रोग होने से भी बचाया जा सकता है। एक एकड़ जमीन के लिए 200 लीटर जीवामृत मिश्रण की जरुरत पड़ती है। किसान को अपनी फसलों में एक महीने में जीवामृत का 2 बार छिड़काव करना चाहिए। इसे सिंचाई के पानी में मिलाकर भी उपयोग किया जाता है।

**जीवामृत बनाने के विधि-** एक ड्रम में 200 लीटर पानी डालें, उसमें 10 किलो ताजा गाय का गोबर 10 लीटर गाय का मूत्र मिलायें, घोल में 2 किलो बेसन मिलायें, इसमें 150 ग्राम मिट्टी (किसी बड़े पेड़ के नीचे की या खेत के मेढ़ की) मिलायें। यह सब चीजें मिलाने के बाद मिश्रण को 86 घण्टो के लिए छाया में कपड़े से ढक कर रख दें। 6 दिन तक सुबह-शाम 5 मिनट अच्छी तरह मिलाएं। मिश्रण इस्तेमाल के लिए तैयार हो जाएगा।

**2.बीजामृत-** यह स्थानीय गाय के गोबर (5 किग्रा.), स्थानीय गोमूत्र (5 लीटर), चूना (50 ग्राम), पानी (20 लीटर) और खेत की मेंड़ से ली गई मुट्ठी भर मिट्टी के साथ बनाया जाने वाला बीज उपचार सूत्र हैं।

**बीजामृत बनाने की विधि-** 5 किलो देशी गाय के गोबर को एक कपड़े से बांधकर 20 लीटर पानी में 12 घंटे के लिए टांग दें फिर इस गोबर के बंडल को लगातार 6 बार पानी में निचोड़े उसके बाद उस घोल में एक मुट्ठी मिट्टी पानी में अच्छी तरह से मिला दें, अलग से 1 लीटर पानी में 50 ग्राम चूना मिलाकर रात भर रखें और अगले दिन उपर्युक्त घोल में मिला दें इस प्रकार बीजामृत को बीजोपजार के लिए तैयार करते है।

**3.मल्चिंग/आच्छादन-** मल्चिंग तीन प्रकार की होती है। पहली मिट्टी की मल्चिंग द्वारा पानी का संरक्षण करना और साथ ही खरपतवारों को नियंत्रित करना। दूसरा है भूसा मल्चिंग जहाँ फसल अवशेषों को प्राकृतिक अपघटन के लिए खेत में ही रहने दिया जाय और बाद में पोषक तत्वों की हानि को रोकने के लिए खेत में ही मिला दिया जाय और तिसरी सह-फसल एवं मिश्रित फसल के द्वारा सजीव मल्चिंग।

* मिट्टी आच्छादन * पुआल/भूसा आच्छादन * सजीव आच्छादन

**4.वाफसा:** इसमे सिंचाई के स्थान पर मृदा में नमी एवं वायु की उपस्थ्ति को महत्व दिया जाता है। इस आयाम के अनुसार पौंधौ को बढने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती वे वाफसा यानी भाप की मदद से भी बढ़ सकते हैं। वाफसा वह स्थिति होती है जिसमें मिट्टी में मौजूद हवा व पानी के अणु की मदद से पौधे का विकास हो जाता है। यह मिट्टी में सूक्ष्म जलवायु का निर्माण है जिसके द्वारा मिट्टी के जीव और जड़े मिट्टी में उपलब्ध अथवा पर्याप्त हवा और आवश्यक नमी दें। मिट्टी के कणों के बीच जगह में 50 प्रतिशत वायु और 20 प्रतिशत जल वाष्प की स्थिति के साथ स्वतंत्र रुप से रह सकते हैं। जब हम पौधे की छाया के बाहर पानी देते हैं, यानी 12.00 बजे पौधे की छाया के बाहर वापस अनुरक्षित रहती हैं क्योंकि छाया जड़ें जो बाहरी चंदवा क्षेत्र से पानी लेती है।

✎**समीर वर्मा** पी.एच.डी. शोध छात्र फल विज्ञान विभाग
✎**डॉ. भानू प्रताप** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष फल विज्ञान विभाग
✎**डॉ. संतोष कुमार** एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या (उ.प्र.)

# आम की फूल अवस्था में रोग पहचान एवं रोकथाम की उन्नत तकनीकें

**परिचय:** फरवरी का महीना आम के लिए टर्निंग पॉइंट माना जाता है. जनवरी की कडाके की ठंड और शीतलहर के कारण आम के पेडों की वृद्धि रुक जाती है लेकिन फरवरी में मौसम बदलने के साथ पेडों में दोबारा ग्रोथ शुरू हो जाती है. इसी समय पेडों पर छोटी फलियां निकलनी शुरू हो जाती हैं। आम के पेड़ों पर नर और मादा दोनो प्रकार के फूल लगते है, नर फूल शाखाओं के शीर्ष पर और मादा फूल पत्तियों के कक्षों में पाये जाते है, फल लगने के लिये नर और मादा फूलों का होना आवश्यक है । फरवरी के महीने में गर्मियों की आहट के साथ आम के बागों में रौनक बढ जाती है लेकिन यही समय सबसे ज्यादा सावधानी की जरूरत की होती है, यदि इस समय थोडी सी लापरवाही की जाए, तो फल झड़ने लगते हैं और पैदावार पर सीधा असर पडता है, खासकर गुच्छा रोग, जिसे स्मॉल फॉर्मेशन या मालफॉर्मेशन भी कहा जाता है। इसलिए यह जरुरी हो जाता हो जाता है, कि समय रहते फसल में आने वाली समस्याओं को पहचाना जाये और उनकी रोक थाम की जाये। आम की फसल पर लगने वाले रोगों और उनके प्रबंधन-

**आम पर लगने वाले प्रमुख रोग**

**गुच्छा या गुम्मा रोग (मलफार्मेशन)**

यह एक प्रकार का आम पेड़ों पर होने वाला रोग है। प्राय इस रोग के कारकों में फ्यूजेरियम सबग्लोटिनेंस नामक फफूंद के कारण होता है। लेकिन अनेक विषेशज्ञों का मानना है। कि इस रोग का कारण पौधे में होने वाले हार्मोनों का असंतुलन है। गुम्मा रोग से ग्रसित आम के पेड़ में पत्तियों और फूलों में असामान्य वृध्दि और फल विकास अवरुद हो जाता है। ऐसा पाया गया है कि आम की भारतीय प्रजातियां इस रोग से अधिक ग्रसित होती है।

**लक्षण:** नई पत्तियों और फूलों की असामान्य वृध्दि टहनियों पर एक ही स्थान पर अनगिनत छोटी-छोटी पत्तियां निकल आना, बौर के फूलों का असामान्य आकर होना, फूल का गिर जाना, फल निर्माण अबरूद्द हो जाना आदि।

यह दो प्रकार का होता है

**आम के पत्तियों का गुम्मा ( लीफ इनफार्मेशन) :** आम की टहनी पर एक पट्टी के स्थान पर अनगिनत छोटी-छोटी पत्तियों का गुच्छा बन जाना, तने की गांठों के बीच अंतराल अत्यधिक कम हो जाना, पत्तियों का कड़ा हो जाना, बाद में यह गुच्छा नीचे की और झुक जाता है। और टॉप जैसा दिखता है।

**आम के फूलों का गुम्मा ( फ्लोरल मलफार्मेशन) :** इस रोग से ग्रसित बौर की डाली अधिक मोटी और अधिक शाखायुक्त हो जाती है, जिस पर दो से तीन गुना अधिक असामान्य पुष्प बन जाते हैं। जो कि फल में परिवर्तित नहीं हो पाते हैं। अथवा यदि इन पुष्पों से फल बनता भी है तो जल्द ही सूखकर गिर जाते हैं।

**रोकथाम :** इस बीमारी का मुख्य लक्षण यह है, कि इसमें पूरा बौर नपुंसक फलों का एक ठोस गुच्छा बन जाता है। आम के पौधे गुम्मा रोग से बचाने के लिए रोगग्रस्त पुष्पों की मंजरियों को 30-40 सेमी नीचे से कटाई कर दें और धरती में खोद कर दवा दें।

उपचार के लिए प्रारम्भिक अवस्था में जनवरी-फरवरी माह में बौर को तोड़ दें और अधिक प्रकोप होने पर 200 पीपीएम वृध्दि होरमोन की 900 मिली प्रति 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर दें, और कलियाँ आने की अवस्था में जनवरी के महीने में पेड़ के बौर तोड़ देना भी लाभदायक रहता है, क्योंकि इससे न केवल आम की उपज बढ़ जाती है। वल्कि इस बीमारी के आगे फैलने की सम्भावना भी कम हो जाती है। चार मिली लीटर प्लानोफिक्स प्रति नौ लीटर पानी में घोलकर फरवरी-मार्च के महीने में छिड़काव करें।

**सफेद चूर्णी रोग या दहिया रोग (पावडर मिल्डिव):** बौर आने की अवस्था में यदि मौसम बादल वाला हो या बरसात हो रही हो तो यह बीमारी लग जाती है। इस बीमारी के प्रभाव से रोगग्रस्त भाग सफेद दिखाई देने लगता है। इससे मंजरियां और फूल सूखकर गिर जाते है।

**रोकथाम:** इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही आम के पेड़ों पर पांच प्रतिशत वाले गंधक (दो ग्राम/लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त डायनोकेप (कैराथेन/मिली प्रति लीटर) घोलकर छिड़काव करने से भी बीमारी पर नियंत्रण पाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में बौर आने के समय मौसम असामान्य रहा हो बहां हर हालत में सुरक्षात्मक उपाय के आधार पर 0.2% वाले गंधक के घोल का छिड़काव करें और जरुरत के अनुसार उसे दुहराएँ।

**कालावूण रोग एन्थ्रेक्नोज रोग :** यह बीमारी अधिक नमी वाले क्षेत्रों में अधिक पायी जाती है। इसका आक्रमण पौधों के पत्तों, शाखाओं और फूलों जैसे मुलायम भागों पर अधिक होता है। प्रभावित हिस्सों में गहरे भूरे रंग के धब्बे आ जाते हैं।

**रोकथाम :** 0.2 प्रतिशत जिनैब मिश्रण का छिड़काव करें। जिन क्षेत्रों की सम्भावना अधिक हो बहां सुरक्षा के तौर पर कलियाँ विकसित होने से पहले ही उपरोक्त घोल का छिड़काव करें ।

**ब्लैक टिप या कोइली रोग :** यह रोग ईट के भट्ठों के आस-पास के खेतों में उससे निकलने वाली गैस सल्फर डाई ऑक्साइड के कारण होता है। इस बीमारी में सबसे पहले फल का अग्र भाग काला पड़ जाता है, इसके बाद ऊपरी हिस्सा पीला पड़ जाता है। तत्पश्चात गहरा भूरा और अंत में काला पड़ जाता है। यह रोग दशहरी किस्म के आम में अधिक होता है।

**रोकथाम:** इस रोग से फसल को बचाने का सर्वोत्तम उपाय यह है, कि ईट के भट्ठों की चिमनी आम के पूरे मौसम के दौरान लगभग 50 फीट ऊँची रखी जाये। इस रोग के लक्षण दिखाई देते ही (लगभग अप्रेल) में बोरेक्स 1 प्रतिषत (एक किलो ग्रामध् 100 लीटर) पानी की दर से बने घोल का छिड़काव करें। फलों की बढ़वार की बिभिन्न अवस्थाओं के दौरान आम के पेड़ों पर 0.6 प्रतिशत बोरेक्स के दो छिड़काव फूल आने से पहले और तीसरा फूल बनाने के बाद छिड़काव करें। जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाये तो 15 दिन के अंतराल पर तीन छिड़काव करना चाहिए।

**पत्तों का जलना /लीफ स्कार्चिंग:** उत्तर भारत में आम के कुछ भागों में पोटेशियम की कमी से और क्लोराइड की अधिकता से पत्तों के जलने की गंभीर समस्या है। इस रोग से ग्रसित वृक्ष के पुराने पत्ते दूर से ही जले हुए दिखाई देते हैं।

**रोकथाम:** इस समस्या से फसल को बचाने के लिए पौधों पर पांच प्रतिशत पोटेशियम सल्फेट के छिड़काव की सिफारिश की जाती है। यह छिड़काव उसी समय करें जब पौधों पर नई पत्तियाँ आ रहीं हों। ऐसे बागों में पोटेशियम क्लोराइड उर्वरक का प्रयोग न करने की सलाह भी दी जाती है।

**उल्टा सूखा रोग या डाई बैक रोग:** इस रोग में आम की टहनी ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है, और धीरे-धीरे पूरा पेड़ सूख जाता है। यह फफूंद जनक रोग होता है, जिससे तने की जलवाहिनी में भूरापन आ जाता है, और वाहिनी सूख जाती है, जल भी ऊपर नहीं चढ़ पाता है।

**रोकथाम:** इसके रोकथाम के लिए रोग ग्रसित टहनियों के सूखे भाग से 25 सेंटीमीटर नीचे से काट कर जला दें। कटे स्थान पर बोर्डो पेस्ट लगाएं और अक्टूबर माह में कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। साथ ही साथ ट्राइकोडर्मा युक्त गोबर की सड़ी खाद चार-पांच किलो प्रति पेड़ डालें।

**तने से गोंद निकलना:** यह रोग यांत्रिक चोट या रगड़ के कारण होता है, जिससे की ग्रसित भाग से गोंद निकलना शुरू हो जाता है, इससे उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है।

**रोकथाम:** ग्रसित भाग हो शार्प चाकू से साफ कर लें और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 0.3 प्रतिशत घोल का लेप लगाएं अथवा देशी गाय के गोबर का स्लरी बनाकर लेप लगाएं।

**झुमका रोग:** इस रोग में आम का आकार मटर के दाने जैसा रह जाता है। इसका मुख्य कारण है पुष्पावस्था में कीटनाशक का छिड़काव जिसकी वजह से सत प्रतिशत पर-परागण की प्रक्रिया पूर्ण नहीं हुई, जिसके फलस्वरूप फ्रूट सैटिंग नहीं हुआ और आकार मटर के दाने के बराबर ही रह गया।

**रोकथाम :** पुष्पावस्था के समय किसी भी प्रकार के कीटनाशक व रोगनाशक का प्रयोग न करें। कीट आकर्षक फसलें जैसे गेंदा गुलदाउदी व सरसों आदि का अंतरू फसल लगाएं, जिससे कि बाग में पर-परागण करने वाले कीट की संख्या बनीं रहे। हर दूसरे साल आम के पेड़ों में आते हैं फल? जनवरी या फरवरी में करें ये काम मिलेगी भरपूर पैदावार। आम के पेड़ों पर हर साल फल नहीं आते हैं. फल एक साल के अंतराल पर आते हैं, एक साल बेहतर मंजर अगर आ गया और फल मिल गए, तो दूसरे वर्ष मंजर बहुत कम आते हैं, इस स्थिति से बचने के लिए कुछ खास बातों का ध्यान रखना पड़ेगा।

जनवरी महीने के अंत या फरवरी की शुरुआत में आम के पेड में बौर यानि मंजर आने की प्रक्रिया शुरु हो जाती है. ऐसे में इन दिनों आम के पेडों का सही देखभाल उपज में बढोतरी कर सकता है, जबकि लापरवाही के कारण पेड कीट और रोगों की चपेट में आ सकते हैं, आम के बागों में सही देखभाल और प्रबंधन से अधिक उत्पादन और बेहतर फल की गुणवत्ता प्राप्त किया जा सकता है। आम के पेड़ों की उचित देखभाल और प्रबंधन से न केवल अधिक फल की पैदावार प्राप्त होती है, बल्कि फल की क्वालिटी भी बेहतर होती है. तो ऐसे में किसानों को अपने आम के पेड की देखरेख शुरू कर देनी चाहिए. हम आपको बताएंगे कि पेड में बौर आने से पहले आपको क्या करना चाहिए ।

# खेती में संतुलन का विज्ञान : कम लागत, स्थिर उपज और दीर्घकालिक लाभ की समझदार राह

**रोहित कुमार, प्रखर राय, राघवेंद्र सिंह पाल**
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

**डॉ. ललित कुमार सनोदिया**

**डॉ. अखिलेश कुमार सिंह** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) वि.वि. प्रयागराज

खेती केवल बीज डालने और फसल काटने की प्रक्रिया नहीं है। यह मिट्टी, पानी, पौधे, जलवायु और किसान के निर्णयों के बीच बना एक जीवंत रिश्ता है। जब इन सबके बीच संतुलन रहता है, तब खेती लाभ देती है। जब संतुलन बिगड़ता है, तब चाहे कितनी भी लागत बढ़ा दी जाए, खेती संकट में चली जाती है।पिछले कुछ वर्षों में भारतीय कृषि ने यही अनुभव किया है। कहीं उत्पादन बढ़ा, लेकिन लागत उससे कहीं तेज़ बढ़ गई। कहीं पैदावार तो ठीक रही, पर मिट्टी थक गई। यही स्थिति हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि अब खेती को केवल अधिक उत्पादन के चश्मे से नहीं, बल्कि संतुलन के विज्ञान से देखना होगा।

**संतुलित खेती का वैज्ञानिक आधार:** खेती में संतुलन का अर्थ है कि हम किसी एक तत्व को बढ़ाने के लिए बाकी सबको नज़रअंदाज़ न करें। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह साफ़ हुआ है कि फसल उत्पादन केवल उर्वरक डालने से नहीं बढ़ता, बल्कि तब बढ़ता है जब मिट्टी की भौतिक स्थिति, पोषक तत्वों की उपलब्धता, नमी और जैविक गतिविधि एक साथ सही हों।दीर्घकालिक अनुसंधानों में यह पाया गया है कि जिन खेतों में लगातार केवल रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग हुआ, वहां कुछ वर्षों बाद मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा घटकर 0.3 से 0.4 प्रतिशत तक रह गई। इसके विपरीत जिन खेतों में रासायनिक और जैविक स्रोतों का संतुलित उपयोग हुआ, वहाँ यह मात्रा 0.7 से 0.8% तक स्थिर बनी रही। यही अंतर आगे चलकर उपज और लागत में बड़ा फर्क पैदा करता है।

**कम लागत का विज्ञान: ज़्यादा नहीं, सही इनपुट:** खेती की बढ़ती लागत का सबसे बड़ा कारण यह है कि हम अनुमान से खेती करते हैं, आवश्यकता के अनुसार नहीं। उर्वरक, बीज और दवाओं का प्रयोग अक्सर बिना मृदा परीक्षण और फसल की वास्तविक ज़रूरत जाने कर दिया जाता है।वैज्ञानिक आँकड़े बताते हैं कि खेत में डाली गई नाइट्रोजन का लगभग एक तिहाई भाग पौधों तक पहुँच ही नहीं पाता। यह या तो हवा में उड़ जाता है या पानी के साथ बहकर चला जाता है। इसका सीधा मतलब है : किसान का पैसा मिट्टी में नहीं, नाली में जा रहा है।जब किसान मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक डालता है, तो औसतन 20 से 25 प्रतिशत उर्वरक की बचत होती है। इसी तरह जैविक खाद के नियमित प्रयोग से मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ती है, जिससे सिंचाई की आवश्यकता कम होती है। यह बचत सीधे लागत में कमी के रूप में दिखाई देती है, न कि केवल कागज़ी गणना में।

**स्थिर उपज का आधार:** खेती में सबसे बड़ी अनिश्चितता यह है कि एक साल फसल अच्छी हो जाती है और अगले साल अचानक गिर जाती है। इसका कारण मौसम से ज़्यादा खेत की सेहत होती है।अनुसंधानों में यह देखा गया है कि जिन

खेतों में फसल चक्र अपनाया गया, विशेषकर दलहनी फसलों को शामिल किया गया, वहाँ न केवल नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ी, बल्कि मिट्टी की संरचना भी सुधरी।स्थिर उपज का मतलब यह नहीं कि हर साल रिकॉर्ड तोड़ा जाए। इसका मतलब है कि किसान यह भरोसा कर सके कि सामान्य मौसम में उसकी फसल औसत से नीचे नहीं जाएगी। यह भरोसा केवल संतुलित पोषण, समुचित जल प्रबंधन और कीट नियंत्रण के विवेकपूर्ण तरीकों से ही बनता है।

**मिट्टी : दीर्घकालिक लाभ की असली नींव:** मिट्टी जितनी स्वस्थ होगी, खेती उतनी ही सस्ती और टिकाऊ होगी। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह प्रमाणित है कि मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा में मात्र 0.1 प्रतिशत की वृद्धि से प्रति हेक्टेयर जलधारण क्षमता में लगभग पच्चीस हज़ार लीटर तक का इज़ाफ़ा हो सकता है।इसका अर्थ है : कम सिंचाई, कम खर्च और सूखे में भी फसल को सहारा।फसल अवशेषों को जलाने के बजाय खेत में लौटाना, हरी खाद का प्रयोग और कम जुताई जैसे उपाय केवल पर्यावरण के लिए नहीं, बल्कि किसान की जेब के लिए भी लाभकारी हैं। ये उपाय धीरे-धीरे मिट्टी को आत्मनिर्भर बनाते हैं।

**पर्यावरण, समाज और किसान की आय : तीनों का संतुलन:** असंतुलित खेती का असर केवल खेत तक सीमित नहीं रहता। भूजल में नाइट्रेट की बढ़ती मात्रा, कीटनाशक अवशेष और जैव विविधता का नुकसान इसका परिणाम है। इसके विपरीत संतुलित खेती में रासायनिक दबाव कम होता है, जिससे पर्यावरण सुरक्षित रहता है और किसान को लंबे समय में कम जोखिम उठाना पड़ता है।आर्थिक विश्लेषण यह दर्शाता है कि जहाँ पारंपरिक खेती में कुल उत्पादन थोड़ा अधिक होता है, वहीं संतुलित खेती में शुद्ध लाभ अधिक होता है। कारण साफ़ है : लागत कम और नुकसान का जोखिम नियंत्रित।

**भविष्य की राह : संतुलन ही खेती की दिशा:** जलवायु परिवर्तन, घटते जल संसाधन और बढ़ती आबादी के दौर में खेती को अब सोच-समझकर आगे बढ़ाना होगा। भविष्य की खेती वही होगी जो प्रकृति के साथ तालमेल बनाए रखेगी। यह तालमेल किसी एक पद्धति से नहीं, बल्कि ज्ञान, अनुभव और विज्ञान के संतुलन से बनेगा।खेती में संतुलन कोई आदर्शवादी नारा नहीं है। यह अनुभव और अनुसंधान से निकला हुआ निष्कर्ष है कि यदि आज संतुलन नहीं अपनाया गया, तो कल लागत, जोखिम और संकट तीनों बढ़ेंगे।

**निष्कर्ष:** खेती का विज्ञान हमें यही सिखाता है कि अधिक पाने की होड़ में मूल आधार को कमजोर न किया जाए। कम लागत, स्थिर उपज और दीर्घकालिक लाभ कोई अलग-अलग लक्ष्य नहीं हैं, बल्कि संतुलन के परिणाम हैं।जब किसान खेत को केवल उत्पादन की मशीन नहीं, बल्कि एक जीवित व्यवस्था के रूप में देखता है, तभी खेती वास्तव में लाभकारी और टिकाऊ बनती है।

12/2025-26

# भारत में प्रथम बार केरल ने 'बैसिलस सबटिलिस को राज्य सूक्ष्मजीव' घोषित कर की उत्तम पहल


शिवम दीक्षित शोध छात्र, उद्यानिकी, जनता कॉलेज बकेवर इटावा

डॉ. अंकित सिंह भदौरिया विषय वस्तु विशेषज्ञ, उद्यानिकी, कृषि विज्ञान केन्द्र, कासगंज (उ.प्र.)

डॉ. अशोक कुमार पाण्डेय प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, उद्यानिकी, जनता कॉलेज बकेवर इटावा (उ.प्र.)

डॉ. आनंद सिंह सहायक प्राध्यापक, उद्यानिकी, जनता कॉलेज बकेवर इटावा, उत्तर प्रदेश


हम जिस दुनिया में रहते हैं, वहाँ जीवन केवल दिखाई देने वाले पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों या मनुष्यों तक सीमित नहीं है। वास्तव में, जीवन की सबसे मजबूत नींव उन सूक्ष्मजीवों पर टिकी है जिन्हें हम न तो देख सकते हैं और न ही रोजमर्रा की ज़िंदगी में महसूस कर पाते हैं। इसी अदृश्य लेकिन अत्यंत शक्तिशाली जीवन रूप को पहचान देते हुए केरल भारत का पहला राज्य बन गया है जिसने एक सूक्ष्मजीव (Bacillus subtilis) को 'राज्य सूक्ष्मजीव' घोषित किया है। यह निर्णय अपने आप में अनोखा है, क्योंकि अब तक राज्यों की पहचान पशु, पक्षी, फूल या वृक्ष जैसे प्रतीकों से होती रही है। केरल ने इस परंपरा से आगे बढ़कर यह संदेश दिया है कि विज्ञान और सतत विकास भी सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा हो सकते हैं।

## आखिर क्या है बैसिलस सबटिलिस

बैसिलस सबटिलिस कोई रहस्यमय जीव नहीं, बल्कि प्रकृति का मित्र बैक्टीरिया है। यह मिट्टी, पानी, किण्वित खाद्य पदार्थों और यहाँ तक कि हमारे पाचन तंत्र में भी प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। वैज्ञानिक इसे 'अच्छा बैक्टीरिया' कहते हैं। इसकी सबसे बड़ी खासियत है इसकी असाधारण सहनशीलता। यह बीजाणु बनाकर अत्यधिक गर्मी, सूखा और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रह सकता है। यही कारण है कि इसे प्रयोगशालाओं से लेकर खेतों और उद्योगों तक, हर जगह उपयोग में लाया जा रहा है।

## सूक्ष्मजीव, जो मिट्टी को जीवित रखते हैं

खेती को यदि जीवनदायिनी प्रणाली कहा जाए, तो मिट्टी उसका हृदय है और बैसिलस सबटिलिस उस हृदय को धड़कता रखता है। यह बैक्टीरिया

* मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है * पौधों की जड़ों के पास रहकर उन्हें रोगजनकों से बचाता है * फसलों की वृद्धि तथा उत्पादन को बेहतर बनाता है।

आज जब रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के दुष्प्रभाव सामने आ रहे हैं, ऐसे में बैसिलस सबटिलिस जैसे सूक्ष्मजीव प्राकृतिक और सुरक्षित विकल्प बनकर उभर रहे हैं।

## मानव स्वास्थ्य में अदृश्य योगदान

हमारे शरीर में मौजूद अरबों सूक्ष्मजीव मिलकर मानव माइक्रोबायोम बनाते हैं, जो पाचन, रोग

Bacillus Subtilis

प्रतिरोधक क्षमता और मानसिक स्वास्थ्य तक को प्रभावित करता है।

बैसिलस सबटिलिस को एक प्रभावी प्रोबायोटिक माना जाता है, जो

* आंतों के स्वास्थ्य को सुधारता है * प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय करता है * कई संक्रमणों से बचाव में मदद करता है ।

यही कारण है कि इसका उपयोग आज हेल्थ सप्लीमेंट्स और फंक्शनल फूड्स में बढ़ रहा है।

## उद्योग और भविष्य की तकनीक में भूमिका

केरल सरकार का यह निर्णय केवल कृषि या स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है। आधुनिक शोध बताते हैं कि बैसिलस सबटिलिस

* एंजाइम और जैव-उत्पादों के निर्माण,
* पर्यावरण-अनुकूल औद्योगिक प्रक्रियाओं,

यह सूक्ष्मजीव ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था और बायोटेक स्टार्टप्स के लिए नए अवसर खोलता है।

## क्यों ज़रूरी है यह पहल

केरल ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भविष्य का विकास केवल बड़े कारखानों और मशीनों से नहीं, बल्कि सूक्ष्म जैविक नवाचारों से आएगा। 'राज्य सूक्ष्मजीव' की घोषणा

* समाज में वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देती है,
* छात्रों और शोधकर्ताओं को प्रेरित करती है,
* यह समझ विकसित करती है कि सभी सूक्ष्मजीव हमारे शत्रु नहीं, बल्कि सहयोगी हैं।

## विशेष

बैसिलस सबटिलिस को राज्य सूक्ष्मजीव घोषित करना केवल एक घोषणा नहीं, बल्कि दृष्टिकोण में बदलाव है। यह स्वीकारोक्ति है कि जीवन की निरंतरता, स्वास्थ्य और पर्यावरण संतुलन का भविष्य उन सूक्ष्म जीवों के साथ जुड़ा है, जिन्हें हम अक्सर नज़रअंदाज़ कर देते हैं। केरल ने पहल कर दी है अब समय है कि देश के अन्य प्रदेश भी इन अदृश्य मित्रों की इस शक्ति को समझे और अपनाए ।


कुंज एजेंसीज

अपने भाई चप्पा सेठ की दुकान

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती है

प्रो. कार्तिक गुप्ता 9589545404
प्रो. हार्दिक गुप्ता 9644689094

भितरवार रोड, डबरा, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

10/2025-26

✍ **प्रखर राय** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

✍ **डॉ सत्येंद्र कुमार सिंह** सह-आचार्य, कीट विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, चंद्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकेटी, लखनऊ (उ.प्र.)

# एग्रोनॉमी आधारित जैविक कीट प्रबंधन: इनपुट-आधारित से प्रक्रिया-आधारित मॉडल की ओर

## प्रस्तावना

आधुनिक कृषि में कीट प्रबंधन को लंबे समय तक मुख्यतः इनपुट-आधारित दृष्टिकोण से देखा गया है, जहाँ समस्या के समाधान के लिए बाहरी साधनों–चाहे वे रासायनिक कीटनाशक हों या जैविक इनपुट–का प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती के विस्तार के साथ भले ही रसायनों के स्थान पर जैव-कीटनाशक, लाभकारी सूक्ष्मजीव और प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग बढ़ा हो, लेकिन मूल सोच अब भी प्रायः उपचारात्मक बनी हुई है। इसके विपरीत, एग्रोनॉमी आधारित जैविक कीट प्रबंधन एक प्रक्रिया-आधारित मॉडल प्रस्तुत करता है, जिसमें फसल उत्पादन की प्रत्येक क्रिया को कीट नियंत्रण की रणनीति के रूप में देखा जाता है। यह लेख इसी वैकल्पिक और अपेक्षाकृत कम-चर्चित दृष्टिकोण की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

## इनपुट-आधारित बनाम प्रक्रिया-आधारित दृष्टिकोण

इनपुट-आधारित कीट प्रबंधन का आधार यह मान्यता है कि कीट समस्या एक बाहरी हस्तक्षेप से नियंत्रित की जा सकती है। चाहे वह नीम आधारित उत्पाद हों, ब्यूवेरिया या बैसिलस थुरिंजिएन्सिस जैसे जैव-एजेंट–इन सभी का प्रयोग तब किया जाता है जब कीट प्रकोप दिखाई देने लगता है। इसके विपरीत, प्रक्रिया-आधारित मॉडल यह मानता है कि कीट प्रकोप फसल प्रणाली में मौजूद असंतुलन का परिणाम है। यदि खेती की प्रक्रियाएं–जैसे फसल चयन, बुवाई, पोषण, सिंचाई और खेत प्रबंधन–संतुलित हों, तो कीट समस्या स्वतः सीमित रहती है।

## फसल स्वास्थ्य: जैविक कीट प्रबंधन की आधारशिला

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि स्वस्थ पौधे कीटों के प्रति अधिक सहनशील होते हैं। पौधों की आंतरिक जैव-रासायनिक संरचना, जैसे फिनोलिक यौगिक, एंजाइम गतिविधि और संरचनात्मक मजबूती, सीधे कीट आक्रमण को प्रभावित करती है। संतुलित एग्रोनॉमिक प्रबंधन पौधों की इस प्राकृतिक प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाता है, जिससे कीटों का प्रकोप आर्थिक क्षति स्तर से नीचे बना रहता है।

## फसल चयन और किस्मों की भूमिका

किसी क्षेत्र विशेष में उपयुक्त फसल और किस्म का चयन प्रक्रिया-आधारित जैविक कीट प्रबंधन का प्रथम चरण है। कीट-सहनशील या कम आकर्षक किस्में अपनाने से कीटों का दबाव स्वाभाविक रूप से कम हो जाता है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित किस्में, जिनका विकास लंबे समय तक प्राकृतिक चयन के माध्यम से हुआ

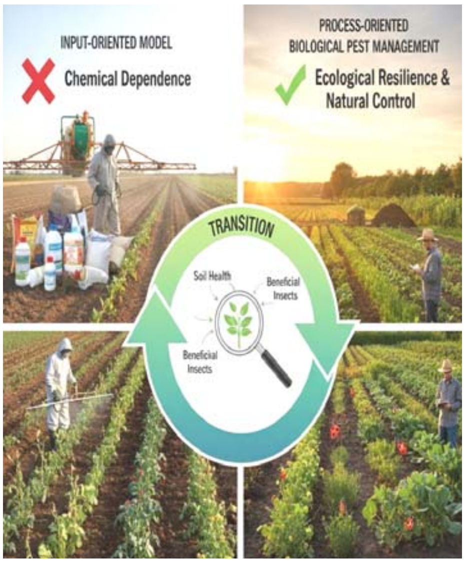


है, प्रायः बाहरी उच्च-इनपुट किस्मों की तुलना में अधिक स्थिर पाई जाती हैं।

## बुवाई समय और कीट जीवन चक्र

कीटों का जीवन चक्र पर्यावरणीय कारकों–विशेषकर तापमान और आर्द्रता–से गहराई से जुड़ा होता है। यदि फसल की बुवाई इस प्रकार की जाए कि उसकी संवेदनशील अवस्थाएँ कीटों की अधिकतम सक्रिय अवधि से मेल न खाएँ, तो कीट प्रकोप में उल्लेखनीय कमी देखी जा सकती है। यह रणनीति बिना किसी अतिरिक्त इनपुट के प्रभावी जैविक नियंत्रण प्रदान करती है।

## बीज दर, फसल घनत्व और माइक्रो-क्लाइमेट

अत्यधिक बीज दर और सघन फसलें खेत के भीतर आर्द्रता और तापमान को बढ़ाती हैं, जो कई कीटों और रोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। उचित बीज दर और फसल ज्यामिति न केवल पौधों की वृद्धि को बेहतर बनाती है, बल्कि कीटों के लिए प्रतिकूल माइक्रो-क्लाइमेट भी तैयार करती है। इस प्रकार, फसल घनत्व का संतुलन एक मौन जैविक कीट नियंत्रण उपकरण के रूप में कार्य करता है।

## पोषक तत्व प्रबंधन और कीट संवेदनशीलता

पोषक तत्वों का असंतुलित प्रयोग, विशेषकर नाइट्रोजन की अधिकता, पौधों को कोमल और रसदार बनाता है, जो चूसक कीटों को आकर्षित करता है। इसके विपरीत, पोटाश और सूक्ष्म तत्वों की पर्याप्त उपलब्धता पौधों की कोशिका भित्ति को मजबूत करती है और कीट प्रतिरोध बढ़ाती है। एग्रोनॉमी आधारित जैविक कीट प्रबंधन में पोषण प्रबंधन को कीट नियंत्रण की एक केंद्रीय रणनीति माना जाता है।

## फसल चक्र और मिश्रित खेती

एक ही फसल का लगातार उत्पादन कीटों के लिए स्थायी आवास उपलब्ध कराता है। फसल चक्र अपनाने से कीटों का जीवन चक्र बाधित होता है और उनकी आबादी स्थिर नहीं रह पाती। इसी प्रकार, मिश्रित खेती और अंतरफसली प्रणाली कीटों के लिए मेजबान पौधों की पहचान को कठिन बनाती है, जिससे प्रकोप कम होता है। यह रणनीति जैविक कीट प्रबंधन की रीढ़ मानी जाती है।

## खरपतवार, अवशेष और कीट पारिस्थितिकी

खरपतवार केवल पोषक तत्वों के प्रतिस्पर्धी नहीं होते, बल्कि कई कीटों के वैकल्पिक मेजबान भी होते हैं। संतुलित खरपतवार प्रबंधन द्वारा कीटों के आश्रय स्थलों को सीमित किया जा सकता है। वहीं, फसल अवशेषों का विवेकपूर्ण प्रबंधन खेत में लाभकारी जीवों के संरक्षण के साथ-साथ हानिकारक कीटों की संख्या को नियंत्रित करता है।

## प्राकृतिक शत्रुओं के लिए अनुकूल वातावरण

प्रक्रिया-आधारित जैविक कीट प्रबंधन में प्राकृतिक शत्रुओं की भूमिका को इनपुट के रूप में नहीं, बल्कि प्रणाली के अभिन्न अंग के रूप में देखा जाता है। विविध फसल संरचना, पुष्पीय पौधों की उपस्थिति और रसायनों का न्यूनतम उपयोग लाभकारी कीटों और परभक्षियों के संरक्षण में सहायक होता है।

## जलवायु परिवर्तन और प्रक्रिया-आधारित मॉडल

जलवायु परिवर्तन के वर्तमान परिदृश्य में कीटों का व्यवहार और वितरण तेजी से बदल रहा है। ऐसे में केवल इनपुट-आधारित रणनीतियां अस्थायी समाधान प्रदान करती हैं। एग्रोनॉमी आधारित प्रक्रिया-आधारित मॉडल स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप लचीलापन प्रदान करता है जिससे किसान बदलते जलवायु परिदृश्य में भी कीट प्रबंधन कर सकें।

## निष्कर्ष

एग्रोनॉमी आधारित जैविक कीट प्रबंधन खेती को केवल उत्पादन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक संतुलित जैविक प्रणाली के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है। इनपुट-आधारित मॉडल से प्रक्रिया-आधारित मॉडल की ओर यह संक्रमण न केवल पर्यावरणीय दृष्टि से आवश्यक है, बल्कि दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता के लिए भी अनिवार्य है। यदि कृषि नीतियां, अनुसंधान और विस्तार सेवाएं इस दृष्टिकोण को अपनाएं तो जैविक कीट प्रबंधन वास्तव में टिकाऊ कृषि का मजबूत आधार बन सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# फसल अवशेष प्रबंधन के साथ गेहूँ की बुवाई: मृदा स्वास्थ्य, नमी संरक्षण और उपज पर प्रभाव

**शिवम कुमार पाठक** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय
**प्रखर राय, डॉ. ललित कुमार सनोदिया**
**डॉ. अखिलेश कुमार सिंह** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
**डॉ. अवनीश यादव** प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

## भूमिका

भारत के उत्तर-पश्चिमी एवं इंडो-गैंगेटिक मैदानी क्षेत्रों में धान-गेहूँ फसल प्रणाली व्यापक रूप से प्रचलित है। धान की कटाई और गेहूँ की बुवाई के बीच समय बहुत कम होने के कारण किसान अक्सर पराली जलाने का सहारा लेते हैं, जिससे मृदा की उर्वरता घटती है, सूक्ष्मजीव नष्ट होते हैं तथा पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता है। इसके विपरीत, फसल अवशेषों को खेत में ही सुरक्षित रखते हुए गेहूँ की बुवाई करना संसाधन संरक्षण की दृष्टि से एक उन्नत, टिकाऊ और लाभकारी तकनीक है। यह तकनीक मृदा में जैविक कार्बन बढ़ाने, नमी को संरक्षित रखने, लागत घटाने और समय पर बुवाई सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे अंततः अधिक एवं स्थिर उपज प्राप्त होती है।

## फसल अवशेष प्रबंधन का वैज्ञानिक आधार

फसल अवशेष मृदा की सतह पर एक जैविक मल्च का कार्य करते हैं। इससे मृदा का तापमान संतुलित रहता है, वर्षा या सिंचाई के जल का रिसाव बढ़ता है और सतही बहाव कम होता है। अवशेषों के धीरे-धीरे विघटन से मृदा में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जिससे कण संरचना में सुधार होता है। परिणामस्वरूप मृदा की जल धारण क्षमता, वायु संचार और जड़ों की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण बनता है। लंबे समय तक इस तकनीक को अपनाने से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सकारात्मक परिवर्तन होते हैं।

## हैप्पी सीडर एवं जीरो टिलेज द्वारा गेहूँ की बुवाई

हैप्पी सीडर मशीन फसल अवशेषों को हटाए बिना सीधे गेहूँ की बुवाई करने में सक्षम है। यह मशीन अवशेषों को एक ओर हटाकर बीज एवं उर्वरक को उचित गहराई पर स्थापित करती है और पुनः अवशेषों को सतह पर फैला देती है। जीरो टिलेज तकनीक से जुताई की आवश्यकता समाप्त हो जाती है, जिससे डीजल, श्रम और समय की बचत होती है। समय पर बुवाई होने से गेहूँ की फसल को अनुकूल तापमान मिलता है और टर्मिनल हीट का प्रभाव कम हो जाता है, जिससे दाना भराव अच्छा होता है और उपज बढ़ती है।

## मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

फसल अवशेषों के संरक्षण से मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है, जो मृदा उर्वरता का प्रमुख सूचक है। इससे लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या एवं सक्रियता बढ़ती है, जो पोषक तत्वों के खनिजीकरण में सहायक होते हैं। मृदा की संरचना भुरभुरी होती है और कठोर परत बनने की समस्या कम होती है। इसके अतिरिक्त, नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश जैसे प्रमुख पोषक तत्वों की उपलब्धता भी बेहतर होती है, जिससे पौधों का विकास संतुलित रूप से होता है।

## नमी संरक्षण एवं जल उपयोग दक्षता

फसल अवशेषों की परत मृदा की सतह को ढककर वाष्पीकरण की दर को कम करती है, जिससे नमी लंबे समय तक संरक्षित रहती है। इससे सिंचाई की आवश्यकता कम होती है और जल उपयोग दक्षता बढ़ती है। जिन क्षेत्रों में जल की उपलब्धता सीमित है वहाँ यह तकनीक विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होती है। अवशेषों की उपस्थिति से वर्षा का जल अधिक मात्रा में मृदा में समाहित होता है, जिससे फसल को लंबे समय तक नमी मिलती रहती है।

## खरपतवार, कीट एवं रोगों पर प्रभाव

फसल अवशेष मृदा की सतह पर प्रकाश को रोकते हैं, जिससे खरपतवारों का अंकुरण कम होता है। इससे खरपतवारनाशी दवाओं की आवश्यकता घटती है और लागत कम होती है। इसके अतिरिक्त, मृदा की जैविक सक्रियता बढ़ने से लाभकारी कीट एवं सूक्ष्मजीवों का संतुलन बना रहता है, जिससे कुछ हानिकारक कीट एवं रोगों का प्रकोप भी कम होता है। हालांकि प्रारंभिक वर्षों में कुछ कीटों की समस्या हो सकती है, जिसे उचित फसल चक्र एवं समेकित प्रबंधन द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

## पोषक तत्वों की गतिशीलता एवं उर्वरक उपयोग दक्षता

फसल अवशेषों के विघटन से मृदा में धीरे-धीरे पोषक तत्वों की आपूर्ति होती रहती है। इससे उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ती है और पोषक तत्वों का अपवाह कम होता है। नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कम होता है तथा पौधों को आवश्यकतानुसार पोषण उपलब्ध होता है। दीर्घकाल में यह तकनीक उर्वरकों की आवश्यकता को भी कम कर सकती है।

## उपज एवं आर्थिक लाभ

समय पर बुवाई, बेहतर नमी संरक्षण, संतुलित तापमान तथा मृदा स्वास्थ्य में सुधार के कारण गेहूँ की फसल का प्रारंभिक विकास अच्छा होता है। पौधों की संख्या संतुलित रहती है, कल्ले अधिक बनते हैं और दाना भराव बेहतर होता है। परिणामस्वरूप उपज में वृद्धि होती है। जुताई, श्रम, डीजल एवं खरपतवारनाशी पर होने वाले खर्च में कमी आने से उत्पादन लागत घटती है और किसानों को अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त होता है।

## पर्यावरणीय एवं दीर्घकालिक लाभ

फसल अवशेषों को जलाने से होने वाले वायु प्रदूषण में कमी आती है और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन घटता है। मृदा में कार्बन संचयन बढ़ने से यह तकनीक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में सहायक होती है। संसाधन संरक्षण तकनीकों के साथ अपनाने पर यह प्रणाली टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए मृदा की उत्पादकता को बनाए रखती है।

## अपनाने में सावधानियां

- बुवाई के समय उपयुक्त नमी का होना आवश्यक है।
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएँ।
- प्रमाणित बीज एवं अनुशंसित किस्मों का प्रयोग करें।
- प्रारंभिक वर्षों में खरपतवार एवं कीटों की नियमित निगरानी करें।

## निष्कर्ष

फसल अवशेष प्रबंधन के साथ गेहूँ की बुवाई एक ऐसी उन्नत एवं वैज्ञानिक तकनीक है जो मृदा स्वास्थ्य सुधारने, नमी संरक्षण बढ़ाने, उर्वरक उपयोग दक्षता में वृद्धि करने तथा उत्पादन लागत कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह तकनीक किसानों को अधिक उपज और बेहतर लाभ प्रदान करने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण एवं टिकाऊ कृषि को भी बढ़ावा देती है। वर्तमान समय में पराली जलाने की समस्या के समाधान के रूप में इस तकनीक को व्यापक स्तर पर अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

विनीत सिंह, प्रखर राय सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

# खेती का नया मंत्र: उत्पादन भी, लाभ भी

## प्रस्तावना

भारतीय किसान की असली ताकत उसकी मेहनत और उसकी मिट्टी से जुड़ी समझ में होती है। फिर भी अक्सर देखा जाता है कि भरपूर उत्पादन होने के बाद भी किसान को उसकी उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता। इसका कारण केवल बाजार व्यवस्था नहीं, बल्कि खेत से खलिहान तक की पूरी प्रक्रिया का सही प्रबंधन न होना भी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि खेती को केवल उत्पादन तक सीमित न रखकर उसे एक समग्र कृषि व्यवसाय के रूप में अपनाया जाए, जिसमें लागत, उत्पादन, भंडारण, प्रसंस्करण और विपणन - सभी को एक साथ जोड़ा जाए। यही ÷खेत से खलिहान तक समृद्धि का मॉडल÷ है।

## भरता खलिहान, खिलता किसान

समृद्धि की शुरुआत खेत की तैयारी से होती है। जब किसान मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करता है, उन्नत एवं प्रमाणित बीजों का चयन करता है और समय पर बुवाई करता है, तो फसल की बढ़वार अच्छी होती है और उत्पादन स्वतः बढ़ जाता है। जल प्रबंधन और कीट-रोग नियंत्रण के वैज्ञानिक उपाय न केवल लागत को कम करते हैं बल्कि फसल की गुणवत्ता को भी बेहतर बनाते हैं। अच्छी गुणवत्ता का उत्पाद बाजार में हमेशा अधिक मूल्य दिलाता है। इस प्रकार खेत में लिया गया सही निर्णय ही आगे की आय को तय करता है।

वर्तमान समय में केवल एक फसल पर निर्भर रहना किसानों के लिए जोखिम भरा साबित हो रहा है।जलवायु परिवर्तन, बाजार के उतार-चढ़ाव और बढ़ती लागत को देखते हुए फसल विविधीकरण आवश्यक हो गया है।

अनाज के साथ दलहन, तिलहन, सब्जी, फल और पशुपालन को जोड़कर किसान वर्षभर आय प्राप्त कर सकता है। खेत का खाली समय भी उपयोग में आता है और परिवार को नियमित आमदनी मिलती रहती है। एकीकृत कृषि प्रणाली न केवल आर्थिक रूप से लाभकारी है बल्कि मृदा की उर्वरता और पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है।

कटाई के बाद की सही व्यवस्था को अक्सर किसान नजरअंदाज कर देता है, जबकि यहीं पर अतिरिक्त लाभ छिपा होता है। सही समय पर कटाई, अनाज की सफाई, ग्रेडिंग और सुरक्षित भंडारण से न केवल उपज की गुणवत्ता बनी रहती है बल्कि किसान को अपनी उपज उचित समय पर बेचने की स्वतंत्रता भी मिलती है। जब बाजार में कीमत कम हो तो भंडारण किसान को मजबूरी में बेचने से बचाता है और जब भाव बढ़े तब बिक्री करने से अधिक लाभ मिलता है।

आज के दौर में संगठित होकर खेती करना भी समृद्धि की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। किसान उत्पादक संगठन या समूह बनाकर किसान न केवल सस्ते दर पर बीज और उर्वरक प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि अपनी उपज को सामूहिक रूप से बड़े बाजार तक पहुँचा सकते हैं। इससे उनकी मोलभाव की क्षमता बढ़ती है और बिचौलियों पर निर्भरता कम होती है। सामूहिक प्रयास छोटे किसान को भी बड़े किसान के समान बाजार में पहचान दिलाता है।

तकनीक ने खेती को एक नई दिशा दी है। मोबाइल पर मौसम की जानकारी, मंडी भाव और नई कृषि तकनीकों की उपलब्धता ने किसान को पहले से अधिक सक्षम बनाया है। अब वह अपने उत्पाद को स्थानीय बाजार के साथ-साथ ऑनलाइन माध्यमों से भी बेच सकता है। इससे समय की बचत होती है और सही मूल्य प्राप्त होता है।

समृद्धि का एक महत्वपूर्ण आधार मूल्य संवर्धन भी है। कच्चा उत्पाद बेचने की अपेक्षा यदि किसान उसी उत्पाद को प्रसंस्कृत करके बेचे, तो उसकी आय कई गुना बढ़ सकती है। गेहूँ को आटे के रूप में, दूध को घी या पनीर के रूप में और फल-सब्जियों को प्रसंस्कृत उत्पाद के रूप में बेचने से किसान उत्पादनकर्ता के साथ-साथ एक उद्यमी भी बन जाता है। यह परिवर्तन ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करता है।

खेत से खलिहान तक का यह मॉडल केवल आय बढ़ाने का माध्यम नहीं है, बल्कि किसान की सोच में बदलाव का प्रतीक है। जब किसान अपनी खेती को योजनाबद्ध तरीके से करता है, बाजार की मांग को समझता है और नई तकनीकों को अपनाता है, तब खेती घाटे का सौदा नहीं रहती बल्कि एक सम्मानजनक और लाभकारी व्यवसाय बन जाती है।

अंततः समृद्धि का रास्ता किसी एक उपाय में नहीं बल्कि छोटे-छोटे सुधारों के समन्वय में छिपा है। सही बीज से लेकर सही बाजार तक की यह यात्रा ही किसान को आत्मनिर्भर बनाती है। यदि किसान उत्पादन के साथ प्रबंधन और विपणन को जोड़ ले, तो उसका खलिहान केवल अनाज से ही नहीं बल्कि खुशहाली से भी भर सकता है। यही "खेत से खलिहान तक समृद्धि का सच्चा मॉडल" है।

दिनेश शिवहरे
Mob. : 98263-55396
मध्य प्रदेश का पहला
श्री दयाल बन्धु केन्द्र
(हिनौतिया वालों की दुकान)
सभी प्रकार की कीटनाशक दवाईयां, जिन्क एवं बीज आदि के थोक एवं खेरीज विक्रेता
गायत्री मंदिर के पास, जवाहर गंज, डबरा जिला ग्वालियर (म.प्र.)
E-mail : shridayalbandhu@gmail.com, dineshshivhare66yahoo.com
08/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# कृषि मूल्य संवर्धन से बढ़ती किसानों की आय

राघवेंद्र सिंह पाल, प्रखर राय सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. ललित कुमार सनोदिया
डॉ. अखिलेश कुमार सिंह, डॉ. अवनीश यादव
सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

## प्रस्तावना

भारतीय किसान की सबसे बड़ी विडंबना यह रही है कि वह उत्पादन तो करता है, लेकिन लाभ की श्रृंखला में सबसे पीछे खड़ा रहता है। खेत से निकलने वाली उपज जब तक उपभोक्ता की थाली तक पहुँचती है, तब तक उसका मूल्य कई गुना बढ़ जाता है-पर उस बढ़े हुए मूल्य में किसान की हिस्सेदारी बहुत कम होती है।ऐसे परिदृश्य में कृषि मूल्य संवर्धन एक ऐसी परिवर्तनकारी अवधारणा बनकर उभरी है, जो खेती को केवल उत्पादन तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे एक लाभकारी उद्यम में बदल देती है।

## कृषि मूल्य संवर्धन क्या है?

किसी कृषि उत्पाद के स्वरूप, गुणवत्ता, उपयोगिता या भंडारण क्षमता में सुधार कर उसके मूल्य को बढ़ाना ही मूल्य संवर्धन कहलाता है।यह प्रक्रिया साधारण भी हो सकती है-जैसे सफाई और ग्रेडिंग-और उन्नत भी-जैसे प्रसंस्करण, पैकेजिंग और ब्रांडिंग।यही वह कदम है जो गेहूँ को आटा, टमाटर को सॉस और दूध को पनीर बनाकर किसान की आय में कई गुना वृद्धि करता है।

## मूल्य संवर्धन की आवश्यकता क्यों?

आज की कृषि केवल उत्पादन पर आधारित नहीं रह सकती।

* बढ़ती लागत * घटती जोत * बाजार की प्रतिस्पर्धा

इन परिस्थितियों में केवल कच्चा उत्पाद बेचकर लाभ कमाना कठिन होता जा रहा है।मूल्य संवर्धन किसान को यह शक्ति देता है कि वह अपनी उपज का मूल्य स्वयं तय कर सके और बाजार में अपनी पहचान बना सके।

## मूल्य संवर्धन के प्रमुख आयाम

### सफाई, ग्रेडिंग और पैकेजिंग

समान आकार और गुणवत्ता वाले उत्पाद आकर्षक पैकेजिंग के साथ बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त करते हैं। यह एक सरल लेकिन अत्यंत प्रभावी तरीका है।

### प्रसंस्करण

प्रसंस्करण के माध्यम से न केवल उत्पाद का मूल्य बढ़ता है, बल्कि उसकी शेल्फ लाइफ भी बढ़ती है। इससे किसान को तुरंत बेचने की मजबूरी नहीं रहती।

### ब्रांडिंग और प्रत्यक्ष विपणन

जब उत्पाद किसान के नाम और पहचान के साथ बाजार में पहुँचता है, तो उपभोक्ता का विश्वास बढ़ता है और किसान को बेहतर मूल्य मिलता है।

### स्थानीय स्तर पर कृषि-उद्यम

छोटे स्तर पर स्थापित प्रसंस्करण इकाइयाँ गाँवों में ही रोजगार के नए अवसर पैदा करती हैं।

## किसानों को होने वाले लाभ

मूल्य संवर्धन किसानों की आय बढ़ाने का सबसे व्यवहारिक और टिकाऊ माध्यम है।

* फसल का बेहतर मूल्य
* बाजार पर नियंत्रण
* आय में स्थिरता
* बिचौलियों पर निर्भरता में कमी
* ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार

यह केवल आर्थिक परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव की भी शुरुआत है।

## सरकार और संस्थागत समर्थन

सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएँ-जैसे कृषि प्रसंस्करण, सूक्ष्म खाद्य उद्योग उन्नयन और स्टार्टअप प्रोत्साहन-मूल्य संवर्धन को नई गति दे रही हैं।इन योजनाओं का उद्देश्य किसान को उत्पादक से उद्यमी बनाना है।

## ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमिका

जब गाँव में ही प्रसंस्करण और पैकेजिंग होने लगती है, तो शहरों की ओर पलायन कम होता है। महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से जुड़ती हैं।युवा कृषि को नए दृष्टिकोण से देखने लगते हैं।इस प्रकार मूल्य संवर्धन ग्रामीण विकास का आधार बन जाता है।

## प्रमुख चुनौतियाँ

* तकनीकी जानकारी का अभाव
* प्रारंभिक निवेश
* बाजार से जुड़ाव
* गुणवत्ता मानकों का पालन

लेकिन प्रशिक्षण, सामूहिक प्रयास और संस्थागत सहयोग से इन चुनौतियों को आसानी से पार किया जा सकता है।

## निष्कर्ष

कृषि का भविष्य केवल अधिक उत्पादन में नहीं, बल्कि स्मार्ट उत्पादन और मूल्य संवर्धन में छिपा है।जब किसान अपनी उपज को एक नए रूप में बाजार तक पहुँचाता है, तो वह केवल उत्पाद नहीं बेचता-वह अपनी मेहनत का सम्मान बेचता है।मूल्य संवर्धन खेती को लाभकारी बनाता है, गाँव को आत्मनिर्भर बनाता है और किसान को एक सफल उद्यमी के रूप में स्थापित करता है।

# सहजन (मोरिंगा) का औषधीय उपयोग

**श्वेता वर्मा** शोध छात्रा, (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

**स्वप्निल सिंह** एम.एससी (बागवानी विभाग) श्री परमहंस शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय विद्याकुंड, अयोध्या, (उत्तर प्रदेश)

**आयुष वर्मा** एम.एससी. (फल विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

**आस्तिक झा** सहप्राध्यापक, (सब्जी विज्ञान विभाग) आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

## परिचय

सहजन, जिसे वैज्ञानिक रूप से मोरिंगा ओलिफेरा कहा जाता है, एक बहुउपयोगी वृक्ष है। इसे हिंदी में सहजन, मुनगा या सजना तथा अंग्रेज़ी में इसे मोरिंगा और ड्रमस्टिक के नाम से जाना जाता है। यह मुख्य रूप से भारत, दक्षिण एशिया और अफ्रीका के उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में इसकी खेती विशेष रूप से दक्षिण भारत, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में व्यापक रूप से की जाती है।भारतीय रसोई और आयुर्वेद दोनों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे "चमत्कारी वृक्ष" भी कहा जाता है क्योंकि इसके पत्ते, फलियाँ, फूल, बीज, जड़ और छाल सभी किसी न किसी रूप में औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं। भारत के अधिकांश हिस्सों में पाया जाने वाला यह पौधा पोषक तत्वों का भंडार है और अनेक रोगों की रोकथाम एवं उपचार में सहायक माना जाता है।

## सहजन का पोषण मूल्य

सहजन को प्रकृति का पोषण भंडार कहा जाता है क्योंकि इसके पत्तों, फलियों और बीजों में अनेक आवश्यक पोषक तत्व संतुलित मात्रा में पाए जाते हैं। विशेष रूप से इसके हरे पत्ते अत्यंत पौष्टिक होते हैं और इनमें विटामिन, खनिज, प्रोटीन तथा एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में मौजूद रहते हैं। यही कारण है कि इसे ÷सुपरफूड÷ की श्रेणी में रखा जाता है।सहजन की फलियाँ भी अत्यंत लाभकारी होती हैं। इनमें विटामिन ष्ट, फाइबर और खनिज तत्व पाए जाते हैं, जो पाचन को सुधारते हैं और शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। यह कम कैलोरी वाली सब्जी है, इसलिए वजन नियंत्रण में भी सहायक मानी जाती है।सहजन के बीज में स्वस्थ वसा और एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं। कुछ स्थानों पर बीजों से तेल भी निकाला जाता है, जो त्वचा और बालों के लिए उपयोगी माना जाता है। वहीं इसकी छाल में औषधीय गुण पाए जाते हैं, जिनका उपयोग पारंपरिक उपचार में किया जाता है।सहजन में फ्लेवोनॉयड्स, पॉलीफेनॉल्स और अन्य एंटीऑक्सीडेंट तत्व मौजूद होते हैं, जो शरीर में सूजन कम करने और दीर्घकालिक रोगों के जोखिम को घटाने में सहायक हो सकते हैं। नियमित और संतुलित मात्रा में सहजन का सेवन शरीर को संपूर्ण पोषण, ऊर्जा और बेहतर स्वास्थ्य प्रदान करता है।

## 2. सहजन के औषधीय गुण

**(क) रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना**

सहजन में एंटीऑक्सीडेंट और विटामिन ष्ट की मात्रा अधिक होती है, जो शरीर को संक्रमण और मौसमी बीमारियों से बचाने में मदद करती है। नियमित सेवन से सर्दी, खांसी और वायरल संक्रमण का खतरा कम हो सकता है।

### (ख) मधुमेह (डायबिटीज) में लाभकारी

सहजन की पत्तियों का सेवन रक्त शर्करा (ब्लड शुगर) के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक माना जाता है। इसमें उपस्थित यौगिक इंसुलिन की क्रिया को बेहतर बनाते हैं, जिससे मधुमेह के रोगियों को लाभ मिल सकता है।

### (ग) हृदय स्वास्थ्य के लिए उपयोगी

सहजन कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है। इसके एंटीऑक्सीडेंट तत्व धमनियों में जमा वसा को घटाने में सहायक होते हैं, जिससे हृदय रोगों का जोखिम कम होता है।

### (घ) पाचन तंत्र को मजबूत बनाना

सहजन में फाइबर की मात्रा अच्छी होती है, जो पाचन क्रिया को सुधारती है। यह कब्ज, गैस और अपच जैसी समस्याओं से राहत दिलाने में सहायक है। सहजन का सूप या सब्जी पेट के लिए हल्की और लाभकारी होती है।

### (ङ) हड्डियों और जोड़ों के लिए लाभ

सहजन में कैल्शियम और फॉस्फोरस की उपस्थिति हड्डियों को मजबूती देती है। गठिया (आर्थराइटिस) और जोड़ों के दर्द में इसके पत्तों का सेवन लाभकारी माना जाता है।

### (च) त्वचा और बालों के लिए फायदेमंद

सहजन के तेल (मोरिंगा ऑयल) में एंटीऑक्सीडेंट और एंटीबैक्टीरियल गुण होते हैं, जो त्वचा को स्वस्थ और चमकदार बनाते हैं। यह बालों को मजबूत करने और रूसी कम करने में भी सहायक है।

### (छ) सूजन और संक्रमण में लाभकारी

सहजन में एंटी-इंफ्लेमेटरी (सूजन कम करने वाले) गुण पाए जाते हैं। यह शरीर की सूजन, घाव और संक्रमण को ठीक करने में सहायक हो सकता है।

## 3. सहजन के विभिन्न भागों का उपयोग

**1.पत्ते :** सब्जी, सूप, चटनी या पाउडर के रूप में सेवन किया जाता है।

**2.फलियाँ (ड्रमस्टिक) :** सांभर और सब्जियों में उपयोगी; पाचन के लिए लाभकारी।

**3.फूल :** चाय या सब्जी के रूप में; रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाते हैं।

**4.बीज :** तेल निकालने और पानी शुद्ध करने में उपयोग।

**5.जड़ और छाल :** आयुर्वेदिक दवाओं में सीमित मात्रा में प्रयोग।

## 4. सहजन का सेवन कैसे करें

* सहजन की पत्तियों का पाउडर सुबह खाली पेट गुनगुने पानी के साथ लिया जा सकता है।
* इसकी सब्जी या सूप सप्ताह में 2:3 बार सेवन करना लाभकारी है।
* सहजन का तेल त्वचा और बालों में लगाया जा सकता है।

## 5. सावधानियाँ

यद्यपि सहजन प्राकृतिक और सुरक्षित माना जाता है, फिर भी इसका अत्यधिक सेवन हानिकारक हो सकता है।

* गर्भवती महिलाओं को सहजन की जड़ या छाल का सेवन बिना चिकित्सकीय सलाह के नहीं करना चाहिए।
* मधुमेह या उच्च रक्तचाप के रोगी यदि नियमित दवा ले रहे हों, तो सहजन का सेवन डॉक्टर से परामर्श के बाद करें।

## निष्कर्ष

सहजन एक बहुउपयोगी और औषधीय गुणों से भरपूर पौधा है, जो शरीर को पोषण देने के साथ-साथ अनेक रोगों से बचाव में सहायक है। आयुर्वेद में इसे लंबे समय से उपयोग किया जा रहा है और आधुनिक विज्ञान भी इसके लाभों को स्वीकार कर रहा है। यदि संतुलित मात्रा में और सही तरीके से इसका सेवन किया जाए, तो सहजन स्वास्थ्य के लिए एक वरदान सिद्ध हो सकता है।इस प्रकार, सहजन न केवल हमारे भोजन का स्वाद बढ़ाता है, बल्कि एक प्राकृतिक औषधि के रूप में हमारे जीवन को स्वस्थ और संतुलित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

**(स्रोत: आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या)**

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

# छोटा खेत, बड़ा मुनाफा : छोटे किसानों के लिए कृषि व्यवसाय प्रबंधन के सफल मॉडल

**सर्वेश कुमार** एमबीए (खाद्य एवं कृषि व्यवसाय प्रबंधन) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

**प्रखर राय** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

**डॉ. ललित कुमार सनोदिया**

**डॉ. अखिलेश कुमार सिंह** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**डॉ सत्येंद्र कुमार सिंह** सह- आचार्य, कीट विज्ञान विभाग, कृषि संकाय

## प्रस्तावना

भारत में छोटे और सीमांत किसान कृषि व्यवस्था की रीढ़ हैं, लेकिन सीमित भूमि, बढ़ती लागत और अनिश्चित बाजार के कारण उनकी आय अपेक्षित रूप से नहीं बढ़ पाती। केवल अधिक उत्पादन अब समाधान नहीं है; खेती को सुनियोजित कृषि व्यवसाय के रूप में अपनाना समय की आवश्यकता बन गया है। जब किसान फसल चयन से लेकर लागत, प्रसंस्करण और विपणन तक हर निर्णय सोच-समझकर करता है, तब छोटा खेत भी स्थायी और अधिक लाभ देने लगता है। कृषि व्यवसाय प्रबंधन इसी वैज्ञानिक और व्यावहारिक सोच का मार्ग है, जो छोटे किसानों को आत्मनिर्भर और लाभकारी खेती की दिशा में आगे बढ़ाता है।

## समेकित कृषि प्रणाली: नियमित आय का प्रभावी मॉडल

समेकित कृषि प्रणाली में फसल उत्पादन के साथ पशुपालन, बागवानी, मत्स्य पालन, मशरूम आदि को एक ही इकाई में इस प्रकार जोड़ा जाता है कि सभी घटक एक-दूसरे के पूरक बनें। इससे किसान को आय के एक से अधिक स्रोत प्राप्त होते हैं और किसी एक गतिविधि के प्रभावित होने पर भी कुल आमदनी बनी रहती है, जिससे जोखिम कम होता है और वर्ष भर रोजगार के अवसर मिलते हैं। छोटे किसानों के लिए आय का सबसे सुरक्षित तरीका एक ही स्रोत पर निर्भर न रहना है।

**इस प्रणाली का वैज्ञानिक आधार पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण है-** * खेत की फसल का अवशेष पशुओं के चारे में उपयोग * पशुओं का गोबर जैविक खाद के रूप में * लागत में कमी और मृदा स्वास्थ्य में सुधार इस तरह एक इकाई दूसरे को सहारा देती है और किसान को पूरे वर्ष नियमित आय मिलती रहती है।

## फसल विविधीकरण मॉडल

फसल विविधीकरण का अर्थ है एक ही फसल पर निर्भर रहने के बजाय अनाज के साथ दलहन, तिलहन, सब्जी, फल या नकदी फसलों का संतुलित समावेश करना। यह मॉडल छोटे किसानों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है, क्योंकि इससे आय के कई स्रोत बनते हैं और बाजार या मौसम के कारण होने वाला जोखिम कम हो जाता है। अलग-अलग अवधि और प्रकृति की फसलें अपनाने से खेत का उपयोग पूरे वर्ष होता है, श्रम का बेहतर प्रबंधन संभव होता है और मृदा की उर्वरता भी बनी रहती है, विशेषकर दलहनी फसलों के समावेश से नाइट्रोजन की पूर्ति होती है। बाजार की मांग के अनुसार फसल चयन करने पर कम क्षेत्रफल से भी अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार फसल विविधीकरण छोटे किसान की आय को स्थिर, टिकाऊ और लाभकारी बनाने का प्रभावी कृषि व्यवसाय मॉडल है।

## किसान उत्पादक संगठन - सामूहिक शक्ति का मॉडल

छोटे किसान की सबसे बड़ी कमजोरी उसकी कम उत्पादन मात्रा होती है, जिसके कारण उसे बाजार में सही मूल्य नहीं मिल पाता। किसान उत्पादक संगठन इस समस्या का व्यावहारिक समाधान है। किसान उत्पादक संगठन के माध्यम से- * सामूहिक रूप से उर्वरक, बीज और अन्य इनपुट सस्ते मिलते हैं * उत्पाद की ग्रेडिंग, पैकेजिंग और भंडारण संभव होता है * सीधे बड़े बाजारों और कंपनियों से जुड़ाव होता है इससे किसानों की मोलभाव करने की क्षमता बढ़ती है और उन्हें बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

## मूल्य संवर्धन और कृषि प्रसंस्करण

मूल्य संवर्धन का अर्थ है कृषि उत्पाद को उसके कच्चे रूप में बेचने के बजाय उसे प्रसंस्कृत या बेहतर रूप में बाजार तक पहुँचाना, ताकि उसका मूल्य बढ़ सके। जैसे गेहूँ से आटा, दूध से दही, पनीर या घी, टमाटर से सॉस तथा फलों से जैम या अचार बनाकर बेचने से किसान को अधिक आय प्राप्त होती है। यह मॉडल छोटे किसानों के लिए इसलिए उपयोगी है क्योंकि इसमें कम मात्रा का उत्पाद भी अधिक लाभ दे सकता है। कृषि प्रसंस्करण से भंडारण अवधि बढ़ती है, बाजार पर निर्भरता कम होती है और परिवार के अन्य सदस्यों, विशेषकर महिलाओं के लिए अतिरिक्त रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार मूल्य संवर्धन खेती को केवल उत्पादन तक सीमित न रखकर एक लाभकारी कृषि व्यवसाय में बदलने का प्रभावी माध्यम बनता है।

## प्रत्यक्ष विपणन और डिजिटल कृषि: बाजार तक सीधी पहुंच

प्रत्यक्ष विपणन में किसान अपने उत्पाद को बिना बिचौलियों के सीधे उपभोक्ताओं तक पहुँचाता है, जिससे उसे बेहतर और लाभकारी मूल्य मिलता है। किसान बाजार, स्थानीय बिक्री केंद्र, व्हाट्सएप, सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म जैसे डिजिटल माध्यम छोटे किसानों को भी बड़े बाजार से जोड़ रहे हैं। इससे परिवहन और विपणन लागत घटती है, मांग की सही जानकारी मिलती है और ताजा उत्पाद का उचित दाम प्राप्त होता है। यह मॉडल छोटे किसान को आत्मनिर्भर बनाकर उसकी आय को स्थिर और अधिक लाभकारी बनाता है।

## सफल कृषि व्यवसाय प्रबंधन के प्रमुख घटक

* फार्म प्लानिंग और उचित बजट बनाना * लागत-लाभ का नियमित लेखा-जोखा रखना * बाजार की मांग के अनुसार फसल एवं उद्यम का चयन * फसल विविधीकरण द्वारा जोखिम कम करना * कृषि बीमा और जोखिम प्रबंधन अपनाना * भंडारण और प्रसंस्करण की व्यवस्था
* उन्नत तकनीक और डिजिटल साधनों का उपयोग
* समय पर ऋण, निवेश और संसाधनों का कुशल प्रबंधन

## निष्कर्ष

छोटे किसानों की समृद्धि का रास्ता अधिक भूमि से नहीं, बल्कि बेहतर प्रबंधन, सही योजना और बाजार से सीधे जुड़ाव से होकर जाता है। समेकित कृषि प्रणाली, फसल विविधीकरण, मूल्य संवर्धन और प्रत्यक्ष विपणन जैसे मॉडल अपनाकर सीमित संसाधनों में भी स्थिर और अधिक आय प्राप्त की जा सकती है। जब किसान उत्पादन के साथ-साथ लागत, प्रसंस्करण और विपणन पर ध्यान देता है, तब उसकी खेती एक लाभकारी कृषि व्यवसाय बन जाती है। यही सोच छोटे खेत को आत्मनिर्भर, टिकाऊ और वास्तव में ÷बड़ा मुनाफा÷ देने वाला बनाती है।

नन्दिनी इन्टरप्राइजेज खाद बीज एवं कीटनाशक

प्रो. रामदीन कुशवाह
84610-11860

हमारे यहां सभी प्रकार के खाद बीज एवं कीटनाशक दवाईयां उचित रेट पर मिलती हैं

पता : चीनोर रोड, छीमक, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)

04/2025-26

# गेहूँ की अंतिम अवस्था का समेकित प्रबंधन: अधिक उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता और कम नुकसान

✍ **अतुल पासवान, विकाश सोनकर** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

✍ **आकांक्षा सिंह** आनुवंशिकी और पादप प्रजनन विभाग, कृषि संकाय, घनश्याम उर्वशी पीजी कॉलेज, फूलपुर प्रयागराज

✍ **डॉ. ललित कुमार सनोदिया, डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

## भूमिका

भारत में गेहूँ रबी मौसम की प्रमुख खाद्यान्न फसल है और देश की खाद्य सुरक्षा में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। गेहूँ की फसल में दाना भरने से लेकर पूर्ण पकने तक की अवधि को अंतिम अवस्था कहा जाता है, जो उपज और गुणवत्ता निर्धारण की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील होती है। इस समय पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्रिया से बने कार्बोहाइड्रेट दानों में संचित होते हैं और दाने का आकार, वजन तथा चमक निर्धारित होती है। यदि इस अवस्था में तापमान अधिक हो जाए, मिट्टी में नमी की कमी हो या पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ जाए तो दाना भराव प्रभावित होता है और उपज में कमी आ जाती है। इसलिए इस अवस्था में समेकित फसल प्रबंधन अपनाना आवश्यक है, जिससे संसाधनों का कुशल उपयोग करते हुए अधिक उत्पादन एवं बेहतर गुणवत्ता प्राप्त की जा सके।

## अंतिम सिंचाई का प्रबंधन

गेहूँ की फसल में अंतिम सिंचाई का सीधा संबंध दाने के विकास से होता है। सामान्यतः दूधिया से आटे जैसी अवस्था के मध्य की गई हल्की सिंचाई दानों के उचित भराव में सहायक होती है। इस समय मिट्टी में पर्याप्त नमी रहने से पौधे की प्रकाश संश्लेषण क्रिया सक्रिय रहती है और दानों में शुष्क पदार्थों का संचय अधिक होता है। यदि इस अवस्था में नमी की कमी हो जाए तो दाने छोटे और सिकुड़े हुए रह जाते हैं, जिससे हजार दाना वजन कम हो जाता है। दूसरी ओर, देर से या अधिक सिंचाई करने पर फसल गिरने की संभावना बढ़ जाती है, जिससे कटाई में कठिनाई होती है और उपज का नुकसान होता है। अतः खेत की मिट्टी, तापमान तथा नमी की स्थिति को ध्यान में रखते हुए संतुलित सिंचाई करना चाहिए।

## पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग

फसल की अंतिम अवस्था में दाना भरने की प्रक्रिया मुख्यतः पौधे द्वारा पहले से अवशोषित पोषक तत्वों पर निर्भर करती है। फिर भी यदि पौधों में पोषण की कमी के लक्षण दिखाई दें तो 2 प्रतिशत यूरिया या डीएपी के घोल का पर्णीय छिड़काव लाभकारी होता है। इससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सक्रिय रहती है और दानों का वजन बढ़ता है। सल्फर एवं जिंक जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व दानों की गुणवत्ता, प्रोटीन की मात्रा और चमक को प्रभावित करते हैं, इसलिए इनकी कमी वाले क्षेत्रों में इनका संतुलित प्रयोग आवश्यक है। संतुलित पोषण से दाना भराव बेहतर होता है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

## टर्मिनल हीट से बचाव

अंतिम अवस्था में तापमान में अचानक वृद्धि होने पर दाना भरने की अवधि कम हो जाती है, जिसे टर्मिनल हीट का प्रभाव कहा जाता है। इस स्थिति में पौधे की शारीरिक क्रियाएँ प्रभावित होती हैं और दानों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। समय पर बोआई, उपयुक्त अवधि वाली किस्मों का चयन तथा हल्की सिंचाई द्वारा खेत का तापमान नियंत्रित कर इस प्रभाव को कम किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में तापमान तेजी से बढ़ता है वहाँ शीघ्र पकने वाली किस्मों का चयन अधिक लाभकारी रहता है। इस प्रकार का प्रबंधन दानों के वजन और उपज को बनाए रखने में सहायक होता है।

## रोग एवं कीट प्रबंधन

गेहूँ की अंतिम अवस्था में चेपा, रतुआ तथा अन्य रोग-कीटों का प्रकोप फसल को प्रभावित कर सकता है। चेपा के प्रकोप से पत्तियों का रस चूस लिया जाता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है और दाना भराव रुक जाता है। इसी प्रकार रतुआ रोग पत्तियों की हरितिमा को नष्ट कर देता है, जिससे दानों का विकास प्रभावित होता है। इसलिए फसल की नियमित निगरानी करते हुए आवश्यकता अनुसार अनुशंसित कीटनाशी एवं फफूंदनाशी का प्रयोग करना चाहिए। स्वस्थ फसल से प्राप्त दानों की गुणवत्ता बेहतर होती है और बाजार में अधिक मूल्य मिलता है।

## फसल गिरने से बचाव

फसल गिरना गेहूँ की अंतिम अवस्था की एक प्रमुख समस्या है, जो अधिक सिंचाई, असंतुलित नाइट्रोजन उर्वरक तथा तेज हवा के कारण होती है। फसल गिरने से प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है, दानों का भराव रुक जाता है और कटाई के समय अधिक हानि होती है। संतुलित उर्वरक प्रयोग, नियंत्रित सिंचाई तथा उचित किस्मों के चयन द्वारा इस समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

## कटाई का सही समय

गेहूँ की कटाई उचित समय पर करना अत्यंत आवश्यक है। जब फसल पूरी तरह सुनहरी हो जाए, दाने कठोर हो जाएँ तथा उनमें लगभग 18ङ्क20 प्रतिशत नमी रह जाए, तब कटाई करनी चाहिए। समय से पहले कटाई करने पर दाने हल्के और सिकुड़े हुए प्राप्त होते हैं, जबकि देर से कटाई करने पर दाने झड़ने और टूटने की संभावना बढ़ जाती है। समय पर कटाई करने से दानों की गुणवत्ता बनी रहती है और कटाई-पश्चात हानि कम होती है।

## कटाई पश्चात प्रबंधन

कटाई के बाद दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाकर उनकी नमी लगभग 12 प्रतिशत तक लाना आवश्यक है। अधिक नमी वाले दानों के भंडारण से फफूंद एवं कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है, जिससे दानों की गुणवत्ता और अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है। साफ एवं सूखे स्थान पर भंडारण करने से दानों को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। वैज्ञानिक भंडारण से बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।

## निष्कर्ष

गेहूँ की अंतिम अवस्था में समेकित फसल प्रबंधन अपनाकर उत्पादन, गुणवत्ता और लाभ तीनों में वृद्धि की जा सकती है। संतुलित सिंचाई, उचित पोषण, टर्मिनल हीट से बचाव, रोग-कीट नियंत्रण तथा समय पर कटाई द्वारा न केवल अधिक उपज प्राप्त होती है बल्कि दानों की गुणवत्ता भी बेहतर होती है। वर्तमान परिस्थितियों में यह प्रबंधन गेहूँ उत्पादन को अधिक लाभकारी, टिकाऊ और किसानोन्मुख बनाने की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# पशुओं के गर्भावस्था से जुड़ी किसानों हेतु तकनीकी जानकारियां

**डॉ अनुज कुमार गौतम** विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन), कृषि विज्ञान केंद्र, ललितपुर (उ.प्र.)
**डॉ सरिता देवी** विषय वस्तु विशेषज्ञ (गृह विज्ञान), कृषि विज्ञान केंद्र, ललितपुर (उ.प्र.)
**डॉ दिनेश तिवारी** विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान), कृषि विज्ञान केंद्र, ललितपुर, (उ.प्र.)
**डॉ मुकेश चंद** अध्यक्ष एवं वरिष्ठ वैज्ञानिक,कृषि विज्ञान केंद्र, ललितपुर

## हीट (गर्मी) में आई हुई पशुओं के लक्षण

रंभाती हैं। पूंछ उपर उठाती हैं। बार-बार दूसरी गायों पर चढ़ती हैं। भागने का प्रयास करती हैं।योनि में हल्की सी सूजन आ जाती है। खाना कम खातीहैं और उनकी प्यास बढ़ जाती हैं। बेचौनी अनुभव करती हैं। बंधे स्थान का चक्कर काटती हैं। योनि से सफेद चमकीला पारदर्शी पदार्थ (तोरा) निकलने लगता है। बच्चेदानी का मुंह खुला रहता है अतः ऐसे समय उसके मैथुन की व्यवस्था करनी चाहिए।

**विशेष-** गाय तथा भैंस केवल 18 से 24 घंटे तक ही गर्मी में रहती हैं, अतः इस समय के बाद ही प्राकृतिक या कृतिम गर्भाधान कराने की व्यवस्था करानी चाहिए।

## गर्भित पशु की पहचान

गाय या भैंस का ऋतुमयी (गर्म) होना बंद हो जाता है। पशु शांत और सीधा स्वभाव का हो जाता है। थन और योनि (टनसअं) बढ़ने लगते हैं। पेट के आकार में धीरे धीरे वृद्धि होने लगती है। दूध गाढ़ा, कम और नमकीन स्वाद का होने लगता है। पशु हमेशा आराम करने का प्रयास करता है। पांच माह का गर्भ होने पर पशु के बैठे रहने पर गर्भाशय में बच्चे का हिलना डुलना देखा जा सकता है। गाभिन पशु सांडों को अपने पास नहीं आने देती है। वह पुनः ऋतुमयी (गर्मी) में नहीं आती है। यदि 3-4 महीने की गर्भवती गाय को कुछ समय तक भूखा रखा जाए और तत्पश्चात उसे ठंडा पानी पीने को दिया जाए तो पेट में बच्चे का हिलना डुलना स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है। यदि 4-5 महीने के गाभिन पशु के पेट के पास यदि कान लगाकर ध्यानपूर्वक आवाज सुनी जाए तो बच्चे के हृदय की धड़कन स्पष्ट सुनाई देती है। स्टैथोस्कोप नामक यंत्र के प्रयोग से तो इस धड़कन का सुनना और भी सरल हो जाता है। यदि गर्भ 7 महीने का हो जाय तो गाय का योनि द्वार कुछ फैला हुआ दिखाई पड़ता है।

**विशेष-** गर्भ के बढ़ने के साथ ही गाय की योनि के बीच स्थित कार्पस ल्यूटियम नामक भाग बढ़ने लगता है। अतः गाय की योनि में हाथ डालकर गाय के 2 महीने का गर्भ होने पर कार्पस ल्यूटियम का आकार देख कर गाय के गाभिन होने की बात निर्णयपूर्वक कही जा सकती है।

## गर्भवती गाय या भैंस की देखभाल

गाभिन पशु की देखभाल अन्य पशुओं के अपेक्षा अधिक करनी पड़ती है। गाभिन होने के पश्चात एक गाय लगभग 9 महीने 9 दिन और भैंस 10 महीने 10 दिन में बच्चा देती है। अतः गाभिन होने का तारीख मालूम करना आवश्यक होता है। **गाभिन होने से लेकर ब्याने आने तक पशु के प्रति जिन सावधानियों की आवश्यकता होती है वे इस प्रकार हैं-**

गाभिन पशु को शांत वातावरण में रखा जाए। गर्भवती पशु को अन्य पशुओं से लड़ने ना दें तथा अधिक दूर तक व तेजी से ना चलाएं। ब्याने से 10-15 दिन पहले से उसे अन्य पशुओं से अलग रखें। ब्याने की अनुमानित तिथि से 2 माह पूर्व से पशु का दूध लेना बंद कर देना चाहिए एवं उसके दाने में वृद्धि कर देनी चाहिए। यह वृद्धि दूध देते समय की आधी होनी चाहिए। गाभिन पशु के रहने का स्थान मुलायम पुआल आदि का तथा दुर्गंध व सीलन से रहित होना चाहिए। जिन पशुओं के ब्याने से पूर्व दूध उतर आता है उसे ब्याने से पहले नहीं दुहना चाहिए। इससे गाय या भैंस के ब्याने में विलंब होता है तथा ब्याते समय अधिक कष्ट होता है। ब्याने के बाद बछड़े की नाल को काट कर उस पर टिंकचर आयोडीन लगा दे। पशु को गुनगुने पानी से भीगे हुए कपड़े से साफ कर दे। पैदा हुए बच्चे के नथुने तथा मुँह आदि को साफ करके खीस (कोलस्ट्रम) पिलाना चाहिए। जेर (प्लेसेंटा) का स्वतः 2 से 4 घंटे के अंदर निकल जाता है। यदि 8 घंटे तक जेर ना निकले तो स्वतः निकलवाने का प्रयत्न करना चाहिए। पशु जेर ना खा ले इसका ध्यान रखना चाहिए। जेर को किसी गहरे गड्ढे में गाड़ देना चाहिए। पशुशाला (जहां पशु ने बच्चा दिया हो) कि सफाई फिनाइल के घोल से करें। जो पशु अधिक दूध देने वाले हो उनमें खीस (कोलस्ट्रम) एक बार में पूरी न निकाले बल्कि थोड़ा थोड़ा करके दिन में 3-4 बार में निकालें। एक बार में संपूर्ण खीस निकालने से मिल्क फीवर ब्याधि होने की संभावना रहती है। पशु को पीने का पानी गुनगुना इच्छानुसार देना चाहिए। जिन गाय या भैंस को पहले गर्भपात हो चुका हो उनके साथ गाभिन पशु को उठने बैठने नहीं देना चाहिए।

गर्भवती पशु हेतु विशेष कक्ष

## गर्भावस्था में पशु का आहार

गर्भावस्था में पशु के आहार का बहुत महत्व होता है। पशु का आहार पाचक एवं स्वादिष्ट होना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक गाभिन गाय या भैंस को साधारणतया 30-35 किलोग्राम हरा चारा, 3-4 किलोग्राम सूखा चारा (भूसा आदि) तथा 2-3 किलोग्राम दाना एवं 50 ग्राम नमक प्रतिदिन दिया जाना चाहिए। यदि पशु को मुख्य रूप से सूखे चारे पर रखना है तो उसे 5-8 किलोग्राम भूसा और 5-10 किलोग्राम हरा दिया जाना चाहिए। वर्षा ऋतु में लोबिया मक्का का हरा चारा अथवा लोबिया ज्वार की कुट्टी का मिश्रण उत्तम रहता है। हाल के ब्याये हुए पशु को गेहूँ का दलिया, गुड, सोठ और अजवाइन आदि को मिलाकर हल्का पकाकर खिलाना चाहिए। गाय या भैंस को पाचक शक्ति वर्धक आहार जैसे चोकर के साथ गुड को मिलाकर खिलाने से बच्चा होने में आसानी होता है। कभी-कभी ब्याने के उपरांत जेर नही गिरता तो इसके लिए गुड़ 750 ग्राम, अजवायन 60 ग्राम, सोंठ 15 ग्राम, मेथी 15 ग्राम इत्यादि को 1 लीटर पानी में हल्का पकाकर अच्छी तरह मिला कर देना चाहिए। यदि एक बार देने पर पशु जेर ना गिराए तो दोबारा पिलाना चाहिए।

## विशेष ध्यान देने वाली बात

खनिज तत्वों की पूर्ति के लिए लगभग 50 ग्राम हड्डी का चूर्ण (बोनमिल) तथा 50 ग्राम नमक प्रतिदिन देना चाहिए। ब्याने के बाद पशु को तत्काल कार्बोहाइड्रेट्स चारा खिलाना चाहिए। ब्याने के बाद 3-4 दिन तक तैलीय खलिया (आयल केक) बिल्कुल नहीं खिलाना चाहिए। ब्याने के बाद गर्भाशय कि सफाई के लिए पशु को औटी (जच्चा आहार ) देना चाहिए इसमे गुड़, मेथी, अजवाइन, काला जीरा. गेंहू का दलिया ध् चोकर शामिल होते है, न कि जौ का आटा, अरहर की दाल। यह मिश्रण पशु को ताकत देने, जेर आसानी से गिराने और दूध बढाने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त ब्याने के तुरंत बाद पशु को कैल्सियम जरुर देना चाहिए ताकि मिल्क फीवर की समस्या न हो। अगर 8-12 घंटे के अन्दर जेर न गिरे तो पशु चिकित्सक से जरुर संपर्क करना चाहिए। ब्याने के बाद हल्का गर्म पानी या गुड़ का पानी जरुर पिलाना चाहिए ।

# नसदार तोरई की वैज्ञानिक खेती

✍राहुल यादव (शोध छात्र)
✍आस्तिक झा (सह-प्राध्यापक)
✍शशि शेखर मिश्रा (शोध छात्र)
✍आकाश कुमार (शोध छात्र) सब्ज़ी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

कद्दूवर्गीय फसलों में नसदार तोरई स्वास्थ्य और पोषण की दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण सब्जी मानी जाती है। अंग्रेजी में इसे रिज या रिब्ड गार्ड और वानस्पतिक रूप में लूफा अक्यूटेन्गुला के नाम से जाना जाता है। भारत के लगभग सभी राज्यों में इसकी खेती सुगमता से की जाती है। इसके कोमल और मुलायम फलों का उपयोग मुख्य रूप से सब्जी के लिए किया जाता है, जबकि कई क्षेत्रों में इसकी ताजी पत्तियों को भी सब्जी के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। पोषण की दृष्टि से इसके बीज काफी समृद्ध होते हैं, जिनमें 18.3-24.3 प्रतिशत तेल और 18-25% प्रोटीन पाया जाता है। नसदार तोरई के फलों में पानी की अधिकता होने के कारण इसकी तासीर ठंडी होती है, जो ग्रीष्म ऋतु में शरीर को शीतलता प्रदान करने में सहायक होती है।

**जलवायु एवं तापमान:** नसदार तोरई की सफल पैदावार के लिए गर्म और आर्द्र जलवायु सबसे उपयुक्त मानी जाती है। अपनी सहनशीलता के कारण इसकी खेती ग्रीष्म (जायद) और वर्षा (खरीफ) दोनों ही ऋतुओं में सुगमता से की जा सकती है। पौधों के बेहतर विकास और अच्छी फसल के लिए 32-38 का तापमान सर्वोत्तम पाया गया है।

**मृदा एवं पीएच मान:** यद्यपि नसदार तोरई की खेती उचित जल निकास वाली सभी प्रकार की जीवांशयुक्त मिट्टी में की जा सकती है, किंतु व्यावसायिक स्तर पर अच्छी पैदावार लेने हेतु बलुई दोमट या दोमट मृदा सबसे प्रभावी सिद्ध होती है। भूमि का पीएच मान 6.0 से 7.0 के मध्य होना इस फसल के लिए आदर्श माना जाता है।

### उन्नतशील किस्में

**काशी शिवानी:** इस किस्म के फल गहरे हरे रंग के होते हैं जिनकी सामान्य लंबाई 25-30 सेमी होती है, लेकिन बावर पद्धति से खेती करने पर यह 40 सेमी तक बढ़ सकती है। इसके एक फल का भार 150-200 ग्राम तक होता है। बुवाई के 50-60 दिनों बाद इसकी पहली तुड़ाई की जा सकती है और इससे प्रति हेक्टेयर 180-200 क्विंटल तक पैदावार मिलती है।

**काशी नंदा:** यह शीघ्र तैयार होने वाली किस्म है जिसके फल बुवाई के मात्र 42-48 दिनों में ही तोड़ने योग्य हो जाते हैं। इसके फल छोटे (15-20 सेमी) और वजन में 100-125 ग्राम के होते हैं। इसकी उत्पादन क्षमता 140-180 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक आंकी गई है।

**पूसा नूतन:** यह किस्म गर्मी और वर्षा दोनों ऋतुओं के लिए अत्यंत उपयुक्त है। इसके फल 25-30 सेमी लंबे और उभरी हुई नसों वाले होते हैं। लगभग 50-60 दिनों में तुड़ाई के लिए तैयार होने वाली इस किस्म से प्रति हेक्टेयर 150-180 क्विंटल तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

**स्वर्ण मंजरी:** इस किस्म के फल मध्यम आकार के और धारीयुक्त होते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) रोग के प्रति सहनशील है। बुवाई के 65-70 दिनों बाद तैयार होने वाली इस किस्म की पैदावार 180-200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**पंत तोरई-1 एवं फुले सुजाता:** पंत तोरई-1 के फल गुंबदकार और 15-20 सेमी लंबे होते हैं, जो 65 दिनों में तैयार होते हैं। वहीं फुले सुजाता के फल काफी लंबे (33-34 सेमी) होते हैं और यह मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू) के प्रति सहनशील है। फुले सुजाता से औसतन 188 क्विंटल प्रति हे. की उपज मिलती है।

**अर्का विक्रम:** यह एक हाइब्रिड (संकर) किस्म है जो बहुत जल्दी (46 दिन) तैयार हो जाती है। इसके फल हरे, लंबे और मुलायम होते हैं। दक्षिण भारत के राज्यों जैसे कर्नाटक और तमिलनाडु में इसकी उपज 291 क्विं. प्रति हेक्टेयर तक दर्ज की गई है, जबकि उत्तर भारत में यह 160 क्विं. तक उत्पादन देती है।

**थार करनी:** इस किस्म के फलों में मध्यम उभरी हुई धारियाँ होती हैं और फल का वजन 90-110 ग्राम के बीच रहता है। यह एक उच्च उपज देने वाली किस्म है जिससे 180-240 क्विं. प्रति हे. तक फसल प्राप्त की जा सकती है।

### सतपुतिया (गुच्छे वाली तोरई) की किस्में

**सतपुतिया:** यह मुख्य रूप से बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश की एक अनूठी स्थानीय किस्म है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें पुष्प उभयलिंगी होते हैं और फल गुच्छों में लगते हैं। इसका स्वाद उत्तम होता है और फल गोल या थोड़े अंडाकार होते हैं।

**काशी खुशी:** यह सतपुतिया की अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है, जिसमें फल 5-6 के गुच्छों में लगते हैं। एक पौधे पर लगभग 140 फल तक आ सकते हैं। इसके फल हल्के हरे और 13-15 सेमी लंबे होते हैं। इसकी कुल पैदावार 128-144 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है।

**स्वर्ण सावनी:** सतपुतिया की इस किस्म में फल 6-8 के गुच्छों में आते हैं। इसके फल का भार 35-40 ग्रा. होता है। इसकी खेती से औसतन 140 क्वि. प्रति हे. उपज मिलती है, जिसे 8-10 बार की तुड़ाई में प्राप्त किया जा सकता है।

**खाद एवं उर्वरक प्रबंधन:** नसदार तोरई की भरपूर पैदावार सुनिश्चित करने हेतु भूमि की तैयारी के समय ही 20-25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्रति हेक्टेयर 30-35 किग्रा नत्रजन, 25-30 किग्रा फास्फोरस और 25-30 किग्रा पोटाश की आवश्यकता होती है। उर्वरकों के प्रयोग के समय, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा और नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय देनी चाहिए। नत्रजन की बची हुई आधी मात्रा को बुवाई के 30-40 दिनों बाद पौधों की जड़ों के पास टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना लाभदायक रहता है।

**बुवाई का समय एवं बीज शोधन:** इस फसल की बुवाई दो ऋतुओं में की जा सकती है; ग्रीष्मकालीन फसल के लिए फरवरी-मार्च और वर्षाकालीन फसल के लिए जून-जुलाई का समय उपयुक्त है। एक हेक्टेयर खेत के लिए 3-4 किग्रा बीज की आवश्यकता होती है। बीजों को बुवाई से पूर्व शोधित करना अनिवार्य है। इसके लिए बीजों को इमिडाक्लोप्रिड (75 मिली प्रति लीटर पानी) के घोल में लगभग 8 घंटे तक भिगोना चाहिए। इसके पश्चात बीजों को छानकर छाया में जूट के बोरे पर सुखाकर ही बुवाई करें। यह प्रक्रिया फसल को प्रारंभिक अवस्था में सफेद मक्खी से बचाती है, जो मोजैक विषाणु रोग फैलाने का मुख्य कारक है।

**बुवाई की वैज्ञानिक विधि:** बुवाई के लिए नाली (चौनल) विधि को सबसे उत्तम माना गया है। इसमें खेत की तैयारी के उपरांत 2.5 से 3.0 मीटर की दूरी पर 45 सेमी चौड़ी और 30-40 सेमी गहरी नालियाँ बनाई जाती हैं। इन नालियों के दोनों किनारों (मेड़ों) पर 50-60 सेमी की दूरी रखते हुए बीज बोए जाते हैं। बुवाई के समय एक स्थान पर कम से कम दो बीज लगाने चाहिए, और जब पौधे जम जाएं, तो स्वस्थ पौधे को छोड़कर दूसरा निकाल देना चाहिए।

**सिंचाई प्रबंधन:** नसदार तोरई की वर्षाकालीन फसल को सामान्यतः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि मानसून की वर्षा पर्याप्त नमी प्रदान करती है। हालांकि, यदि लंबे समय तक वर्षा न हो और खेत में सूखापन दिखे, तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। इसके विपरीत, ग्रीष्मकालीन फसल पूरी तरह सिंचाई पर निर्भर होती है; इसलिए गर्मियों में मिट्टी की नमी के आधार पर 5-6 दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से पानी देते रहना चाहिए।

**पौधों को सहारा देना (बावर पद्धति):** ग्रीष्मकालीन फसल में पौधों को ऊपर चढ़ाने की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती और वे जमीन पर फैलकर अच्छी उपज दे देते हैं। किंतु वर्षाकालीन फसल में अधिक नमी और कीटों से बचाव के लिए पौधों को ट्रेलिस या पंडाल (बावर) बनाकर सहारा देना अनिवार्य है। इससे फलों की गुणवत्ता बेहतर होती है, वे सीधे बढ़ते हैं और सड़ने से बच जाते हैं, जिससे अंततः पैदावार में वृद्धि होती है।

**खरपतवार नियंत्रण एवं मल्चिंग (पलवार):** फसल को स्वस्थ रखने हेतु खेत को खरपतवार मुक्त रखना बहुत जरूरी है। इसके लिए समय-समय पर निराई-गुड़ाई जैसी क्रियाएं करते रहना चाहिए। बुवाई के बाद खेत में पलवार (मल्च) का प्रयोग करना अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है। यह मृदा के तापमान को नियंत्रित रखता है और नमी को संरक्षित करता है, जिससे बीजों का अंकुरण बेहतर होता है। साथ ही पलवार के प्रयोग से खरपतवारों का जमाव नहीं हो पाता, जिसका सकारात्मक प्रभाव फसल की पैदावार पर पड़ता है।

**तुड़ाई एवं सुरक्षित भंडारण:** तोरई के फलों की तुड़ाई हमेशा कोमल और मुलायम अवस्था में ही करनी चाहिए। यदि तुड़ाई में देरी होती है, तो फलों के अंदर सख्त रेशे बन जाते हैं, जिससे उनका स्वाद और बाजार मूल्य कम हो जाता है। सामान्यतः 6-7 दिनों के अंतराल पर फलों की तुड़ाई करनी चाहिए; इस प्रकार पूरी फसल अवधि में लगभग 8 बार तुड़ाई की जा सकती है। फलों को ताजा रखने के लिए उन्हें ठंडे और छायादार स्थान पर संग्रहित करना चाहिए। ताजगी बनाए रखने के लिए समय-समय पर उन पर हल्के पानी का छिड़काव किया जा सकता है।

## प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

| कीट का नाम | पहचान/लक्षण | नुकसान | नियंत्रण/प्रबंधन |
|---|---|---|---|
| रेड पम्पकिन बीटल (कद्दू का लाल कीट) | प्रौढ़ व सूंडी दोनों हानिकारक | पत्तियाँ खाकर पौधे पत्ती रहित; जड़ों/तनों में छेद कर पौधे नष्ट | गहरी जुताई; नीम सीड कर्नेल एक्सट्रेक्ट 4: या एजाडिराक्टिन 300 PPM (5–10 मि.ली./ली.); अधिक प्रकोप पर सायनट्रेनिलीप्रोल 10.26% OD (1.8 मि.ली./ली.) |
| सफेद मक्खी | निम्फ व वयस्क रस चूसते हैं; कज्जली फफूंदी बनती है | प्रकाश संश्लेषण बाधित; वायरस (पीला मोजैक) फैलाती है | बीज उपचार (इमिडाक्लोप्रिड/थायोमेथोक्साम 3 ग्राम/किग्रा); फसल चक्र; बाजरा बार्डर; नीम सीड कर्नेल एक्सट्रेक्ट 4%/लेकानिसीलियम लेकानी छिड़काव |
| पर्ण सुरंगक कीट | पत्तियों में सुरंग बनाते हैं | क्लोरोफिल नष्ट, प्रकाश संश्लेषण कम | 4% नीम अर्क का छिड़काव |
| मेलन विविल | सूंडी फल के अंदर खाती है | फल सड़ जाते हैं; लताएँ सूखती हैं | संक्रमित भाग हटाएँ; एजाडिराक्टिन 300 PPM; मेटाराइजियम एनीसोफ्ली छिड़काव |
| फल मक्खी | मैगट फल के अंदर खाते हैं | फल सड़कर गिरते हैं | गहरी जुताई; मक्का ट्रैप; संक्रमित फल नष्ट; नीम अर्क; क्यू ल्यूर ट्रैप (30/हेक्टेयर) |
| मूल ग्रन्थि (सूत्रकृमि) | जड़ों में गांठ, पौधे पीले | वृद्धि रुकना, पौधे मरना | गहरी जुताई; फसल चक्र; कार्बोफ्यूरान 3G; नीम खली (500 किग्रा/हेक्टेयर) |

## प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

| रोग का नाम | लक्षण | नुकसान | प्रबंधन |
|---|---|---|---|
| मृदुरोमिल आसिता (डाउन मिल्ड्यू) | पत्तियों पर पीले धब्बे, नीचे फैलाव | पत्तियाँ सूखकर गिरती हैं | संक्रमित पत्तियाँ हटाएँ (मैंकोजेब 0.2% या साइमॉक्सिनील+मैंकोजेब छिड़काव) अधिक प्रकोप पर मेटालक्सिल+मैंकोजेब |
| चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू) | सफेद पाउडर जैसा पदार्थ | पत्तियाँ सूखकर झड़ती हैं | बीज उपचार (थीरम/कैप्टान/कार्बेन्डाजिम); डायनोकैप 0.03% या सल्फर 0.2% छिड़काव |
| कालर रॉट | नवांकुरित पौधे मरना | पौध नष्ट | फसल चक्र (कैप्टान 3 ग्राम/किग्रा बीज उपचार) एजोक्सीस्ट्रोबीनक्लोरोथेलोनिल छिड़काव |
| पीला मोजैक | पत्तियों पर पीले धब्बे, विकृत फल | 100% तक नुकसान संभव | सफेद मक्खी नियंत्रण के उपाय अपनाएँ |

# धान का झुलसा (शीथ ब्लाइट) रोग: लक्षण एवं प्रबंधन

**विकास कुमार** पादप रोग विज्ञान विभाग
**आशुतोष यादव** मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विभाग
**आशीष राव** सस्य विज्ञान विभाग
**अभिषेक सिंह यादव** कृषि विस्तार शिक्षा विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज,अयोध्या (उ.प्र.)

**प्रस्तावनाः** चावल विश्व की 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या का प्रमुख खाद्य स्रोत है। भारत में यह सबसे महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल के रूप में उगाया जाता है और लगभग 43 मिलियन हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है। उत्पादन में वृद्धि के उद्देश्य से अनेक उच्च उत्पादक किस्मों का विकास किया गया है। इन उन्नत किस्मों और आधुनिक उत्पादन तकनीकों के प्रसार के साथ-साथ फसल में रोगों की प्रकृति और तीव्रता में भी उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिला है। धान का शीथ ब्लाइट रोग, जो राइजोक्टोनिया सोलानी नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है, प्रारंभ में 1960 के दशक में एक सामान्य या कम महत्व का रोग माना जाता था। किन्तु समय के साथ यह कर्नाटक सहित कई क्षेत्रों में धान उत्पादन के लिए गंभीर समस्या बन गया। वर्तमान में कर्नाटक राज्य में इसे धान उत्पादन की प्रमुख बाधाओं में गिना जाता है। मध्यम अवधि वाली बहुत कम किस्में इस रोग के प्रति प्रतिरोधी पाई गई हैं। अधिकांश व्यावसायिक धान किस्में, विशेषकर अधिक कल्ले (टिलर) बनाने वाली किस्में, इस रोग के प्रति संवेदनशील हैं अथवा उनमें केवल सीमित प्रतिरोध पाया जाता है। धान आधारित फसल प्रणालियों के विस्तार के साथ-साथ इस रोग के प्रभाव में वृद्धि की संभावना बनी रहती है। सघन खेती प्रणालियों में, जहाँ पौधों की सघनता अधिक होती है और नाइट्रोजन उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है, शीथ ब्लाइट की तीव्रता अधिक देखी जाती है। अर्ध-बौनी तथा अधिक टिलरिंग(कल्ले) क्षमता वाली उच्च उत्पादक किस्मों के व्यापक उपयोग के कारण हाल के वर्षों में इस रोग की गंभीरता बढ़ी है और यह प्रमुख रोगों की श्रेणी में शामिल हो गया है। शीथ ब्लाइट के कारण सामान्यतः 30-40 प्रतिशत तक उपज हानि होती है, जबकि रोगग्रस्त (एंडेमिक) क्षेत्रों में यह हानि 100 प्रतिशत तक भी पहुँच सकती है ।

**रोग का लक्षणः** यह फफूंद जनित रोग फसल को टिलरिंग (कल्ला बनने) की अवस्था से लेकर बाली निकलने (हेडिंग) तक प्रभावित करता है। प्रारंभिक लक्षण पानी के स्तर के पास पत्ती की म्यान (लीफ शीथ ) पर दिखाई देते हैं। पत्ती की म्यान पर अंडाकार, दीर्घवृत्ताकार या अनियमित आकार के हरे-धूसर रंग के धब्बे बनते हैं। जैसे-जैसे ये धब्बे बढ़ते हैं, उनका मध्य भाग धूसर-सफेद हो जाता है और किनारों पर अनियमित काले-भूरे या बैंगनी-भूरे रंग की सीमा बन जाती है। पौधे के ऊपरी भागों पर बने घाव तेजी से फैलते हैं और आपस में मिलकर पानी की सतह से लेकर फ्लैग लीफ तक पूरे कल्ले (टिलर) को ढक लेते हैं। यदि एक पत्ती की म्यान पर कई बड़े घाव बन

जाएँ, तो पूरी पत्ती सूखकर मर जाती है। गंभीर स्थिति में पौधे की सभी पत्तियाँ झुलस सकती हैं। संक्रमण अंदरूनी म्यान तक फैल जाता है, जिससे पूरा पौधा नष्ट हो सकता है। अधिक उम्र के पौधे इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। यदि प्रारंभिक हेडिंग और दाना भरने की अवस्था में अधिक संक्रमण हो जाए, तो बालियों के निचले भाग में विशेष रूप से दाने ठीक से नहीं भरते और उपज की गुणवत्ता प्रभावित होती है और उत्पादन में कमी देखने को मिलती है।

**अनुकूल परिस्थितियांः** 28-32°C के बीच का तापमान रोग के विकास के लिए अत्यंत अनुकूल माना जाता है। 96-100% तक की उच्च सापेक्ष आर्द्रता रोग के प्रसार को बढ़ावा देती है। जब पत्तियों पर लंबे समय तक नमी बनी रहती है तो संक्रमण की प्रक्रिया तेज हो जाती है। लगातार या बार-बार होने वाली वर्षा रोग के फैलाव में सहायक होती है, क्योंकि वर्षा के दौरान स्क्लेरोशिया पानी में तैरकर अन्य पौधों तक पहुँच जाते हैं। अधिक बीज दर या अत्यधिक सघन रोपाई के कारण पौधों के बीच दूरी कम हो जाती है, जिससे वायु संचार बाधित होता है और आर्द्रता बनी रहती है। साथ ही, नाइट्रोजन उर्वरकों का अधिक प्रयोग रोग की तीव्रता को बढ़ाता है। अधिक टिलरिंग (कल्ले बनने) से फसल का घनत्व बढ़ जाता है, जिससे संक्रमण तेजी से फैलने की संभावना बढ़ जाती है।

**रोग प्रबंधन के उपायः** धान के शीथ ब्लाइट रोग का प्रबंधन संतुलित उर्वरकों के उपयोग तथा नाइट्रोजन की अधिक मात्रा से बचाव द्वारा किया जा सकता है। पौधों के बीच उचित दूरी (लगभग 20 म 15 सेमी) बनाए रखना आवश्यक है, ताकि फसल सघन न हो और वायु संचार बना रहे। खेत में जल प्रबंधन सही रखें और लगातार जलभराव की स्थिति से बचें। संक्रमित फसल अवशेषों को हटाकर नष्ट कर देना चाहिए तथा संभव हो तो गैर-आतिथि फसलों के साथ फसल चक्र अपनाना चाहिए। बुवाई से पहले बीजों का उपचार ट्राईकोडर्मा हर्जीनम ञ्च 4-5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से करना लाभकारी है तथा ट्राइकोडर्मा युक्त कम्पोस्ट का मिट्टी में प्रयोग किया जा सकता है। स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस ञ्च 10 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव भी सहायक होता है। रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही हेक्साकोनाज़ोल 5% EC @ 1 मिली/लीटर, प्रोपिकोनाज़ोल 25% EC @ 1 मिली/लीटर अथवा टेबुकोनाज़ोल + ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबिन का अनुशंसित मात्रा में छिड़काव करके रोग को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

**निष्कर्षः** धान का शीथ ब्लाइट रोग, जो राइजोक्टोनिया सोलानी नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है, वर्तमान समय में धान उत्पादन के लिए एक गंभीर और बढ़ती हुई समस्या बन चुका है, विशेषकर सघन एवं उच्च उत्पादक खेती प्रणालियों में। अनुकूल तापमान, उच्च आर्द्रता, अधिक नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग तथा अधिक सघन रोपाई इस रोग के प्रसार और तीव्रता को बढ़ाते हैं। यह रोग टिलरिंग से लेकर दाना भरने की अवस्था तक फसल को प्रभावित कर सकता है और 30ड्ढ40 प्रतिशत तक, तथा कुछ क्षेत्रों में इससे भी अधिक उपज हानि का कारण बनता है। अतः इस रोग के प्रभावी प्रबंधन के लिए एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जिसमें संतुलित उर्वरक प्रबंधन, उचित पौध दूरी, जल प्रबंधन, फसल चक्र, जैव-नियंत्रण एजेंटों का उपयोग तथा आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित फफूंदनाशकों का समय पर छिड़काव शामिल हो। वैज्ञानिक एवं समन्वित उपायों को अपनाकर शीथ ब्लाइट रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है तथा धान की उपज और गुणवत्ता को सुरक्षित रखा जा सकता है।

02/2025-26

# बढ़ती खाद्य कीमतें: एक वैश्विक संकट

शाडिण्जय सिंह
संदीप चौहान, सुचिस्मिता साहू
शोध छात्र, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या
अगंतिका गुप्ता शोध छात्रा कृषि प्रसार शिक्षा विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

## सारांश

आज के समय में बढ़ती खाद्य कीमतें पूरी दुनिया के लिए एक गंभीर चिंता का विषय बन चुकी हैं। यह समस्या केवल पैसों या बाजार तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सीधा संबंध समाज, पोषण और मानव जीवन की गुणवत्ता से है। रोज़मर्रा के भोजन में शामिल खाद्यान्न, सब्ज़ियाँ, फल, दूध, दालें और खाद्य तेल जैसी आवश्यक वस्तुएँ धीरे-धीरे आम लोगों की पहुँच से बाहर होती जा रही हैं। इसके पीछे कई कारण एक साथ काम कर रहे हैं, जिनमें जलवायु परिवर्तन, तेजी से बढ़ती जनसंख्या, वैश्विक महामारी, युद्ध, ऊर्जा संकट और कमजोर आपूर्ति श्रृंखला प्रमुख हैं। इन सभी कारकों ने मिलकर खाद्य कीमतों को लगातार ऊपर की ओर धकेला है। यह लेख बढ़ती खाद्य कीमतों के कारणों, उनके प्रभावों और संभावित समाधानों पर सरल और मानवीय भाषा में विस्तार से प्रकाश डालता है।

## परिचय

भोजन मानव जीवन की सबसे बुनियादी आवश्यकता है। इसके बिना जीवन की कल्पना करना भी संभव नहीं है। भोजन न केवल शरीर को ऊर्जा देता है, बल्कि यह स्वास्थ्य, विकास और सामाजिक स्थिरता का आधार भी है। लेकिन हाल के वर्षों में दुनिया भर में भोजन की कीमतों में जिस तरह से तेज़ वृद्धि हुई है, उसने आम आदमी की चिंताओं को बढ़ा दिया है। आज स्थिति यह है कि रोज़ की थाली धीरे-धीरे महंगी होती जा रही है और गरीब व मध्यम वर्ग के लिए संतुलित भोजन जुटाना भी कठिन होता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की रिपोर्टों के अनुसार, आज दुनिया में करोड़ों लोग भूख और कुपोषण से जूझ रहे हैं। बढ़ती खाद्य कीमतें इस समस्या को और गंभीर बना रही हैं। यह संकट केवल विकासशील देशों तक सीमित नहीं है, बल्कि विकसित देश भी इससे अछूते नहीं हैं। भोजन की बढ़ती लागत ने वैश्विक स्तर पर खाद्य सुरक्षा को एक बड़ी चुनौती बना दिया है।

## वैश्विक स्तर पर खाद्य कीमतों में वृद्धि की स्थिति

पिछले एक दशक में अंतरराष्ट्रीय बाजारों में गेहूँ, चावल, मक्का, दालों, खाद्य तेल और चीनी जैसी प्रमुख खाद्य वस्तुओं की कीमतों में लगातार उतार-चढ़ाव देखा गया है। कुछ वर्षों में यह वृद्धि इतनी तेज़ रही कि कई देशों को खाद्य संकट जैसी स्थिति का सामना करना पड़ा। विशेष रूप से कोविड-19 महामारी के बाद और कुछ क्षेत्रों में युद्ध की स्थिति के कारण वैश्विक खाद्य बाजार अस्थिर हो गया। कई देशों ने अपने घरेलू हितों की रक्षा के लिए खाद्यान्न के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिए, जिससे अंतरराष्ट्रीय बाजार में आपूर्ति कम हो गई और कीमतों में तेज़ उछाल आया।

## बढ़ती खाद्य कीमतों के कारण

बढ़ती खाद्य कीमतों का सबसे बड़ा कारण जलवायु परिवर्तन है, जिसने कृषि उत्पादन को गहराई से प्रभावित किया है। अनियमित बारिश, लंबे समय तक चलने वाला सूखा, अचानक आने वाली बाढ़ और अत्यधिक गर्मी ने फसलों को भारी नुकसान पहुँचाया है। जब खेतों में उत्पादन कम होता है या फसल पूरी तरह नष्ट हो जाती है, तो बाजार में खाद्यान्न की कमी पैदा हो जाती है और इसका सीधा असर कीमतों पर पड़ता है। इसके साथ ही दुनिया की बढ़ती जनसंख्या ने भोजन की मांग को तेजी से बढ़ा दिया है। हर साल करोड़ों नए लोग भोजन की आवश्यकता में जुड़ जाते हैं, जबकि कृषि भूमि और जल संसाधन सीमित होते जा रहे हैं। जब मांग तेजी से बढ़ती है और आपूर्ति उसी अनुपात में नहीं बढ़ पाती, तो कीमतों का बढ़ना स्वाभाविक हो जाता है।

कोविड-19 महामारी ने इस स्थिति को और अधिक गंभीर बना दिया। महामारी के दौरान खेतों में काम करने वाले मजदूरों की कमी हो गई, परिवहन व्यवस्था बाधित हो गई और कई स्थानों पर बाजार लंबे समय तक बंद रहे। इससे न केवल कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ, बल्कि खाद्य वस्तुओं की आपूर्ति श्रृंखला भी टूट गई। परिणामस्वरूप, खाद्य वस्तुएँ महंगी होती चली गईं। विश्व के कुछ हिस्सों में युद्ध और भू-राजनीतिक तनाव ने भी खाद्य कीमतों को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई। कई ऐसे देश, जो गेहूँ, मक्का, खाद्य तेल और उर्वरकों के बड़े उत्पादक और निर्यातक हैं, संघर्ष की स्थिति में आ गए। इससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रभावित हुआ और वैश्विक बाजार में खाद्य वस्तुओं की कमी हो गई। इसके अलावा, ऊर्जा और उर्वरकों की बढ़ती कीमतों ने खेती की लागत को काफी बढ़ा दिया है। डीज़ल, बिजली और उर्वरक आधुनिक खेती के लिए आवश्यक हैं। जब इनकी कीमतें बढ़ती हैं, तो किसान की उत्पादन लागत बढ़ जाती है और वह अपनी उपज को अधिक कीमत पर बेचने के लिए मजबूर होता है। इसका बोझ अंततः उपभोक्ताओं पर पड़ता है। कई देशों में भंडारण और वितरण की कमजोर व्यवस्था भी इस समस्या को बढ़ा देती है, जहाँ बड़ी मात्रा में खाद्यान्न खराब हो जाता है या बिचौलियों के कारण कीमतें कृत्रिम रूप से बढ़ जाती हैं।

## बढ़ती खाद्य कीमतों के प्रभाव

बढ़ती खाद्य कीमतों का सबसे गहरा असर गरीब और कमजोर वर्गों पर पड़ता है। ऐसे परिवार अपनी आय का बड़ा हिस्सा भोजन पर खर्च करते हैं। जब भोजन महंगा हो जाता है, तो वे भोजन की मात्रा और गुणवत्ता दोनों में कटौती करने लगते हैं। पौष्टिक भोजन की जगह सस्ता और कम पोषण वाला भोजन लेना उनकी मजबूरी बन जाती है। इसका सीधा परिणाम कुपोषण और भूख के रूप में सामने आता है। बच्चों में शारीरिक और मानसिक विकास रुक जाता है, महिलाओं में एनीमिया जैसी समस्याएँ बढ़ती हैं और बुजुर्गों में कमजोरी देखने को मिलती है। बढ़ती खाद्य कीमतें सामाजिक असमानता को भी बढ़ावा देती हैं। जहाँ एक ओर संपन्न वर्ग महँगा भोजन खरीद सकता है, वहीं गरीब वर्ग पीछे छूट जाता है, जिससे समाज में असंतोष और तनाव बढ़ता है। इतिहास बताता है कि खाद्य संकट कई बार सामाजिक अशांति और राजनीतिक अस्थिरता का कारण भी बना है। जब लोगों को पर्याप्त और सस्ता भोजन नहीं मिलता, तो विरोध प्रदर्शन और असंतोष बढ़ जाता है और सरकारों पर दबाव बनता है।

## भारत के संदर्भ में बढ़ती खाद्य कीमतें

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के बावजूद खाद्य महंगाई की समस्या से जूझ रहा है। मौसम की अनिश्चितता, उत्पादन लागत में वृद्धि, परिवहन और भंडारण की कमी तथा शहरीकरण के कारण बदलती खाद्य आदतें इस समस्या को और जटिल बना रही हैं। हालाँकि सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली, न्यूनतम समर्थन मूल्य और विभिन्न सब्सिडी योजनाएँ लागू की गई हैं, फिर भी बढ़ती आबादी और बदलती परिस्थितियों के कारण चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

## निष्कर्ष

बढ़ती खाद्य कीमतें आज की दुनिया की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक हैं। यह समस्या केवल बाजार या अर्थव्यवस्था से जुड़ी नहीं है, बल्कि मानव जीवन, स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय से गहराई से संबंधित है। यदि समय रहते प्रभावी और ठोस कदम नहीं उठाए गए, तो यह संकट और गंभीर रूप ले सकता है। सतत और जलवायु-अनुकूल कृषि, मजबूत सरकारी नीतियाँ, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और समाज के कमजोर वर्गों की सुरक्षा के माध्यम से ही इस वैश्विक संकट का समाधान संभव है। हर व्यक्ति को सस्ता, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

01/2025-26

# संगठित किसान, समृद्ध किसान: एफपीओ से आत्मनिर्भर कृषि की ओर

✍ **डॉ. ललित कुमार सनोदिया** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

✍ **प्रखर राय** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

## प्रस्तावना

भारतीय कृषि की आत्मा गाँवों में बसती है, लेकिन छोटे और सीमांत किसानों की बिखरी हुई संरचना उनकी आर्थिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा बन जाती है। खेत में मेहनत करने वाला किसान अक्सर बाज़ार में सबसे कमजोर कड़ी साबित होता है-न तो उसे अपनी उपज का उचित मूल्य मिल पाता है और न ही आधुनिक तकनीकों का पूरा लाभ। ऐसे समय में किसान उत्पादक संगठन (FPO) एक ऐसी सामूहिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है, जो किसानों को उत्पादक से उद्यमी बनाने की क्षमता रखता है। यह केवल एक संस्था नहीं, बल्कि खेती को घाटे के सौदे से लाभकारी व्यवसाय में बदलने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है।

## एफपीओ क्या है?

एफपीओ किसानों द्वारा किसानों के लिए बनाई गई एक व्यावसायिक संस्था है, जहाँ प्रत्येक सदस्य केवल उत्पादक ही नहीं बल्कि भागीदार भी होता है। यहाँ लाभ का उद्देश्य केवल कमाई नहीं, बल्कि सदस्यों की आय में स्थायी वृद्धि और कृषि को टिकाऊ बनाना होता है। यह संगठन किसानों को एक मंच प्रदान करता है जहाँ वे सामूहिक निर्णय लेते हैं, संसाधनों का बेहतर उपयोग करते हैं और अपनी उपज को सीधे उपभोक्ता या बड़े बाज़ार से जोड़ते हैं। इस प्रकार एफपीओ खेती को परंपरागत जीविकोपार्जन से आगे बढ़ाकर एक संगठित कृषि-व्यवसाय का रूप देता है।

## एफपीओ की आवश्यकता क्यों?

छोटे खेत, सीमित पूंजी, महंगे कृषि आदान और अनिश्चित बाज़ार-ये वे सच्चाइयाँ हैं जिनसे भारत का अधिकांश किसान रोज़ जूझता है। व्यक्तिगत रूप से किसान न तो बड़ी मात्रा में खरीद कर सकता है और न ही अपनी उपज को दूर के लाभकारी बाज़ार तक पहुँचा सकता है।एफपीओ इस स्थिति को बदल देता है। जब सैकड़ों किसान एक साथ खड़े होते हैं तो उनकी सौदेबाजी की शक्ति बढ़ती है, लागत घटती है और लाभ के नए रास्ते खुलते हैं। यह व्यवस्था किसानों को ÷मूल्य लेने वाला" नहीं बल्कि "मूल्य तय करने वाला" बनाती है।

## एफपीओ की प्रमुख गतिविधियाँ

**इनपुट की सामूहिक खरीद** - जब उर्वरक, बीज और कीटनाशक थोक में खरीदे जाते हैं तो उनकी लागत स्वतः कम हो जाती है। इससे किसानों को गुणवत्तापूर्ण आदान सही समय पर और उचित मूल्य पर उपलब्ध होते हैं, जो उत्पादन बढ़ाने की पहली शर्त है।

**सामूहिक विपणन** - एफपीओ किसानों की उपज को छोटे-छोटे ढेरों से निकालकर एक बड़ी खेप में बदल देता है। इससे सीधे बड़ी मंडियों, प्रोसेसिंग इकाइयों, रिटेल चेन और निर्यातकों से संपर्क संभव होता है और किसानों को अपनी फसल का वास्तविक मूल्य प्राप्त होता है।

**मूल्य संवर्धन** - ग्रेडिंग, सॉर्टिंग, पैकेजिंग और प्रसंस्करण के माध्यम से वही उपज कई गुना अधिक मूल्य दिला सकती है। कच्चा माल बेचने के बजाय तैयार उत्पाद बेचना ही किसानों की आय बढ़ाने का सबसे प्रभावी तरीका है-और यही काम एफपीओ करता है।

**भंडारण और परिवहन** - वैज्ञानिक भंडारण की सुविधा मिलने से किसान तुरंत फसल बेचने के लिए मजबूर नहीं होता। वह सही समय का इंतजार कर सकता है, जिससे बाजार में बेहतर दाम प्राप्त होते हैं।

## किसानों को होने वाले लाभ

एफपीओ किसानों को केवल आर्थिक लाभ ही नहीं देता, बल्कि उनमें आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता भी विकसित करता है। * उत्पादन लागत में उल्लेखनीय कमी * उपज का लाभकारी मूल्य * तकनीकी मार्गदर्शन और प्रशिक्षण * ऋण एवं सरकारी योजनाओं तक सीधी पहुँच * जोखिम में कमी और आय में स्थिरता

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि किसान अब अकेला नहीं रहता-वह एक संगठित शक्ति का हिस्सा बन जाता है।

## सरकार की पहल

सरकार द्वारा 10,000 नए एफपीओ के गठन की योजना कृषि क्षेत्र में संरचनात्मक परिवर्तन का संकेत है। वित्तीय सहायता, क्षमता निर्माण, क्रेडिट गारंटी और पेशेवर मार्गदर्शन जैसी सुविधाएँ इस बात को दर्शाती हैं कि आने वाला समय सामूहिक कृषि-व्यवसाय का है। यदि इन योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन हो, तो एफपीओ ग्रामीण विकास का सबसे सशक्त माध्यम बन सकता है।

## ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एफपीओ की भूमिका

एफपीओ गाँवों में केवल आय ही नहीं बढ़ाता, बल्कि रोजगार के नए अवसर पैदा करता है। प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन और विपणन जैसी गतिविधियाँ ग्रामीण युवाओं को स्थानीय स्तर पर काम उपलब्ध कराती हैं। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से सामाजिक सशक्तिकरण भी होता है। इस प्रकार एफपीओ कृषि को समग्र ग्रामीण विकास से जोड़ता है।

## एफपीओ की चुनौतियां

किसी भी संगठन की सफलता उसके प्रबंधन, पारदर्शिता और सदस्यों की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करती है। प्रारंभिक वर्षों में पूंजी की कमी, व्यावसायिक कौशल का अभाव और बाज़ार से सीमित संपर्क जैसी समस्याएँ सामने आती हैं। लेकिन निरंतर प्रशिक्षण, सही नेतृत्व और पेशेवर सहयोग से इन बाधाओं को अवसरों में बदला जा सकता है।

## निष्कर्ष

एफपीओ केवल एक योजना नहीं, बल्कि भारतीय कृषि की दिशा बदलने वाला विचार है। यह छोटे किसान को बाजार की मुख्यधारा से जोड़कर उसे आत्मनिर्भर और सम्मानजनक जीवन की ओर ले जाता है। जब किसान संगठित होता है तो उसकी आवाज़ मजबूत होती है, उसकी आय बढ़ती है और गाँव की अर्थव्यवस्था में नई ऊर्जा का संचार होता है।वास्तव में, एफपीओ वह सेतु है जो खेत को बाजार से, किसान को उद्यम से और ग्रामीण भारत को समृद्धि से जोड़ता है।

अक्षिता एग्रो

राघवेन्द्र सिंह
8959728253
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता
हमारे यहां सभी प्रकार के बीज एवं कीटनाशक दवाएं एवं खरपतवार नाशक दवाएं और अधिक उपज की दवाएं उचित दामों पर मिलती हैं
पता: अरैया रोड, आंतरी, जिला-ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

# कृषि संसाधनों का कुशल प्रबंधन: उत्पादन और लाभ में वृद्धि

विकाश सोनकर, अतुल पासवान, प्रखर राय
सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

डॉ. ललित कुमार सनोदिया, डॉ. अखिलेश कुमार सिंह
सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

**भूमिका:** वर्तमान समय में कृषि अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, जैसे घटती जोत का आकार, बढ़ती लागत, जल की कमी तथा मृदा की गिरती उर्वरता। ऐसी स्थिति में उपलब्ध संसाधनों का वैज्ञानिक एवं कुशल प्रबंधन ही उत्पादन बढ़ाने और किसानों की आय में वृद्धि का सबसे प्रभावी उपाय है। यदि किसान कम संसाधनों में अधिक उत्पादन प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें भूमि, जल, बीज, उर्वरक, श्रम और कृषि यंत्रों का समेकित एवं संतुलित उपयोग करना होगा। संसाधनों के सही प्रबंधन से न केवल लागत घटती है बल्कि पर्यावरण संरक्षण भी संभव होता है।

**मृदा संसाधन का कुशल प्रबंधन:** मृदा फसल उत्पादन का आधार है, इसलिए इसका स्वास्थ्य बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। उदाहरण के लिए, जिन खेतों में नियमित मृदा परीक्षण कराया जाता है और उसी के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ अनावश्यक खर्च कम होता है और उत्पादन अधिक मिलता है।हरी खाद जैसे ढैंचा को खेत में पलटने से मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है, जिससे जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता में वृद्धि होती है। इसी प्रकार फसल अवशेषों को जलाने के बजाय मिट्टी में मिलाने से मृदा की संरचना सुधरती है और दीर्घकालीन उर्वरता बनी रहती है

**जल संसाधन का वैज्ञानिक प्रबंधन:** जल का कुशल उपयोग आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। जिन क्षेत्रों में लेजर लैंड लेवलिंग अपनाई गई है, वहाँ सिंचाई जल की 20-30% तक बचत देखी गई है और फसल की वृद्धि समान रूप से होती है।इसी प्रकार ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई से पानी सीधे पौधों की जड़ों तक पहुँचता है, जिससे जल की बचत के साथ उर्वरकों की उपयोग दक्षता भी बढ़ती है। गेहूँ एवं दलहनी फसलों में क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई देने से कम पानी में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। मल्चिंग से वाष्पीकरण कम होता है और लंबे समय तक नमी बनी रहती है।

**समेकित पोषक तत्व प्रबंधन-** सिर्फ रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहने से मृदा की गुणवत्ता प्रभावित होती है और लागत भी बढ़ती है। इसके विपरीत, जब किसान गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट एवं जैव उर्वरकों को रासायनिक उर्वरकों के साथ मिलाकर उपयोग करते हैं, तो पोषक तत्वों की उपलब्धता लंबे समय तक बनी रहती है।नीम कोटेड यूरिया के प्रयोग से नाइट्रोजन का अपव्यय कम होता है तथा फसल को धीरे-धीरे पोषण मिलता है। फोलियर स्प्रे द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव करने से पौधों में तुरंत सुधार देखा जा सकता है।

**गुणवत्तायुक्त बीज का महत्व-** उन्नत किस्मों के प्रमाणित बीज का उपयोग उत्पादन बढ़ाने का सबसे सरल तरीका है। उदाहरण के लिए, यदि किसान क्षेत्र के अनुसार अनुशंसित किस्म का बीजोपचार करके बोते हैं, तो अंकुरण अच्छा होता है, पौधों की प्रारंभिक वृद्धि तेज होती है और रोगों का प्रकोप कम होता है। इससे कम बीज दर में भी अधिक पौध संख्या प्राप्त होती है और अंततः उत्पादन बढ़ता है।

**कृषि यंत्रीकरण द्वारा संसाधन संरक्षण-** कृषि यंत्रों के प्रयोग से समय, श्रम और लागत तीनों की बचत होती है। जीरो टिलेज मशीन से गेहूँ की बुवाई करने पर खेत की जुताई की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिससे डीज़ल की बचत होती है और मृदा की नमी सुरक्षित रहती है।हैप्पी सीडर द्वारा फसल अवशेषों के बीच बुवाई करने से पराली जलाने की समस्या समाप्त होती है तथा मृदा स्वास्थ्य सुधरता है। इसी प्रकार सीड-कम-फर्टिलाइजर ड्रिल से बीज और उर्वरक एक साथ उचित गहराई पर पहुँचते हैं, जिससे पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ती है।

**फसल चक्र एवं विविधीकरण:** लगातार एक ही फसल लेने से मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है और कीट-रोगों का प्रकोप बढ़ता है। यदि किसान धान-गेहूँ प्रणाली में दलहनी फसल को शामिल करते हैं, तो मृदा में नाइट्रोजन की पूर्ति होती है और उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है।बहुफसली खेती अपनाने से जोखिम कम होता है और वर्ष भर आय का स्रोत बना रहता है।

**समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन:** रासायनिक कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से लागत बढ़ती है और लाभ कम होता है। इसके स्थान पर फेरोमोन ट्रैप, प्रकाश प्रपंच, जैविक कीटनाशी एवं प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करने से कम लागत में प्रभावी नियंत्रण संभव है। इससे पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहता है।

**सूचना एवं संचार तकनीक की भूमिका:** आज मोबाइल आधारित कृषि सलाह, मौसम पूर्वानुमान एवं ड्रोन तकनीक के माध्यम से किसान सही समय पर सही निर्णय ले सकते हैं। इससे उर्वरकों, कीटनाशकों एवं जल का अनावश्यक उपयोग रुकता है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

**निष्कर्ष:** कृषि संसाधनों का कुशल प्रबंधन टिकाऊ कृषि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। मृदा स्वास्थ्य सुधार, जल संरक्षण, संतुलित पोषण, उन्नत बीज, कृषि यंत्रीकरण तथा फसल विविधीकरण को अपनाकर किसान कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। यह न केवल उनकी आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कृषि प्रणाली के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

01/2025-26

अंजनी कुमार पटेल
अंबिकेश त्रिपाठी और करन भारती
शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

# पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की सीधी बुवाई: संभावनाएं, बाधाएं एवं भविष्य की रणनीतियां

**परिचय:** धान उत्तर-पश्चिमी भारत के मैदानी क्षेत्रों की प्रमुख खाद्य फसलों में से एक है। परंपरागत रूप से इन क्षेत्रों में धान की खेती रोपाई विधि द्वारा की जाती थी। वर्तमान समय में इस विधि द्वारा भूजल स्तर में गिरावट, श्रमिकों की कमी, बढ़ती मजदूरी लागत तथा ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन जैसी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। अतः इन क्षेत्रों में ऐसी प्रणाली की आवश्यकता है, जो संसाधन संरक्षण के साथ-साथ पर्यावरण को भी अनुकूल बनाए रखे। इन क्षेत्रों में धान की सीधी बुवाई (DSR) विधि को एक प्रभावी विकल्प के रूप में अपनाया जा सकता है। इस विधि में धान की बिना रोपाई किए बीजों की सीधे मुख्य खेत में बुवाई की जाती है। मृदा एवं जल परिस्थितियों के आधार पर DSR को गीली बुवाई (पडल्ड मृदा में अंकुरित बीजों की बुवाई), जल बुवाई (खड़े पानी में बुवाई) अथवा सूखी बुवाई (अच्छी तरह तैयार खेत में बुवाई) के रूप में अपनाया जा सकता है। विगत वर्षों में इस विधि के प्रयोग से किसानों की उत्पादन लागत, जल दोहन तथा ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन प्रभावी रूप से कम हुआ है। हालांकि, इस प्रणाली में खरपतवार प्रकोप, कीट एवं रोगों की वृद्धि, कमजोर फसल स्थापना, पोषक तत्वों की असंतुलन, फसल गिरना तथा उपज स्थिरता जैसी कई समस्याएँ भी देखी जाती हैं। अतः छ्स्त्र के लाभों को अधिकतम करने हेतु इसकी बाधाओं को समझना एवं उन्नत कृषि प्रबंधन तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

**धान की सीधी बुवाई (DSR) को अपनाने की आवश्यकता-** वैश्विक स्तर पर गिरता जल स्तर बढ़ती लागत एवं श्रमिकों का पलायन एवं मृदा स्वास्थ्य संरक्षण इत्यादि विभिन्न प्रकार की समस्याओ की वजह से धान की सीधी बुवाई अति आवश्यक हो गई है।

## सीधी बुवाई धान (DSR) की प्रमुख समस्याएँ

1. **खरपतवार प्रकोप**-धान की सीधी बुवाई में खरपतवार सबसे बड़ी समस्या है। पारंपरिक रोपाई से सीधी बुवाई अपनाने पर नए प्रकार की खरपतवार प्रजातियाँ भी देखने को मिलती हैं।

2. **सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी**-रोपाई विधि से सीधी बुवाई अपनाने पर कई स्थानों पर मिट्टी में जस्ता तथा लोहे की कमी देखी गई है।

3. **जड़ सूत्रकृमि**- सीधी बुवाई में न्यूनतम या शून्य जुताई की जाती है तथा खेत लंबे समय तक जलमग्न नहीं रहता, जिससे सूत्रकृमि मिट्टी में जीवित बने रहते हैं।

4. अन्य समस्याएँ

उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त सीधी बुवाई में अन्य समस्याएँ, जैसे फसल का गिरना, जंगली धान तथा बीज अंकुरण की अनिश्चितता भी देखी जाती हैं।

## सीधी बुवाई धान (DSR) की उपज बढ़ाने हेतु प्रमुख उपाय

1. **मृदा प्रबंधन:** सीधी बुवाई धान के लिए समतल और भुरभुरी मिट्टी की आवश्यकता होती है। इसके लिए बुवाई से कम से कम 3-4 सप्ताह पूर्व लेज़र लेवलर द्वारा मिट्टी को समतल किया जाता है। साथ ही न्यूनतम जुताई या शून्य जुताई अपनाने से किसानों की लागत में भी कमी आती है तथा मिट्टी की संरचना भी सुरक्षित रहती है।

2. **उपयुक्त बुवाई का समय:** सीधी बुवाई धान के बीज बोने के लिए सबसे उपयुक्त समय मानसून के आगमन से 10-15 दिन पूर्व माना जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश की परिस्थितियों में 15-20 जून का समय उपयुक्त पाया गया है। समय पर बुवाई से फसल की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर होती है तथा खरपतवार प्रतिस्पर्धा कम होती है।

3. **उपयुक्त किस्मों का चयन**

सीधी बुवाई धान के लिए अधिक उपज देने वाली, शीघ्र पकने वाली तथा सूखा-रोधी किस्में जैसे–NDR-359, सहभगि धान (सूखा सहनशील), BPT-5204, MT-7029, मोती, स्वर्णा-सब1 (जलभराव सहनशील) एवं अराइज़ 6444 उपयुक्त पाई गई हैं।

5. **पोषक तत्व प्रबंधन:** सीधी बुवाई और रोपाई दोनों विधियों में फॉस्फोरस, पोटाश और जस्ता की मात्रा समान रहती है, जिसे बुवाई के समय दिया जाता है। नाइट्रोजन को 150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से तीन समान किस्तों में देना चाहिए तथा बासमती धान की किस्मों में 20% अधिक नाइट्रोजन देना आवश्यक है। लौह की कमी की स्थिति में 0.5% फेरस सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।

6. **खरपतवार प्रबंधन:** खरपतवार सीधी बुवाई की सबसे बड़ी समस्या है। रिपोर्टों के अनुसार इससे 20त्न से 85त्न तक पैदावार में कमी होती है। यदि खरपतवार नियंत्रण न किया जाए तो कई मामलों में पूरी फसल नष्ट भी हो सकती है। अतः समन्वित खरपतवार प्रबंधन आवश्यक है। इसमें समय पर बुवाई, उपयुक्त बीज दर, निराई एवं आवश्यकता अनुसार चयनित शाकनाशियों का प्रयोग शामिल होना चाहिए।

**निष्कर्ष:** सीधी बुवाई, पारंपरिक रोपाई की अपेक्षा सस्ती, टिकाऊ, जल एवं ऊर्जा संरक्षणकारी तथा जलवायु-अनुकूल प्रणाली है। कम जल एवं श्रम आवश्यकता, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी तथा आर्थिक लाभ इसे संसाधन-संकटग्रस्त क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त बनाते हैं। यद्यपि इस विधि को खरपतवार, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी तथा जड़ सूत्रकृमि की समस्या का सामना करना पड़ता है, परंतु उन्नत कृषि तकनीकों, उपयुक्त किस्मों तथा प्रभावी पोषक तत्व और खरपतवार प्रबंधन के द्वारा इस विधि से न केवल धान की उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सकती है। बढ़ते जलवायु परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में तथा संसाधनों की कमी के बावजूद, धान की सीधी बुवाई भारत की खाद्य सुरक्षा बनाए रखने हेतु एक आशाजनक तकनीक के रूप में उभर रही है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

आशीष रजक सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. रवि प्रकाश गुप्ता सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

# जैविक खेती और किसानों का भविष्य

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां अधिकांश जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए खेती पर निर्भर है। आधुनिक कृषि में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों का अत्यधिक उपयोग होने लगा है, जिससे भूमि की उर्वरता घट रही है और पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। ऐसे में जैविक खेती (Organic Farming) किसानों के लिए एक बेहतर और टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रही है।

## जैविक खेती का अर्थ

जैविक खेती वह कृषि प्रणाली है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और हार्मोन का प्रयोग नहीं किया जाता, बल्कि गोबर खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, जैव उर्वरक, जैव कीटनाशक आदि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना और पर्यावरण संतुलन को सुरक्षित रखना है।

## जैविक खेती के लाभ

### मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि

जैविक पदार्थ मिट्टी की संरचना और सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ाते हैं।

### पर्यावरण संरक्षण

जल, मिट्टी और वायु प्रदूषण कम होता है।

### स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित

जैविक उत्पाद रसायन-मुक्त होते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं।

### लागत में कमी

स्थानीय संसाधनों के उपयोग से उत्पादन लागत कम हो सकती है।

### बाजार में अधिक कीमत

जैविक उत्पादों की मांग बढ़ रही है, जिससे किसानों को बेहतर मूल्य मिलता है।

## किसानों के भविष्य में जैविक खेती की भूमिका

जैविक खेती किसानों के भविष्य को सुरक्षित और स्थिर बना सकती है। यह खेती किसानों को प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर बनाती है, जिससे वे महंगे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर कम निर्भर रहते हैं। इसके साथ ही, जैविक उत्पादों के लिए देश-विदेश में बाजार तेजी से बढ़ रहा है, जिससे किसानों की आय बढ़ सकती है। सरकार भी जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ और सब्सिडी प्रदान कर रही है, जैसे परम्परागत कृषि विकास योजना (PKVY) और राष्ट्रीय जैविक खेती मिशन।

## चुनौतियाँ

**हालाँकि जैविक खेती के सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे-**

प्रारंभिक वर्षों में उत्पादन में कमी
प्रमाणन (Certification) की जटिल प्रक्रिया
जागरूकता और तकनीकी ज्ञान की कमी
बाजार तक पहुँच की समस्या,

## निष्कर्ष

जैविक खेती न केवल पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, बल्कि यह किसानों के लिए एक उज्ज्वल भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त करती है। यदि किसानों को उचित प्रशिक्षण, सरकारी सहायता और बाजार सुविधा मिले, तो जैविक खेती भारतीय कृषि की रीढ़ बन सकती है और किसानों की आय को दोगुना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

12/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका
उत्तर प्रदेश

# सतत कृषि में जैव उर्वरकों की भूमिका एवं लाभ

**अनुराग सिंह** मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

**प्रशांत श्रीवास्तव, यश कुमार गुप्ता**
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौ. वि.वि. कानपुर

**आशीष गौतम** भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान कानपुर (उ.प्र.)

**प्रस्तावना :** आज के समय में बेहतर कृषि उत्पादन की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है, क्योंकि इसका सीधा संबंध हमारे भोजन और देश की अर्थव्यवस्था से है। कई विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर करती है। वैश्विक स्तर पर भी कृषि का योगदान महत्वपूर्ण है। अच्छी उपज के लिए मिट्टी की उर्वरता, जल उपलब्धता, श्रम, जलवायु और विशेष रूप से उर्वरकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

जैव उर्वरक (Biofertilizer) ऐसे प्राकृतिक उर्वरक हैं जिनमें जीवित सूक्ष्मजीव (बैक्टीरिया, फफूंद, शैवाल आदि) होते हैं। ये सूक्ष्मजीव मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं और पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है, जल प्रदूषण बढ़ रहा है और स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ रहे हैं। ऐसे में जैव उर्वरक एक पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ विकल्प हैं। जैव उर्वरक वे उत्पाद हैं जिनमें जीवित सूक्ष्मजीव होते हैं, जो पौधों की जड़ों के आसपास या अंदर रहकर पोषक तत्वों को घुलनशील बनाते हैं और पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

**जैव उर्वरक के महत्व**

**पोषक तत्वों की उपलब्धता:** ये वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं और मिट्टी में अघुलनशील फास्फोरस व पोटेशियम को घुलनशील रूप में बदलकर पौधों को पोषण प्रदान करते हैं।

**मिट्टी का स्वास्थ्य:** ये मिट्टी की बनावट, जल धारण क्षमता और जैव विविधता में सुधार करते हैं, जिससे मिट्टी जीवित और अधिक आत्मनिर्भर बन जाती है।

**पौधों की वृद्धि:** ये हार्मोन और विकास-वर्धक पदार्थ उत्पन्न करते हैं, जो जड़ों के विकास और पौधों की समग्र वृद्धि (जैसे कवक द्वारा जड़ नेटवर्क बढ़ाना) में सहायक होते हैं।

**बीमारी नियंत्रण:** ये फसलों में मिट्टी जनित बीमारियों को कम करने और सूखे जैसी विपरीत परिस्थितियों में पौधों की सहनशीलता को बढ़ाने में मदद करते हैं।

**जैविक उर्वरकों के प्रकार:** राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पाइरिलम, फास्फोटिका, नील हरित शैवाल

**राइजोबियम :** यह एक नमीधारक पदार्थ एवं जीवाणु का मिश्रण है, जिसके प्रत्येक एक ग्राम भाग में 10 करोड़ से अधिक राइजोबियम जीवाणु होते हैं। यह जैव उर्वरक केवल दलहनी फसलों में ही प्रयोग किया जा सकता है तथा यह फसल विशिष्ट होती है, अर्थात अलग-अलग फसल के लिए अलग-अलग प्रकार के राइजोबियम जैव उर्वरक का प्रयोग होता है। राइजोबियम जैव उर्वरक से बीज उपचार करने पर ये जीवाणु खाद से बीज पर चिपक जाते हैं। बीज अंकुरण पर ये जीवाणु जड़ मूलरोम द्वारा पौधों की जड़ों में प्रवेश कर, जड़ों पर ग्रन्थियों का निर्माण करते हैं। ये ग्रन्थियां नत्रजन स्थिरीकरण इकाइयां तथा पौधों की बढ़वार इनकी संख्या पर निर्भर करती है। अधिक ग्रन्थियों के होने पर पैदावार भी अधिक होती है।

अलग-अलग फसलों हेतु राइजोबियम जैव उर्वरक के अलग-अलग पैकेट उपलब्ध होते हैं तथा निम्न् फसलों में प्रयोग किये जाते हैं।

* मूंग, उर्द, अरहर, चना, मटर, मसूर आदि। * तिलहनी मूंगफली, सोयाबीन। * अन्यः रिजका, बरसीम एवं सभी प्रकार की बीन्स।

**बायो एनपीके:** बायो एनपीके तीन अलग-अलग प्रकार के बैक्टीरिया का मिश्रण हैः नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम। एनपीके बायो फर्टिलाइजर नाइट्रोजन के अवशोषण को बढ़ाता है और साथ ही पौधों में वृद्धि हार्मोन और विटामिन भी उत्पन्न करता है। ये फसल के अंकुरण, शीघ्र अंकुरण और जड़ विकास में सहायक होते हैं। एनपीके जैव उर्वरक मिट्टी से पौधे को सूक्ष्म पोषक तत्वों (जैसे मैंगनीज, मैग्नीशियम, आयरन, मोलिब्डेनम, बोरॉन, जिंक और कॉपर) की उपलब्धता को बढ़ाता है, जिसके परिणामस्वरूप जड़ों का विकास तेजी से होता है, पोषक तत्वों का अवशोषण बढ़ता है और रोगों/सूखे के प्रति प्रतिरोधक क्षमता/सहनशीलता बढ़ती है। बायो एनपीके एनपीके उर्वरक अघुलनशील पोटेशियम को घुलनशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होते हैं और नाइट्रोजन, फास्फोरस, कैल्शियम आदि जैसे अन्य तत्वों के अवशोषण में सहायता मिलती है। एनपीके जैव उर्वरक उपज और गुणवत्ता को 20 से 30% तक बढ़ाते हैं। एसिटोबैक्टर (जैव उर्वरक) एसिटोबैक्टर एक नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु (जैविक उर्वरक) है और इसका व्यापक रूप से चीनी उत्पादक फसलों में उपयोग किया जाता है। एसिटोबैक्टर फसल के ऊतकों के भीतर कॉलोनियां बनाता है और फसलों को पर्याप्त नाइट्रोजन प्रदान करता है। यह वृद्धि हार्मोन भी उत्पन्न करता है जो जड़ों और तनों की वृद्धि में सहायक होते हैं।

**एसिटोबैक्टर के लाभ:** इससे मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है। प्रकृति के अनुकूल और रसायन मुक्त समाधान। जड़ों के फैलाव और जड़ों के घनत्व और शाखाओं को प्रोत्साहित करें, जिसके परिणामस्वरूप खनिज और पानी का अवशोषण और पौधे की वृद्धि में वृद्धि होती है।

**एज़ोस्पिरिलम:** एज़ोस्पिरिलम एक प्रकार का नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला जैव-संक्रमणकारी पदार्थ है और इसका उपयोग जैव उर्वरक के रूप में किया जाता है। एज़ोस्पिरिलम बड़ी संख्या में जैविक रूप से सक्रिय पदार्थ जैसे विटामिन, निकोटिनिक अम्ल, इंडोल एसिटिक अम्ल और जिबरेलिन भी उत्पन्न करता है।

**एज़ोस्पिरिलम के लाभ:** पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करें नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक अंकुरण को बेहतर बनाने में मदद करता है जड़ों के बेहतर विकास में सहायक सहजीवी संबंध माइकोराइजा एक प्रकार का कवक है जिसका उपयोग फसलों में जैविक उर्वरक के रूप में किया जाता है। माइकोराइजा कवक पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध स्थापित करता है जिससे मिट्टी से फास्फोरस, पानी और खनिजों का अवशोषण बढ़ जाता है। यह जड़ों को रोग उत्पन्न करने वाले जीवों से भी बचाता है। माइकोराइजा मिट्टी की मूल उर्वरता को भी बहाल करता है।

**माइकोराइजा के लाभ:** मिट्टी से पोषक तत्वों के अवशोषण में सुधार करता है। पौधों की वृद्धि में सुधार करता है। तनाव प्रबंधन में सुधार करता है। यह जड़ों के स्वस्थ और सघन विकास में सहायक होता है। पीएसबी का व्यापक रूप से पौधों की वृद्धि और पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ाने के लिए जैव उर्वरक के रूप में उपयोग किया जाता है। मृदा सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थों के अपघटन की प्रक्रिया और नाइट्रोजन (एन), फॉस्फोरस (पी), पोटेशियम (के) और अन्य पोषक तत्वों जैसे पौधों के पोषक तत्वों की उपलब्धता को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

**फॉस्फेट को घोलने वाले जीवाणु जैव उर्वरक फॉस्फेट को घोलने वाले जीवाणुओं के लाभ:** मिट्टी में P2O5 के अलावा Mn, Mg, Fe, Mo, B, Zn और Cu जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाएँ। पानी और पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए जड़ों की तीव्र वृद्धि को प्रोत्साहित करें। मैलिक, सक्सिनिक, फ्यूमरिक, साइट्रिक, टार्टरिक एसिड और एसिटिक एसिड जैसे कार्बनिक अम्ल उत्पन्न करें जो P2O5 की प्रक्रिया को तेज करते हैं और परिपक्वता और उपज को बढ़ाते हैं। तेजी से कोशिका वृद्धि के कारण पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता और सूखा सहनशीलता बढ़ती है। ऐसे पदार्थ जो वृद्धि को बढ़ावा देते हैं, जैसे कि अन्य लाभकारी सूक्ष्मजीवों के साथ पौधे के अनुकूल होना।

फॉस्फेटयुक्त उर्वरक की आवश्यकता को 25-30% तक कम करें। पोटेशियम को घोलने वाले जीवाणु पोटेशियम में घुलनशील जीवाणु एक जैव उर्वरक है जो अमोनियम आयनों द्वारा उत्पादित मोनो एसिड और प्रोटीन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिन्हें बाद में जड़ों द्वारा मिट्टी से अवशोषित कर लिया जाता है। यह पौधों को अन्य तत्वों को ग्रहण करने में भी मदद करता है जो कई एंजाइमों को सक्रिय करते हैं।

**पोटेशियम को घोलने वाले जीवाणुओं (पीएसबी) के लाभ:** यह सभी प्रकार की मिट्टी में पोटाश की मात्रा बढ़ाने में मदद करता है और फसल की पैदावार को 15-20% तक बढ़ा देता है। विभिन्न मौसम स्थितियों के प्रति फसलों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है इससे फलों और अनाजों का आकार और फसलों की गुणवत्ता में सुधार होता है। यह प्रकाश संश्लेषण में भी सहायक होता है।

**जैव उर्वरकों की कार्यप्रणाली**

**नाइट्रोजन स्थिरीकरण:** सूक्ष्मजीव हवा में मौजूद नाइट्रोजन को अमोनिया में बदलकर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, और नील-हरित शैवाल (BGA) इस प्रक्रिया में अहम भूमिका निभाते हैं।

**फास्फोरस को घुलनशील बनाना:** मृदा में मौजूद अघुलनशील फास्फोरस को फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया (PSB) अपने एसिड उत्पादन के द्वारा घुलनशील रूप में बदलते हैं, जिसे पौधे आसानी से अवशोषित कर लेते हैं।

**पौधों के विकास को बढ़ावा :** ये सूक्ष्मजीव फाइटोहोर्मोन (जैसे- ऑक्सिन, साइटोकिनिन) उत्पन्न करते हैं, जो जड़ों के विकास को बढ़ाते हैं, जिससे पौधे की बढ़वार अच्छी होती है।

**पोटेशियम और अन्य पोषक तत्व जुटाना:** कुछ सूक्ष्मजीव पोटेशियम को घोलते हैं और मृदा में मौजूद पोषक तत्वों को पौधों की जड़ों के आसपास (राइजोस्फीयर) लाकर उपलब्ध कराते हैं।

**मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार:** ये मिट्टी के भौतिक और जैविक गुणों में सुधार कर, हानिकारक पदार्थों को नष्ट करते हैं और फसलों को रोगों से बचाते हैं

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



# तरबूज की वैज्ञानिक खेती

शशि शेखर मिश्रा (शोध छात्र)
आस्तिक झा (सह-प्राध्यापक)
राहुल यादव (शोध छात्र)
आकाश कुमार (शोध छात्र) सब्ज़ी विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)

ग्रीष्म ऋतु के दौरान तरबूज अपनी मिठास और ताजगी के कारण एक प्रमुख फल माना जाता है। भारत की भौगोलिक विविधता में इसकी खेती हिमालय की तलहटी से लेकर दक्षिण के पठारों तक व्यापक स्तर पर की जाती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से तरबूज अत्यंत गुणकारी है; इसका सेवन न केवल शरीर को लू और भीषण गर्मी से बचाता है, बल्कि इसके रस में नमक मिलाकर पीने से मूत्र मार्ग से संबंधित रोगों में भी औषधीय लाभ मिलता है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश, राजस्थान और कर्नाटक जैसे राज्य इसके मुख्य उत्पादक केंद्रों के रूप में उभरे हैं।

**जलवायु एवं तापमान की आवश्यकता:** तरबूज की सफल पैदावार हेतु गर्म और औसत आर्द्रता वाली जलवायु को सबसे उपयुक्त माना जाता है। इस फसल के विकास में तापमान एक निर्णायक कारक है; विशेष रूप से बीजों के उचित अंकुरण और पौधों की तीव्र वानस्पतिक वृद्धि हेतु 25° C का तापक्रम आदर्श पाया गया है। अनुकूल मौसम में पौधों का फैलाव तेजी से होता है, जिससे फलों की गुणवत्ता और मिठास में वृद्धि होती है।

**मृदा चयन एवं खेत की तैयारी:** तरबूज की खेती वैसे तो विभिन्न प्रकार की भूमियों में की जा सकती है, किंतु रेतीली या बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोत्तम सिद्ध होती है। यह एक ऐसी विशिष्ट फसल है जो मृदा की अम्लता के प्रति सहनशील है और 5.5 से 7.0 पीएच मान वाली भूमि में उत्कृष्ट परिणाम देती है, यहाँ तक कि इसे 5.0 पीएच मान पर भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के उपरांत, बाद की जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करके मिट्टी को पूरी तरह भुरभुरा बना लेना चाहिए। सिंचाई के दौरान पानी का जमाव न हो और जल का वितरण समान रहे, इसके लिए पाटा चलाकर खेत को समतल करना अनिवार्य है। विशेष रूप से नदियों के तटीय क्षेत्रों में, जहाँ बलुई मिट्टी की अधिकता होती है, वहाँ पानी की उपलब्धता के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति से नालियाँ और थाले तैयार किए जाते हैं। इन थालों को सड़ी हुई गोबर की खाद और उपजाऊ मिट्टी के संतुलित मिश्रण से भरकर बुवाई के लिए तैयार किया जाता है, जिससे पौधों को प्रारंभिक अवस्था में भरपूर पोषण मिल सके।

## तरबूज की प्रमुख उन्नतशील किस्में

**काशी मोहिनी:** इस किस्म के फल आकर्षक अंडाकार होते हैं, जिनका छिलका हरा और उस पर गहरे हरे रंग की स्पष्ट धारियाँ दिखाई देती हैं। इसका गूदा गहरे लाल रंग का और अत्यंत मीठा होता है, जिसमें कुल विलेय शर्करा की मात्रा 13-15% तक पाई जाती है। फल का औसत वजन 2.5 से 3.5 किलोग्राम के बीच रहता है और इसके बीज छोटे से मध्यम आकार के काले रंग के होते हैं। पैदावार की दृष्टि से यह काफी उन्नत है, जो प्रति हे. 55-60 टन तक उत्पादन देने में सक्षम है।

**सुगर बेबी:** यह एक शीघ्र पकने वाली बेहद लोकप्रिय किस्म है, जिसे तैयार होने में लगभग 85 दिन का समय लगता है। इसकी बेलें औसत लंबाई की होती हैं और फल गोल आकार के होते हैं, जिनका ऊपरी छिलका गहरा हरा और उस पर धुंधली धारियाँ होती हैं। फल का वजन 2-5 किलोग्राम तक होता है और इसका गूदा गहरा लाल व 11-13 प्रतिशत मिठास वाला होता है। इसके छोटे भूरे बीजों के सिरे काले होते हैं और इसकी औसत पैदावार 40-45 टन प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

**अर्का मानिक:** व्यावसायिक खेती के लिए यह एक उत्कृष्ट किस्म है क्योंकि इसमें भंडारण और लंबी दूरी के परिवहन को सहने की अच्छी क्षमता होती है। इसके फल गोल-अंडाकार होते हैं जिनका छिलका हरा और धारियाँ गहरे हरे रंग की होती हैं, जबकि गूदा गुलाबी रंग का होता है। फल का औसत वजन 6 किलोग्राम तक होता है और इसमें 10-12% मिठास पाई जाती है। यह किस्म चूर्णिल आसिता, मृदुरोमिल आसिता और एन्थेक्नोज जैसे प्रमुख रोगों के प्रति प्रतिरोधी है तथा 110-115 दिनों में 50 टन प्रति हे. तक उपज देती है।

**दुर्गापुरा केसर:** यह एक उन्नत किस्म है, जिसके फल मध्यम से बड़े आकार के होते हैं और आकर्षक दिखाई देते हैं। फलों का छिलका हल्के हरे रंग का होता है, जिस पर गहरे रंग की धारियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। इसका गूदा गहरे लाल रंग का, रसदार तथा अत्यंत मीठा होता है, जिसमें कुल विलेय शर्करा की मात्रा लगभग 12-14 प्रतिशत तक पाई जाती है। फल का औसत वजन 3 से 5 किलोग्राम तक होता है। यह किस्म अच्छी उपज देने वाली है और उपयुक्त प्रबंधन के साथ 45-50 टन प्रति हे. तक उत्पादन देने में सक्षम है।

**काशी पीताम्बर:** यह किस्म अपने विशिष्ट रंग-रूप के कारण पहचानी जाती है। इसके फल गोल से अंडाकार होते हैं, जिनका बाहरी छिलका पीले रंग का होता है और अंदरूनी गूदा गुलाबी होता है। इसके फलों का औसत वजन 3.5 से 4.5 किलोग्राम के आसपास रहता है। यदि उचित प्रबंधन किया जाए, तो इस किस्म से प्रति हे.40-45 टन की औसत उपज सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

**अर्का श्यामा:** कम समय में अधिक लाभ लेने के लिए अर्का श्यामा एक बेहतरीन चुनाव है, जिसके फल बुआई के मात्र 65-70 दिनों बाद ही पककर तैयार हो जाते हैं। इस किस्म के फल अंडाकार होते हैं और इनका छिलका बहुत गहरा हरा (लगभग काला) होता है। इसका गूदा गहरे लाल रंग का होता है जिसकी मिठास 12 डिग्री ब्रिक्स तक मापी गई है। यह किस्म उन किसानों के लिए उपयुक्त है जो जल्दी फसल लेकर बाजार में पहले पहुँचना चाहते हैं।

**अर्का मधुरा:** यह किस्म अपने नाम के अनुरूप अत्यधिक मिठास के लिए जानी जाती है। इसके फल गोल से अंडाकार आकार के होते हैं और छिलका हल्के हरे रंग का होता है, जिस पर गहरी हरी धारियाँ होती हैं। गूदा गहरा लाल, कोमल तथा अधिक रसयुक्त होता है, जिसमें 12-13% तक मिठास पाई जाती है। फलों का औसत वजन 4 से 6 किलोग्राम तक होता है। यह किस्म रोगों के प्रति सहनशील मानी जाती है तथा लगभग 50-55 टन प्रति हे. तक उपज देने की क्षमता रखती है।

**पूसा बेदाना:** यह एक विशेष किस्म है, जिसमें बीज बहुत कम या नगण्य होते हैं, जिससे इसकी बाजार में अच्छी मांग रहती है। इसके फल मध्यम आकार के, गोल या हल्के अंडाकार होते हैं। छिलका हरे रंग का होता है, जिस पर हल्की धारियाँ होती हैं। इसका गूदा गहरा लाल, मुलायम और अत्यंत मीठा होता है, जिसमें 11-13% तक शर्करा पाई जाती है। फल का औसत वजन 3 से 4 किलोग्राम तक रहता है। यह किस्म उपयुक्त परिस्थितियों में 40-45 टन प्रति हे. तक उत्पादन दे सकती है और उपभोक्ताओं के बीच अपनी बेदाना विशेषता के कारण विशेष रूप से लोकप्रिय है।

**खाद एवं उर्वरक प्रबंधन:** तरबूज की भरपूर पैदावार और फलों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए संतुलित पोषण प्रबंधन अनिवार्य है। प्रति हेक्टेयर की दर से 80 किग्रा नत्रजन, 50 किग्रा फास्फोरस और 60 किग्रा पोटाश का प्रयोग संस्तुत किया गया है। उर्वरकों के प्रयोग की विधि पर विशेष ध्यान देना चाहिए; इसके तहत फास्फोरस और पोटाश की संपूर्ण मात्रा के साथ नत्रजन की आधी मात्रा को बुवाई से पूर्व खेत की तैयारी के समय, यानी नालियाँ या थाले बनाते समय ही मिट्टी में मिला देना चाहिए। नत्रजन की शेष आधी मात्रा को दो समान किस्तों में विभाजित कर खड़ी फसल में प्रयोग किया जाता है। इसकी पहली किस्त पौधों की प्रारंभिक गुड़ाई के समय सीधे जड़ों के पास देनी चाहिए, जबकि दूसरी किस्त उसके लगभग 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव विधि से देना लाभदायक रहता है। इस तरह चरणों में पोषण देने से पौधों का वानस्पतिक विकास तेजी से होता है और फल लगने की प्रक्रिया सुदृढ़ होती है।

**बुवाई का उपयुक्त समय:** तरबूज की बुवाई का समय क्षेत्रीय जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उत्तर भारत के मैदानी इलाकों में इसकी बुवाई के लिए 1 से 15 फरवरी के बीच का समय सबसे अनुकूल माना जाता है। हालाँकि, नदियों के तटीय क्षेत्रों (दियारा खेती) में किसान नवंबर से जनवरी के मध्य ही बुवाई संपन्न कर लेते हैं। भारत के अन्य हिस्सों की बात करें तो दक्षिण-पश्चिमी राजस्थान में मतीरा किस्म की बुवाई मुख्य रूप से जुलाई में की जाती है, जबकि दक्षिण भारत के राज्यों में बुवाई का चक्र अगस्त से लेकर जनवरी तक निरंतर चलता रहता है।

**बीज की मात्रा एवं शोधन:** वैज्ञानिक खेती के मानकों के अनुसार, एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में बुवाई हेतु 1.5 से 2.0 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है। बीजों की इस मात्रा का चयन करते समय उनकी अंकुरण क्षमता और शुद्धता का ध्यान रखना अनिवार्य है ताकि खेत में पौधों की संख्या संतुलित बनी रहे।

**बुवाई की वैज्ञानिक विधियां:** खेतों में तरबूज की बुवाई मेड़ों पर करना सबसे प्रभावी तरीका है। इसके लिए 2.5 से 3.0 मीटर की दूरी पर 40-50 सेमी चौड़ी नालियाँ बनाई जाती हैं और इन नालियों के दोनों किनारों पर लगभग 60 सेमी के अंतराल पर बीज बोए जाते हैं। यह दूरी मिट्टी की उर्वरता और चुनी गई किस्म के फैलाव के आधार पर कम या अधिक की जा सकती है। नदियों के किनारे की जाने वाली खेती के लिए गड्ढा पद्धति अपनाई जाती है। इसमें 60×60×60 सेंमी आकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं, जिन्हें मिट्टी, सड़ी हुई गोबर की खाद और बालू के 1:1:1 के अनुपात वाले मिश्रण से भर दिया जाता है। इसके पश्चात, प्रत्येक तैयार थाले में दो बीज गहराई पर लगाए जाते हैं, जिससे पौधों को पर्याप्त पोषण और जड़ विस्तार के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है।

**सिंचाई प्रबंधन:** तरबूज की फसल में जल प्रबंधन खेती के स्थान और मृदा की प्रकृति पर निर्भर करता है। यदि तरबूज की खेती नदियों के कछारों या तटीय रेतीले क्षेत्रों में की जा रही है, तो सामान्यतः अलग से सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है; इसका मुख्य कारण यह है कि पौधों की जड़ें बालू की निचली सतहों में उपलब्ध नमी को स्वयं शोषित कर लेती हैं। इसके विपरीत, मैदानी भागों में मिट्टी की नमी के आधार पर 7 से 10 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई करना आवश्यक होता है। एक महत्वपूर्ण सावधानी यह है कि जब फल अपने पूर्ण आकार में विकसित हो जाएं, तब सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। फल पकते समय पानी की अधिकता से उनकी मिठास कम हो जाती है और फलों के फटने की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

# सतत कृषि में पादप प्रजनन और आनुवंशिकी की भूमिका

सुरेश हरितवाल (अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन) कृषि विज्ञान संस्थान बुंदेलखंड वि.वि. झांसी

युवराज कुमावत यंग प्लांट ब्रीडर, मास्टर्स इन जेनेटिक्स ऐंड प्लांट ब्रीडिंग, जोबनेर, जयपुर, राजस्थान

## परिचय

प्राचीन काल में मनुष्य ने जंगली पौधों को अपनी आवश्यकता के अनुरूप चयन करते हुए उन्हें उपयोगी बनाया। उसके पश्चात, विभिन्न वैज्ञानिकों ने पादप प्रजनन की विधियों बताई जैसे निल्सन एहिल एवं उनके सहयोगियों ने 1900 के आस-पास एकल पादप वरण विधि का विकास किया। जोहन्सन ने 1903 में शुद्ध वंशक्रम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। मेंडेल ने 1856 में वंशागति के नियमों का प्रतिपादन किया। इन नियमों की 1900 में पुन खोज हुई। इसके बाद जीन अन्योन्यक्रिया, सहलग्नता आदि की खोज हुई तथा यह ज्ञात हुआ कि जीन गुणसूत्रों में स्थित होते हैं। इन पादप प्रजनन के सिद्धान्त एवं विधियों का उपयोग करते हुए हमारे देश में विभिन्न फसलों में अविस्मरणीय कार्य हुआ। उदाहरणत गेहूं की बोनी किरम, गन्ने का नोबलीकरण, संकर मिलेट, कपास की सकर किरम आदि।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में खाद्य उत्पादन कई गुणा बढ़ गया और आज हम अनेक देशों को लाखो टन अनाज निर्यात कर रहे हैं। लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की आपूर्ति करन हेतु कृषि योग्य भूमि को जनसंख्या के अनुपात में नहीं बढ़ाया जा सकता है। अत इसके लिए अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मों के बीजों की आवश्यकता होती है। पादप प्रजनन द्वारा उन्नत किस्मों के बीजी का उत्पादन किया जा सकता है।

## परिभाषा

पादप प्रजनन यह कला तथा विज्ञान है, जिसके द्वारा पौधा को अधिक आर्थिक महत्व के बनाने के उद्देश्य से उनकी आनुवांशिकता में सुधार किया जाता है। फसलों के जीनप्रारूप में परिवर्तन करके उनको मानव के लिए उपयोगी बनाने की क्रिया को पादप प्रजनन कहते हैं। पादप प्रजनन में हम उन सिद्धान्तों एव विधियों का अध्ययन करते हैं, जिनके द्वारा फसलों में उपयोगी परिवर्तन किये जाते हैं।

## पादप प्रजनन के उद्देश्य

**अधिक उपज:** विभिन्न फसलों की स्थानीय कृषिगत किस्मों की तुलना में अधिक उपज देने वाली किस्मों का निर्माण करना पादप प्रजनन का मुख्य उद्देश्य है. उन्नत किस्मों का बीज बुवाई के लिये उपयोग करने मात्र से उपज में 20-25 प्रतिशत तक बढ़ोतरी सभव है।

**उत्पाद के गुणों में सुधार करना:** अधिक उपज के साथ-साथ, उत्पाद अन्य गुणों में मी उत्तम

होना चाहिए। उत्पाद उपभोक्ताओं की आशाओं के अनुरूप हाने पर किसान को उसके उत्पाद के लिए अधिक आर्थिक लाभ मिलता है। उदाहरणार्थ मीठी मक्का कपास में लम्बा तथा शक्तिशाली रेशा फलों में आकार एवं स्वाद दालों में प्रोटीन की मात्रा तिलहनों में तेल की मात्रा आदि।

**कीट एवं रोग प्रतिरोधी किस्मों का विकास:** रोगों एक कोटी से फसलों की हानि रोकने के लिए प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। प्रतिरोधी किस्मों को जगाने से उत्पादन अधिक एवं स्थिर होता है।

**अधिक दक्षता बाली किस्मों का विकास:** नई किस्मों द्वारा खाद्य उर्वरकों तथा सिंचाई आदि का पर्याप्त उपयोग उत्पादन क्षमता बढ़ाने में होना चाहिए।

**शीघ्र पकना:** फसलों में जल्दी पकने वाली किस्में अधिक उपयोगी होती हैं। धान की जल्दी पकने वाली किस्मों के कारण ही, धान-गेहूँ फसल चक्र संभव हो सका है।

**समकाल पकना:** ऐसी फसलें जिनमें एक साथ फसल नही पकने से सम्पूर्ण फसल की कटाई एक बार में नहीं की जा सकती इसलिए कुछ फसलें जैसे मूंग, उड़द आदि में एक साथ पकने वाली किस्मों का विकास अत्यन्त आवश्यक है।

**प्रकाश असंवेदिता:** किसी फसल को नए एवं विभिन्न जलवायु वाले क्षेत्रों में उगाने के लिए प्रकाश असंवेदित किस्मों का विकास आवश्यक होता है।

**प्रसुप्ति:** कुछ फसलें जैसे बाजरा. ज्वार, जो, गेहूं आदि में प्रसुप्ति अवस्था नहीं होती अतः पकने के समय बरसात होने पर उनके बीज बाली में ही अंकुरित हो जाते हैं। ऐसी फसलों में थोड़ी प्रसुप्ता वाली किस्मों का विकास महत्त्वपूर्ण है।

**नई ऋतुओं के लिए किस्में:** कुछ फसलो को वर्तमान नए मौसम में उगाया जा रहा है जैसे मक्का को खरीफ, रबी तथा जायद में भी उगाया जा रहा है। नए मौसम में अधिक उपज देने वाली किस्मों का विकास एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

**सूखा एवं लवण रोधिता:** देश की अधिकाश (लगभग 70 प्रतिशत) खेती असिंचित है और अधिकांश भूमि में लवणा की अधिकता है अतः इन क्षेत्रों के लिए सूखा एवं लवण रोधी किस्मों का विकास आवश्यक है।

**अविषालु पदार्थो से मुक्ति:** कई फसलों में कुछ अविषालु पदार्थ होते हैं. उदाहरणार्थ रारसों के तेल में मौजूद ईरूरिक अम्ल मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। ऐसी फसलों की उन्नत किस्सा को इन पदार्थो से मुक्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

**अविसरण:** विसरित न होने वाली किस्मों का विकास मूंग, उड़द, सरसों जैसी फसलों में काफी उपयोगी होगा।

## निष्कर्ष

पहली हरित क्रांति ने हमें खाद्य सुरक्षा जैसा एक शक्तिशाली साधन दिया। दूसरी क्रांति को इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण साधन, यानी सतत विकास प्रदान करना होगा। अब हम जानते हैं कि दुनिया को भोजन उपलब्ध कराना केवल अधिक उत्पादन करने तक सीमित नहीं है। यह उन फसलों को उगाने के बारे में है जो धरती की रक्षा करें, लोगों का पोषण करें और भविष्य को सुरक्षित करें। पौध प्रजनन और आनुवंशिकी एक स्पष्ट मार्ग प्रशस्त करते हैं। जलवायु परिवर्तन के अनुकूल फसलों, पोषक तत्वों से भरपूर किस्मों और उन्नत प्रजनन उपकरणों की मदद से हम पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना बढ़ती खाद्य मांगों को पूरा कर सकते हैं। यह दृष्टिकोण कृषि को नए सिरे से स्थापित करने के लिए विज्ञान, प्रौद्योगिकी और पारंपरिक ज्ञान का संयोजन करता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



# उर्वरकों का असंतुलित उपयोग भारतीय कृषि, पर्यावरण तथा मानव जीवन पर इसके दीर्घकालिक प्रभाव एवं नियंत्रण

**सुमित, अनूप कुमार मौर्या** रानी लक्ष्मीबाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय झांसी-284003 (उ.प्र.)

**आँचल कुमारी** गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पंतनगर- 263145, उत्तराखंड

**देवराज सिंह दोहरे** राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान करनाल -132001, हरियाणा

**परिचयः** भारत उर्वरक उद्योग इस्पात के बाद दूसरा सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है और हरित क्रांति (1960 के दशक) के बाद उर्वरक खपत में तीव्र वृद्धि हुई है। 1970-71 में 2.26 मिलियन टन से बढ़कर 2024-25 में कुल उर्वरक खपत लगभग 70.70 मिलियन टन तक पहुच चुका है, जबकि वर्तमान मे खाद्यान्न उत्पादन 357 मिलियन टन तक पहुँचा। यद्यपि भारत कुल उर्वरक खपत में विश्व में दूसरे स्थान पर है देश में उर्वरक उपयोग में क्षेत्रीय असमानताएँ स्पष्ट हैं जैसे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी यूपी जैसे राज्यों में उर्वरक खपत अधिक है, अधिक मात्रा मे नाइट्रोजन उर्वरक के उपयोग के कारण उर्वरक उपयोग दक्षता में निरंतर गिरावट देखी जा रही है भारत में वर्ष 2023-24 में यूरिया की खपत 35.8 मिलियन टन के रिकॉर्ड स्तर पर पहुँच गई, जो 2013-14 की तुलना में 16.9% अधिक थी, एकल-पोषक नाइट्रोजन उर्वरक होने के बावजूद यूरिया को अत्यधिक सब्सिडी मिलने से फॉस्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों की तुलना में काफी सस्ता हो जाता है, जिससे यूरिया के उपयोग मे बढ़ावा मिलता है। इसके साथ ही, पोटाश उर्वरकों की बढ़ती कीमत किसानों के लिये बाधक बनती है, परिणामस्वरूप भारतीय मृदाओं में पोटेशियम की व्यापक कमी देखी जा रही है। ग्रामीण और दूरदराज़ क्षेत्रों में मृदा परीक्षण अवसंरचना की कमी, परीक्षण परिणामों की व्याख्या हेतु प्रशिक्षित मानव संसाधन का अभाव तथा किसानों में मृदा परीक्षण और फसल-विशिष्ट पोषण आवश्यकताओं के प्रति सीमित जागरूकता में बाधित करती है जिसके परिणाम स्वरूप सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त, संतुलित उर्वरक उपयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से लागू पोषक तत्व-आधारित सब्सिडी (NBS) योजना भी अपेक्षित सफलता नहीं पा सकी, क्योंकि इसमें यूरिया के मूल्य निर्धारण को शामिल नहीं किया गया, जिसके चलते यूरिया की खपत में निरंतर वृद्धि होती रही।

**2.उर्वरक उपयोग संबंधी किसानों की सोच और निर्णय प्रक्रियाः** भारत मे नाइट्रोजन और फास्फोरस उर्वरकों की खपत लगातार बढ़ती जा रही है क्योंकि किसानों का मानना है की इनके अधिक उपयोग से फसल की वृद्धि और उपज दोनों तेजी से बढ़ती है। किसानों की आर्थिक स्थिति सही न होने के कारण यूरिया (नाइट्रोजन) को अधिक प्राथमिकता देते है क्योंकि यह सस्ती और इसकी उपलब्धता अधिक है जिसके परिणाम स्वरूप N:P:K का संतुलित अनुपात 4:2:1 बिगड़ गया है खासकर उर्वरकों का उपयोग पंजाब, उत्तर प्रदेश व हरियाणा जैसे उच्च उत्पादकता वाले क्षेत्रों मे सर्वेक्षण से यह पता चला है कि किसान ज्यादातर नाइट्रोजनिक उर्वरकों का उपयोग कर रहे है जबकि फॉसफोरिक और पोटासिक उर्वरकों का उपयोग निम्न मात्रा मे कर रहे है जिससे अन्य पोशक तत्व जैसे जस्ता, सल्फर की कमी दिखाई पड़ती है कीटनाशक के उपयोग के संदर्भ मे अधिकांश किसानों का मानना है की यह स्वास्थ्य पर प्रभाव नहीं पड़ता है। पर उन्हे पर्यावरण के प्रभाओ की जानकारी कम है। लगभग 50-70% किसान सुरक्षा उपकरणों का उपयोग नहीं करते है और कीटनाशक के अवशेषों का अनुचित उपयोग करते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसान ब्यवहार और पोषक तत्व प्रबंध की कमी के कारण लागत मे वृद्धि हो रही, पर्यावरण प्रदूषण और स्वस्थ जोखिम बढ़ते है और कृषि स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है ।

**3.कृषि प्रणालियों में उर्वरक उपयोग से संबंधित प्रमुख चुनौतियाँः** आधुनिक कृषि मे उर्वरक एक अनिवार्य घटक हैं, किंतु कृषि प्रणालियों में इनके उपयोग से जुड़ी अनेक वैज्ञानिक, पर्यावरणीय तथा प्रबंधन संबंधी चुनौतियाँ विद्यमान हैं। भारतीय कृषि में उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग, विशेष रूप से नाइट्रोजन का अत्यधिक और फॉस्फोरस एवं पोटाश का अपर्याप्त उपयोग, मृदा मे पोषक तत्व के असंतुलन को बढ़ावा देता है। जिसके परिणामस्वरूप पोषक तत्व उपयोग दक्षता (NUE) में कमी देखी गई है जिसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादकता अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच पाती। उर्वरकों के गलत समय एवं विधि से प्रयोग के कारण रिसाव, वाष्पीकरण और सतही प्रवाह द्वारा पोषक तत्वों की हानि होती है। नाइट्रोजन का नाइट्रेट के रूप में भूजल में रिसाव से जल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, जबकि नाइट्रस ऑक्साइड (N2O) का उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। दीर्घकाल तक रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से मृदा मे जैविक कार्बन, सूक्ष्मजीव विविधता तथा मृदा संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आती है। एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौती भारतीय मृदावों मे सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, आयरन, बोरॉन एवं सल्फर विभिन्न क्षेत्रों मे व्यापक कमी देखी जा रही है,और किसान सूक्ष्म पोषक तत्व उपयोग न के बराबर उपयोग करता है। जिससे फसलों की पोषण गुणवत्ता और उत्पादकता दोनों को सीमित करती है। इसके अतिरिक्त, उर्वरकों की बढ़ती लागत, जल प्रबंधन की समस्याएँ तथा नीतिगत एवं आपूर्ति-श्रृंखला संबंधी बाधाएँ छोटे और सीमांत किसानों के लिए उर्वरक प्रबंधन को और अधिक जटिल बना देती हैं। अतः सतत कृषि के लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM), मृदा स्वास्थ्य सुधार, उन्नत उर्वरक प्रौद्योगिकियों तथा किसान-केंद्रित वैज्ञानिक विस्तार सेवाओं को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

**4.असंतुलित मात्रा मे उर्वरकों के प्रयोग से होने वाले दुष्प्रभावः** खनिज तथा जैविक उर्वरकों में कुछ मात्रा में भारी धातुएँ जैसे कैडमियम, क्रोमियम, सीसा, निकल आदि और कभी-कभी रेडियोन्यूक्लाइड भी पाए जाते हैं, जो उर्वरकों के निर्माण में प्रयुक्त कच्चे पदार्थों से प्राप्त होते हैं। भारत में उपयोग किए जाने वाले उर्वरक जैसे की सिंगल सुपर फॉस्फेट, डाइ अमोनियम फॉस्फेट, यूरिया और म्यूरेट ऑफ पोटाश की तुलना में भारी धातुओं की अशुद्धियाँ अधिक पाई गई हैं। जिसके कारण लंबे समय तक मिट्टी में धातुओं का संचय होता रहता है। जैविक खाद जैसे गोबर की खाद में भी ये धातुएँ कार्बोक्सिलिक एवं फिनोलिक समूहों के साथ जुड़ी होती हैं, जो मिट्टी में जाकर स्थिर कॉम्प्लेक्स बनाती हैं और धीरे-धीरे पौधों द्वारा अवशोषित होती रहती हैं। कई दशकों तक उर्वरकों के नियमित प्रयोग के कारण मिट्टी में भारी धातुओं के संचय का कई स्पष्ट पैटर्न दिखा है।, हालांकि क्रोमियम और कैडमियम का संचय सीसा, निकल और कोबाल्ट की तुलना में अधिक पाया गया। लेकिन लगातार अधिक मात्रा में धातु-समृद्ध उर्वरकों के उपयोग से भविष्य में जोखिम बढ़ सकता है। फसलों में भारी धातुओं का संचय स्थल एवं उर्वरक मात्रा पर निर्भर करता है। बैरकपुर और जबलपुर जैसे क्षेत्रों में चावल, गेहूँ और सोयाबीन में भारी धातुओं का अधिक संचय पाया गया, जिसमें भूसा अनाज की तुलना में अधिक धातु संचित करता है। अनुशंसित मात्रा से अधिक (150% NPK) उर्वरक देने पर धातुओं का संचय और बढ़ गया। लंबे समय तक अत्यधिक उर्वरक एवं खाद प्रयोग से मिट्टी, जल, पर्यावरण, खाद्य श्रृंखला और अंततः मानव स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, इसलिए संतुलित मात्रा मे उर्वरक का उपयोग करना आवश्यक है।

**भारतीय कृषि पर प्रभाव**

**मिट्टी की उर्वरता में गिरावटः** लगातार असंतुलित मात्रा मे उर्वरकों के उपयोग से मिट्टी मे उपस्थित जैविक कार्बन धीरे -धीरे घटता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा संरचना खराब हो जाती है जिससे पोषक तत्वों की कमी मे वृद्धि होती है। जिसके कारण उपज मे गिरावट देखी जा रही है।

**सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमीः** भारतीय मृदाओ मे व्यापक रूप से जस्ता, लोहा तथा बोरॉन आदि सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी लगातार होती जा रही है, जो की फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता को निर्धारित करता है।

**पोषक तत्व उपयोग दक्षता (NUE) में कमीः** अधिक मात्रा मे उर्वरक देने पर भी फसलें पोषक तत्वों का पूरा उपयोग नहीं कर पातीं जिससे कारण पोषक तत्व उपयोग दक्षता (NUE) में कमी होती है।

**मृदा अम्लीकरण एवं लवणताः** मृदा मे जब लवण असंतुलन मात्रा मे होता है तब मृदा मे अम्लीयता एवं लवणता जैसी समस्याए उत्पन्न होती है विशेषकर यूरिया और अन्य रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी का pH संतुलन बिगड़ता है।

दीर्घकालिक उत्पादकता में गिरावटः अधिक मात्रा मे उर्वरकों के उपयोग से शुरू में उपज बढ़ती है, लेकिन समय के साथ भूमि की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है।

**4.2 पर्यावरण पर प्रभाव**

भूजल प्रदूषणः आधिक मात्रा मे जब नाइट्रोजन मृदा मे होता है तो ये पानी के साथ घुलकर भूजल मे चला जाता है। यह प्रक्रिया नाइट्रेट का रिसाव कहलाती है जिससे पेयजल की गुणवत्ता मे लगातार कमी होती रहती है।

**जल स्त्रोतों का यूट्रोफिकेशनः** जब नाइट्रोजन पानी के साथ घुलकर भूजल मे चल जाता है तो यह बहाव के माध्यम से नदियों, झीलों में पहुंचकर पोषक तत्वों की अधिकता से पानी मे शैवाल व अन्य जलीय खरपतवार को पानी मे उगने मे सहायता करता है।

**ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जनः** नाइट्रस ऑक्साइड (N2O) जैसी गैसों का उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा देता है।

जीवन पर दीर्घकालिक प्रभाव

**स्वास्थ्य जोखिमः** नाइट्रेट युक्त पानी के लगातार सेवन करने से ब्लू बेबी सिंड्रोम, थायरॉइड और कैंसर जैसे समस्याएँ का खतरा बढ़ सकता है।

**खाद्य गुणवत्ता में गिरावटः** सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी वाली फसलों ले लमने समय तक खाने से शरीर मे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से मानव शरीर मे बहुत सारी बीमारिया व कुपोषण की संभावनए बढ़ सकती हैं।

**आर्थिक प्रभावः** मिट्टी की गिरती उर्वरता के कारण किसानों अनेक प्रकार के मृदा सुधारक का उपयोग करता है जिससे की लागत मे वृद्धि और आय अस्थिर बढ़ती रहती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



# कृषि-वानिकी: टिकाऊ कृषि और ग्रामीण समृद्धि की प्रणाली

**उमेश कुमार** वि.व.वि. (कृषि वानिकी)
**डॉ. संदीप कुमार** वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष कृषि विज्ञान केन्द्र नानपारा, बहराइच-II

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि न केवल खाद्य सुरक्षा का आधार है, बल्कि करोड़ों ग्रामीण परिवारों की आजीविका, सामाजिक संरचना और आर्थिक स्थिरता से भी गहराई से जुड़ी हुई है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, घटते प्राकृतिक संसाधन, भूमि क्षरण, अनियमित वर्षा तथा किसानों की आय से जुड़ी चुनौतियों ने पारंपरिक कृषि प्रणालियों की सीमाओं को स्पष्ट कर दिया है। ऐसे परिदृश्य में एक ऐसी कृषि प्रणाली की आवश्यकता है, जो उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ कर सके। कृषि-वानिकी इसी आवश्यकता का व्यावहारिक और दूरदर्शी समाधान प्रस्तुत करती है।

कृषि-वानिकी एक वैज्ञानिक एवं बहुआयामी भूमि उपयोग प्रणाली है, जिसमें कृषि फसलों के साथ वृक्षों, झाड़ियों तथा कभी-कभी पशुपालन को एक ही भू-खंड पर योजनाबद्ध ढंग से एकीकृत किया जाता है। इसका उद्देश्य केवल तात्कालिक फसल उत्पादन नहीं, बल्कि भूमि की दीर्घकालिक उत्पादकता बनाए रखना, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना तथा किसानों की आय के स्रोतों को विविध बनाना है। इस प्रणाली के माध्यम से लकड़ी, ईंधन, चारा, फल एवं औषधीय उत्पाद प्राप्त होते हैं, जिससे किसान को अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों प्रकार के आर्थिक लाभ मिलते हैं। उत्तर प्रदेश के संदर्भ में कृषि-वानिकी का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। राज्य में बड़ी संख्या में छोटे एवं सीमांत किसान हैं, साथ ही आवारा पशुओं की समस्या, भूमि पर बढ़ता दबाव और खेती की बढ़ती लागत प्रमुख चुनौतियाँ हैं। तराई, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य क्षेत्र तथा बुंदेलखंड जैसे विविध कृषि-परिस्थितिकी क्षेत्रों में पॉपलर, यूकेलिप्टस, नीम, शीशम, बांस एवं फलदार वृक्षों पर आधारित कृषि-वानिकी मॉडल सफलतापूर्वक अपनाए जा रहे हैं। ये मॉडल न केवल फसल सुरक्षा और अतिरिक्त आय प्रदान करते हैं, बल्कि राज्य की लकड़ी आवश्यकता की पूर्ति कर प्राकृतिक वनों पर दबाव भी कम करते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि-वानिकी मिट्टी कटाव को रोकने, जल संरक्षण, कार्बन अवशोषण तथा जैव विविधता संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्तर पर यह प्रणाली रोजगार सृजन, कृषि-आधारित उद्योगों को बढ़ावा तथा किसानों की जोखिम सहन क्षमता को मजबूत बनाती है। इन्हीं कारणों से कृषि-वानिकी को आज भारत और विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में टिकाऊ कृषि और ग्रामीण समृद्धि की बहुआयामी प्रणाली के रूप में देखा जा रहा है, जो वर्तमान चुनौतियों का समाधान करते हुए भविष्य की कृषि के लिए एक सुदृढ़ आधार तैयार करती है।

**कृषि-वानिकी की अवधारणा और महत्व:** कृषि-वानिकी का मूल सिद्धांत यह है कि खेत की भूमि को केवल एक उपयोग तक सीमित न रखा जाए, बल्कि उस पर वृक्षों, अनाजों, दालों, तिलहनों, सब्जियों और पशुपालन या दुग्ध-उत्पादन जैसी गतिविधियों को सम्मिलित किया जाए। इससे भूमि की उत्पादकता बढ़ती है, जोखिम कम होता है और किसान को वर्ष भर विविध स्रोतों से आय प्राप्त होती है। वृक्षों की उपस्थिति खेत के सूक्ष्म वातावरण को संतुलित करती है, हवा की गति कम करती है, तापमान में उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करती है तथा भूमि में कार्बन और जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाती है। यही कारण है कि कृषि-वानिकी को जलवायु-स्मार्ट कृषि का अनिवार्य अंग माना जा रहा है।

**कृषि-वानिकी के लाभ:** 1.किसानों की आय में वृद्धि होती है, क्योंकि फसलों के साथ लकड़ी, फल, चारा एवं अन्य उत्पादों से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। 2.आय के स्रोत विविध होने से कृषि जोखिम कम होता है और आर्थिक स्थिरता बढ़ती है। 3.मिट्टी कटाव को रोककर भूमि की उर्वरता एवं संरचना में सुधार करती है। 4.जल संरक्षण एवं नमी धारण क्षमता बढ़ाकर फसलों की उत्पादकता में सहायक होती है। 5.कार्बन अवशोषण के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करती है। 6.प्राकृतिक वनों पर दबाव कम कर पर्यावरण संरक्षण में योगदान देती है। 7.चारा एवं ईंधन की स्थानीय उपलब्धता से पशुपालन एवं घरेलू आवश्यकताओं में सहूलियत होती है। 8.खेतों में जैव विविधता बढ़ाकर प्राकृतिक संतुलन बनाए रखती है। 9.ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन एवं कृषि-आधारित उद्योगों को बढ़ावा देती है। 10.टिकाऊ एवं दीर्घकालिक कृषि प्रणाली के रूप में भविष्य की पीढ़ियों हेतु संसाधनों का संरक्षण करती है।

**अलग-अलग कृषि क्षेत्रों में कृषि-वानिकी का उपयोग:** भारत के विविध कृषि-जलवायु क्षेत्रों में कृषि-वानिकी के कई सफल मॉडल विकसित हुए हैं। समशीतोष्ण क्षेत्रों में अखरोट, सेब और पॉपलर जैसे वृक्षों के साथ दालें और सब्जियाँ उगाई जाती हैं। उत्तरी भारत के तराई एवं मैदान क्षेत्रों में पॉपलर, यूकेलिप्टस, सहजन, सबबूल और बांज जैसे वृक्षों के साथ गेहूँ, सरसों, आलू और चारा फसलें प्रचलित हैं। शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में बेरी, करौंदा, खेजड़ी, नीम और अरण्डी जैसी प्रजातियों के साथ बाजरा, मूंगफली या चने जैसी फसलें सफलतापूर्वक जोड़ी जाती हैं। पूर्वोत्तर भारत में अदरक, हल्दी, काली मिर्च और बांस का संयोजन अनेक छोटे किसानों के लिए आर्थिक लाभ का आधार बना हुआ है। उत्तर प्रदेश की विविध भौगोलिक एवं कृषि-जलवायु परिस्थितियों के कारण कृषि-वानिकी के अलग-अलग मॉडल सफलतापूर्वक अपनाए जा रहे हैं। प्रत्येक क्षेत्र में स्थानीय जलवायु, मिट्टी, फसल प्रणाली और किसानों की आवश्यकताओं के अनुसार कृषि-वानिकी का स्वरूप भिन्न है। तराई क्षेत्र में अधिक वर्षा, उपजाऊ मिट्टी और सिंचाई की अच्छी सुविधा के कारण पॉपलर, यूकेलिप्टस, बांस तथा शीशम आधारित कृषि-वानिकी मॉडल प्रचलित हैं। यहाँ इन वृक्षों को गन्ना, गेहूँ, धान एवं सब्जियों के साथ सफलतापूर्वक उगाया जाता है, जिससे किसानों को लकड़ी के रूप में अच्छा आर्थिक लाभ मिलता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पॉपलर और यूकेलिप्टस आधारित कृषि-वानिकी सबसे अधिक विकसित है। यह क्षेत्र प्लाईवुड और पेपर उद्योग से जुड़ा होने के कारण व्यावसायिक कृषि-वानिकी का प्रमुख केंद्र बन चुका है। गन्ना, गेहूँ और चारा फसलों के साथ वृक्षों का संयोजन आम है। मध्य उत्तर प्रदेश में नीम, शीशम, सुबबूल, अर्जुन एवं फलदार वृक्षों को गेहूँ, चना, सरसों और दलहनी फसलों के साथ अपनाया जाता है। यहाँ कृषि-वानिकी का उपयोग मुख्य रूप से आय विविधीकरण, फसल सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण हेतु किया जाता है। बुंदेलखंड क्षेत्र में कम वर्षा और सूखा प्रवण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अगावे, करौंदा, नीम, बबूल एवं बांस जैसी सूखा सहनशील प्रजातियों पर आधारित कृषि-वानिकी मॉडल अपनाए जा रहे हैं। यह मॉडल मिट्टी संरक्षण, जल संरक्षण और आजीविका सुरक्षा में सहायक हैं। इस प्रकार उत्तर प्रदेश के विभिन्न कृषि क्षेत्रों में कृषि-वानिकी स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपनाकर टिकाऊ कृषि, अतिरिक्त आय और पर्यावरण संतुलन को बढ़ावा दिया जा रहा है।

**कृषि-वानिकी की व्यवहारिक चुनौतियां:** यद्यपि कृषि-वानिकी के लाभ अनेक हैं, फिर भी इसके क्रियान्वयन में कुछ व्यावहारिक समस्याएँ सामने आती हैं, जो निम्नलिखित है:

**1.दीर्घकालिक निवेश:** वृक्षों से आर्थिक लाभ प्राप्त होने में अधिक समय लगता है जिससे छोटे किसानों को तत्काल आय की चिंता रहती है।

**2.भूमि उपयोग को लेकर संकोच:** कई किसान फसली क्षेत्र कम होने के डर से खेत में वृक्ष लगाने से हिचकते हैं।

**3.तकनीकी ज्ञान की कमी:** उपयुक्त प्रजाति चयन, दूरी, प्रबंधन एवं फसल-वृक्ष संयोजन की सही जानकारी का अभाव।

**4.विपणन एवं मूल्य अनिश्चितता:** लकड़ी एवं अन्य उत्पादों के लिए संगठित बाजार और सुनिश्चित मूल्य की कमी।

**5.नीतिगत एवं प्रक्रियागत बाधाएँ:** कटाई, परिवहन और बिक्री से जुड़ी प्रशासनिक प्रक्रियाएँ कई बार जटिल होती हैं।

**6.पानी एवं पोषक तत्व प्रतिस्पर्धा:** गलत प्रबंधन की स्थिति में वृक्ष और फसल के बीच प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो सकती है।

**7.कीट एवं रोग प्रबंधन:** मिश्रित प्रणाली में कीट-रोग प्रबंधन अधिक जटिल हो जाता है।

**8.प्रशिक्षण एवं विस्तार सेवाओं की कमी:** किसानों तक वैज्ञानिक तकनीकों और सफल मॉडलों की पर्याप्त पहुँच नहीं हो पाती।

इन व्यवहारिक चुनौतियों के बावजूद, उचित तकनीकी मार्गदर्शन, नीति समर्थन और बाजार व्यवस्था के माध्यम से कृषि-वानिकी को सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है।

**सामुदायिक और नीति स्तर पर कृषि-वानिकी:** कृषि-वानिकी का प्रभाव केवल खेत स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका महत्व सामुदायिक विकास और नीति निर्माण के स्तर पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सामुदायिक स्तर पर, कृषि-वानिकी ग्राम समाज, किसान समूहों, स्वयं सहायता समूहों और सहकारी संस्थाओं के माध्यम से सामूहिक रूप से अपनाई जा सकती है। सामुदायिक कृषि-वानिकी से चारागाह विकास, बायो-फेंसिंग, सामूहिक लकड़ी एवं चारा उत्पादन, तथा मानवङ्कवन्यजीव संघर्ष में कमी आती है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में साझा संसाधनों का बेहतर प्रबंधन, रोजगार सृजन और सामाजिक सहयोग को बढ़ावा मिलता है। नीति स्तर पर, कृषि-वानिकी को सतत कृषि, जलवायु परिवर्तन शमन और ग्रामीण आजीविका सुदृढ़ीकरण की एक रणनीतिक व्यवस्था के रूप में मान्यता दी जा चुकी है। भारत सरकार की राष्ट्रीय कृषि-वानिकी नीति ने वृक्ष कटाई, परिवहन एवं विपणन से जुड़ी बाधाओं को कम करने, किसानों को संस्थागत सहयोग देने और निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त किया है। राज्यों, विशेषकर उत्तर प्रदेश में, वृक्षारोपण, प्राकृतिक खेती और कृषि वानिकी से जुड़ी योजनाओं के माध्यम से किसानों को तकनीकी मार्गदर्शन, पौध उपलब्धता और प्रोत्साहन प्रदान किए जा रहे हैं।

**भविष्य की संभावनाएं:** कृषि-वानिकी की भविष्य की संभावनाएँ वर्तमान कृषि, पर्यावरण और ग्रामीण विकास की चुनौतियों के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान और भूमि क्षरण जैसी समस्याओं के समाधान के रूप में यह एक प्रभावी जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रणाली के रूप में उभर रही है। वृक्ष आधारित खेती कार्बन अवशोषण बढ़ाकर ग्रीनहाउस गैसों के प्रभाव को कम करती है और खेत स्तर पर सूक्ष्म-जलवायु को संतुलित बनाए रखती है। बढ़ती जनसंख्या और औद्योगीकरण के कारण लकड़ी, कागज, प्लाईवुड, फर्नीचर एवं बायो-ऊर्जा की मांग में निरंतर वृद्धि होगी, जिसकी पूर्ति प्राकृतिक वनों से संभव नहीं है; ऐसे में कृषि-वानिकी औद्योगिक लकड़ी उत्पादन का प्रमुख स्रोत बन सकती है। इससे किसानों को सुनिश्चित बाजार और बेहतर मूल्य मिलेंगे तथा वनों पर दबाव कम होगा।

# हल्दी की व्यावसायिक खेती: कम लागत में अधिक लाभ का सफल मॉडल

**विकास प्रताप सिंह** वैज्ञानिक एवं नवोन्मेषी अनुसंधान अकादमी (AcSIR) गाजियाबाद (उ.प्र.)

**पलाश रॉय** वनस्पति विज्ञान विभाग विश्व भारती विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल

**हिमांशु शर्मा** वैज्ञानिक एवं नवोन्मेषी अनुसंधान अकादमी (AcSIR) गाजियाबाद (उ.प्र.)

**राकेश चंद्र नैनवाल** सीएसआईआर-राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

**देवेन्द्र सिंह** सीएसआईआर- राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

हल्दी (वानस्पतिक नामः Curcuma longa) जिंजीबरेसी कुल की एक प्रमुख मसाला एवं औषधीय फसल है। भारत को इसका मूल स्थान माना जाता है और प्राचीन काल से ही यह भारतीय कृषि, आयुर्वेद तथा धार्मिक परंपराओं का अभिन्न हिस्सा रही है। वर्तमान समय में हल्दी एक महत्वपूर्ण नकदी फसल के रूप में किसानों की आय बढ़ाने में अहम भूमिका निभा रही है। मसाले के साथ-साथ औषधीय, प्रसंस्कृत एवं निर्यात उत्पादों में इसकी बढ़ती मांग इसे व्यावसायिक खेती के लिए अत्यंत लाभकारी बनाती है।

**जलवायु एवं भूमिः** हल्दी के लिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु सर्वोत्तम मानी जाती है। 20-35°C तापमान तथा 1000-1500 मि.मी. वार्षिक वर्षा इसकी अच्छी वृद्धि हेतु अनुकूल है। यह फसल हल्की छाया को सहन कर सकती है, इसलिए आम, पॉपलर या सागौन जैसे वृक्षों के बगीचों में सहफसली के रूप में भी उगाई जा सकती है। भूमि की दृष्टि से अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम रहती है। जलभराव की स्थिति कंद सड़न रोग को बढ़ावा देती है, इसलिए खेत समतल एवं जल निकास युक्त होना चाहिए। मृदा का pH 5.5 से 7.5 उपयुक्त रहता है।

**उन्नत किस्में:** किसानों को क्षेत्रानुसार उन्नत एवं अधिक उपज देने वाली किस्मों का चयन करना चाहिए। प्रमुख किस्मों में पूना, सोनिया, गौतम, रश्मि, रोमा, कृष्णा, सुगंधन, सुवर्णा, प्रभा एवं भवानी आदि शामिल हैं। उन्नत किस्मों का चयन करने से उत्पादन एवं करक्यूमिन प्रतिशत दोनों में वृद्धि होती है। यदि एक बार शुद्ध बीज (प्रकंद) उपलब्ध हो जाए तो किसान स्वयं भी आगे के लिए बीज तैयार कर सकते हैं।

**खेत की तैयारी:** अप्रैल-मई में मिट्टी पलट हल से एक गहरी जुताई करें। इसके बाद 3-4 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से कर पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी बना लें। खेत को मेड़ों एवं नालियों में विभाजित कर जल निकास की उचित व्यवस्था करें। मेड़ों पर बुवाई करने से कंदों का विकास अच्छा होता है तथा उत्पादन में वृद्धि देखी गई है।

**बुवाई का समय एवं विधिः** हल्दी की बुवाई का उपयुक्त समय मई से जून है, जब मानसून की शुरुआत होती है।

**पंक्ति से पंक्ति दूरी:** 30 सेमी

**पौधे से पौधे दूरी:** 20 सेमी

**बीज दरः** 20-25 क्विं. स्वस्थ प्रकंद प्रति हेक्टेयर

बीज हेतु रोगमुक्त एवं स्वस्थ प्रकंदों का चयन करें। बुवाई से पूर्व जैविक फफूंदनाशक (जैसे ट्राइकोडर्मा) से बीजोपचार करने से कंद विगलन रोग की संभावना कम होती है।

**मल्चिंग का महत्वः** बुवाई के बाद खेत में नमी संरक्षण हेतु सूखी पत्तियों, भूसे या हरी पत्तियों से मल्चिंग करना लाभकारी है। इससे अंकुरण अच्छा होता है, खरपतवार कम उगते हैं और मिट्टी की नमी बनी रहती है। लगभग 12-15 टन हरी पत्तियों की आवश्यकता प्रति हेक्टेयर होती है।

**खाद एवं उर्वरक प्रबंधनः** हल्दी में कंद विकास के लिए जैविक पदार्थों की पर्याप्त उपलब्धता आवश्यक है।

**प्रति हेक्टेयर अनुशंसित मात्रा**

**गोबर की सड़ी खादः** 30-40 टन

**नाइट्रोजनः** 60 किग्रा, **फॉस्फोरसः** 50 किग्रा, **पोटाशः** 120 किग्रा, **जिंकः** 2 किग्रा, **नीम खली:** 2 टन

नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में बाँटकर 40 एवं 90 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग करें। मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों की मात्रा समायोजित करना अधिक लाभकारी रहता है।

**सिंचाई प्रबंधनः** हल्दी की फसल में नियमित नमी आवश्यक है। वर्षा की कमी होने पर 10-15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें। कंद निर्माण के समय खेत में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। जलभराव से बचाव अत्यंत आवश्यक है।

**निराई-गुड़ाई एवं मिट्टी चढ़ानाः** खरपतवार नियंत्रण हेतु 2-3 बार निराई-गुड़ाई करें। 60-90 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने से कंदों का विकास अच्छा होता है और उत्पादन बढ़ता है।

रोग एवं कीट प्रबंधन

1. **कंद विगलन रोगः** जलभराव से बचाव एवं बीजोपचार आवश्यक है।
2. **पर्ण चित्ती रोगः** आवश्यकतानुसार कॉपर आधारित दवाओं का छिड़काव करें।
3. **प्रकंद बेधक कीटः** नीम तेल 0.5% या अनुशंसित कीटनाशी का छिड़काव करें।

समेकित कीट प्रबंधन (IPM) अपनाने से रासायनिक लागत कम होती है और उत्पादन सुरक्षित रहता है।

**खुदाई एवं प्रसंस्करणः** फसल 8-9 माह में तैयार हो जाती है। जब पौधों की पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगें तो खुदाई करें।

**उपजः** * 200-260 क्विंटल कच्ची हल्दी प्रति हेक्टेयर
* 40-50 क्विंटल सूखी हल्दी

खुदाई के बाद प्रकंदों को साफ कर 45-60 मिनट उबालें, फिर 10-15 दिन धूप में सुखाएं। सूखने के बाद रगड़कर पालिश की जाती है। उचित प्रसंस्करण से बाजार मूल्य में वृद्धि होती है।

**जैविक खेती की संभावनाएं:** आजकल जैविक हल्दी की मांग तेजी से बढ़ रही है। प्रमाणित जैविक उत्पादन हेतु कम से कम 36 माह तक रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग बंद करना होता है। गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, नीम खली, जैव उर्वरक (PSB), ट्राइकोडर्मा आदि का प्रयोग कर अच्छी पैदावार ली जा सकती है। जैविक हल्दी को बाजार में 20-30% अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

**औषधीय एवं पोषण महत्वः** हल्दी में 2-6% करक्यूमिन पाया जाता है, जो शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट एवं सूजनरोधी तत्व है। यह पाचन सुधार, त्वचा रोग, गठिया, रक्त शुद्धि एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक है। आयुर्वेद में इसे प्राकृतिक एंटीबायोटिक माना गया है।

**मूल्य संवर्धन एवं विपणनः** किसान केवल कच्ची हल्दी बेचने के बजाय मूल्य संवर्धन द्वारा अधिक लाभ कमा सकते हैं।

* हल्दी पाउडर निर्माण * पैकेजिंग एवं ब्रांडिंग * हल्दी दूध मिश्रण * करक्यूमिन निष्कर्षण * हल्दी तेल उत्पादन

यदि किसान समूह बनाकर प्रसंस्करण इकाई स्थापित करें तो आय में 30-40% तक वृद्धि संभव है।

**लागत एवं लाभः** हल्दी की व्यावसायिक खेती में औसतन 1.5-2 लाख रु. प्रति हेक्टेयर लागत आती है (क्षेत्र अनुसार भिन्नता संभव)। उचित प्रबंधन से 1-1.25 लाख रुपये तक शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जैविक एवं प्रसंस्कृत उत्पादों से यह लाभ और अधिक बढ़ सकता है।

**निष्कर्षः** हल्दी की व्यावसायिक खेती कम लागत में अधिक लाभ देने वाली टिकाऊ कृषि प्रणाली है। उन्नत किस्मों का चयन, संतुलित पोषण प्रबंधन, रोग-कीट नियंत्रण एवं प्रसंस्करण तकनीकों को अपनाकर किसान अपनी आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। वर्तमान बाजार मांग और निर्यात संभावनाओं को देखते हुए हल्दी मध्य भारत के किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प सिद्ध हो सकती है।

यदि वैज्ञानिक पद्धति एवं जैविक दृष्टिकोण अपनाया जाए तो हल्दी की खेती "आय दोगुनी" की दिशा में महत्वपूर्ण कदम साबित हो सकती है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# कमरख की उन्नत खेती

✍ **डॉ. तेजराज सिंह हाडा** सहायक आचार्य (उद्यान विज्ञान), बलवंत विद्यापीठ रूरल इंस्टीट्यूट, बिचपुरी, आगरा (उ.प्र.)

कमरख या स्टारफ्रूट (एवरहोआ कैरामबोला) इंडोनेशिया का मूल निवासी है। इसके गूदे का एसिडिक नेचर इसमें मौजूद ऑक्सालिक एसिड की वजह से होता है। हालांकि कमरख भारत में आर्थिक रूप से कोई खास फसल नहीं है, लेकिन यह फल–कम–या–नामेंटल पेड़ कई बगीचों में मिल सकता है।

यह एक छोटा पेड़ है जिसकी डालियाँ झुकी होती हैं और इसमें आकर्षक, सुनहरे-पीले, 3-5 धारीदार, अंडाकार फल लगते हैं जिनकी लंबाई 12-15 सेमी. होती है। कैरामबोला जैसी ही एक फल की फसल, बिलिम्बी खीरे जैसे फल देती है जिनका इस्तेमाल अचार और करी बनाने के लिए किया जाता है क्योंकि गूदे में एसिड (6 प्रतिशत) की मात्रा ज़्यादा होती है।

कैरामबोला के फलों में एक रसदार गूदा होता है जो किस्म के आधार पर खट्टा या मीठा हो सकता है। यह फल विटामिन A, B और C के साथ-साथ कीमती मिनरल और आयरन का अच्छा सोर्स है लेकिन कैल्शियम नहीं। इस फल के अलग-अलग पौधों के हिस्सों में दवा वाले गुण होते हैं, जैसे कि जड़ का अर्क ज़हर के लिए एंटीडोट के तौर पर इस्तेमाल होता है, और कुचली हुई पत्तियां चिकन पॉक्स, रिंग वर्म और स्कैबीज़ के इलाज के लिए इस्तेमाल होती हैं। कच्चे फलों का गूदा पीतल के बर्तन साफ करने के लिए इस्तेमाल होता है।

## मिट्टी और जलवायु

कैरामबोला को गर्म और नमी वाला क्लाइमेट पसंद है और इसे 1,200 मी. तक की पहाड़ियों पर उगाया जा सकता है। अच्छी बारिश से नॉर्मल ग्रोथ और फसल को बढ़ावा मिलता है। यह अच्छी ड्रेनेज वाली किसी भी तरह की मिट्टी में उग सकता है, लेकिन गहरी उपजाऊ मिट्टी पौधों की बेहतर ग्रोथ में मदद करती है। हालांकि यह एसिड और एल्कलाइन दोनों तरह की मिट्टी में उगता है, लेकिन इसे एसिड वाली मिट्टी पसंद है। कैल्शियम वाली मिट्टी पर उगने वाले पेड़ों को कभी-कभी जिंक स्प्रे की ज़रूरत होती है।

## किस्में

कैरामबोला की खास किस्में पता नहीं हैं, लेकिन 2 मुख्य तरह की पहचान की गई है, यानी खट्टा और मीठा। खट्टे टाइप में 1% तक एसिड होता है और मीठे टाइप में कम एसिड (0.4%) और 5त्र शुगर होती है। कुछ चीनी किस्में जैसे फुआंग तुंग बहुत मीठी होती हैं और ब्राज़ीलियन किस्मों में विटामिन ष्ट भरपूर होता है। कुछ बेहतर किस्म के कैरामबोला कोलंबिया (इकाम्बोला), ताइवान (टीन मा, मिन ताओ) और हवाई (गोल्डन स्टार) में मिलते हैं।

## प्रवर्धन

कैरामबोला को अक्सर बीजों से उगाया जाता है, लेकिन असली पौधे उगाने के लिए बडिंग, ग्राफ्टिंग और लेयरिंग की सलाह दी जाती है। बीजों की वायबिलिटी कम होती है और इसलिए उन्हें ताज़ा बोना चाहिए। बीजों को साफ करने और सुखाने के बाद, उन्हें गमलों में बोना चाहिए और रेगुलर पानी देना चाहिए। पौधों को अलग-अलग गमलों या प्लास्टिक बैग में ट्रांसप्लांट किया जाता है और सख्त होने दिया जाता है। फिर उन्हें खेत में ट्रांसप्लांट किया जाता है। जब पौधों को रूटस्टॉक के तौर पर इस्तेमाल करना हो, तो वे कम से कम एक साल पुराने होने चाहिए, जिस पर बडिंग (शील्ड) या ग्राफ्टिंग (विनियर या अप्रोच) की जा सके।

**खेती**

## रोपण

बागों में कैरामबोला के पेड़ बहुत कम लगाए जाते हैं। जब कोई रेगुलर बाग लगाने का प्लान बनाता है, तो 8m × 8m की दूरी रखकर पौधे लगाए जा सकते हैं।

## प्रूनिंग

असल में, कैरामबोला पेड़ों के लिए कोई खास ट्रेनिंग या प्रूनिंग ऑपरेशन करने की सलाह नहीं दी जाती है।

## खाद

न्यूट्रिएंट्स की कोई बताई गई डोज़ नहीं है। हालांकि, साल में एक बार पेड़ों में खाद डालना (40-50 kg गोबर की खाद/पेड़) और कुछ नाइट्रोजन और फॉस्फेट वाली खाद भी डालना एक अच्छा तरीका है, डोज़ पेड़ की उम्र और साइज़ और मिट्टी की उपजाऊ शक्ति पर निर्भर करती है।

## बाद की देखभाल

बेहतर बाग लगाने के लिए, ज़रूरत पड़ने पर छोटे पौधों को पानी देना, सहारा देना, बेसिन की सफाई और ठंड से बचाना जैसे काम ज़रूरी हैं।

## सिंचाई

जब लंबे समय तक सूखा रहता है तो सिंचाई की जाती है। इससे अच्छी फसल पाने में मदद मिलती है।

## कटाई और कटाई के बाद का मैनेजमेंट

पौधों को फल आने में लगभग 4 साल लगते हैं लेकिन ग्राफ्ट 1-2 साल में फसल देते हैं। कैरामबोला तने पर भी फूल और फल देता है। फल साल भर लगते हैं, लेकिन सबसे ज़्यादा पैदावार जनवरी-फरवरी और सितंबर-अक्टूबर में होती है। पैदावार उम्र, वैरायटी और पौधे की सेहत के हिसाब से अलग-अलग होती है। एक बड़े पेड़ से लगभग 80 kg फल काटे जा सकते हैं। मीठे फल ताज़े खाए जाते हैं और खट्टे फलों का इस्तेमाल रिफ्रेशिंग ड्रिंक्स, अचार बनाने या इमली की जगह पर किया जा सकता है। फलों से अच्छी क्वालिटी का स्क्वैश, जेली, प्रिज़र्व और कैंडी भी बनाई जा सकती है। सही पैकिंग के साथ, कैरम्बोला के फल अच्छी तरह से शिप होते हैं, लेकिन फल ज़्यादातर पास के बाज़ारों में सप्लाई किए जाते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# जल बचत से दोगुनी पैदावार: ज़ायद फसलों में उचित सिंचाई प्रबंधन

**अभिषेक सिंह, प्रखर राय** सस्य विज्ञान विभाग, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

**डॉ. ललित कुमार सनोदिया**

**डॉ. अखिलेश कुमार सिंह**

**डॉ. अवनीश यादव** सहायक प्रोफेसर, कृषि संकाय, प्रो. राजेंद्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

*रबी फसल की कटाई के बाद और खरीफ की बुवाई से पहले का समय किसानों के लिए अतिरिक्त आय का महत्वपूर्ण अवसर होता है, जिसे ज़ायद का मौसम कहा जाता है, लेकिन इस मौसम की सबसे बड़ी चुनौती तेज़ गर्मी, अधिक वाष्पीकरण, कम आर्द्रता और पानी की कमी होती है। ऐसी परिस्थितियों में यदि सिंचाई का सही प्रबंधन न किया जाए तो मिट्टी की नमी जल्दी समाप्त हो जाती है, पौधों की वृद्धि रुक जाती है, फूल और फल झड़ने लगते हैं तथा उत्पादन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिए ज़ायद फसलों में उचित सिंचाई प्रबंधन सफल खेती की आधारशिला है, क्योंकि पानी ही इस मौसम में फसल का जीवन होता है।*

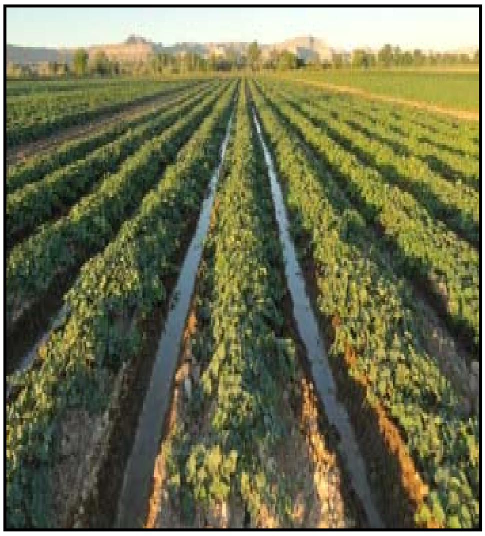

ज़ायद की प्रमुख फसलें जैसे तरबूज, खरबूज, खीरा, ककड़ी, लौकी, तोरई, भिंडी, मूंग, उड़द और ग्रीन मक्का अधिक तापमान के कारण बार-बार पानी की मांग करती हैं, इसलिए मिट्टी के प्रकार के अनुसार सिंचाई का अंतराल निर्धारित करना चाहिए। बलुई मिट्टी में नमी जल्दी समाप्त हो जाती है, अतः 3-4 दिन के अंतराल पर सिंचाई करना उचित रहता है, जबकि दोमट मिट्टी में 5-7 दिन और भारी मिट्टी में 7-8 दिन के अंतराल पर सिंचाई पर्याप्त होती है। अधिक गर्मी और लू की स्थिति में सिंचाई का अंतराल कम कर देना चाहिए और हल्की सिंचाई बार-बार करनी चाहिए, जिससे मिट्टी में नमी बनी रहे और पौधों को नमी तनाव का सामना न करना पड़े।

फसल की कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जब पानी की कमी बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। बेल वाली फसलों में बेल बढ़ने, फूल आने और फल बनने की अवस्था, दलहनी फसलों में शाखा बनने, फूल आने और फली बनने की अवस्था तथा भिंडी और मक्का में फूल और दाना बनने की अवस्था अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इन अवस्थाओं पर समय से सिंचाई करने से फल का आकार, वजन और गुणवत्ता बेहतर होती है तथा उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

सिंचाई की विधि का चुनाव भी जल प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कद्दूवर्गीय फसलों में नाली विधि द्वारा सिंचाई करने से पानी की बचत होती है और पौधों की जड़ों में नमी संतुलित बनी रहती है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली ज़ायद की फसलों के लिए सबसे उपयोगी तकनीक साबित हो रही है, क्योंकि इससे कम पानी में बार-बार सिंचाई की जा सकती है, वाष्पीकरण कम होता है, खरपतवार कम उगते हैं और पौधों को लगातार नमी मिलती रहती है। स्प्रिंकलर विधि हल्की मिट्टियों और दलहनी फसलों के लिए लाभकारी रहती है।

गर्मी के मौसम में केवल सिंचाई करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि मिट्टी में नमी को सुरक्षित रखना भी आवश्यक होता है। इसके लिए फसल के बीच सूखी घास या पॉलिथीन से मल्चिंग करने, खेत को समतल रखने, मजबूत मेड़ बनाने, जैविक पदार्थों का प्रयोग करने तथा सुबह या शाम के समय सिंचाई करने से पानी की बचत होती है और नमी लंबे समय तक बनी रहती है। आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने से पोषक तत्वों का ह्रास होता है और जड़ों में वायु संचार कम हो जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, इसलिए हमेशा फसल की आवश्यकता के अनुसार ही सिंचाई करनी चाहिए।

आज के समय में मौसम आधारित जानकारी और सरल तकनीकों की सहायता से किसान सिंचाई का सही समय तय कर सकते हैं। मोबाइल पर उपलब्ध मौसम पूर्वानुमान के आधार पर सिंचाई करने से जल का कुशल उपयोग संभव है और फसल को गर्मी के दुष्प्रभाव से बचाया जा सकता है। ज़ायद की खेती कम अवधि में तैयार होकर जल्दी नकद लाभ देने वाली खेती है, इसलिए इसमें जल प्रबंधन का महत्व और भी बढ़ जाता है।

अंततः कहा जा सकता है कि ज़ायद फसलों में उचित सिंचाई प्रबंधन केवल पानी देने की प्रक्रिया नहीं, बल्कि उत्पादन, गुणवत्ता और किसान की आय बढ़ाने का एक प्रभावी माध्यम है। यदि किसान भाई मिट्टी के प्रकार, फसल की अवस्था और मौसम को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक तरीके से सिंचाई करें तथा मल्चिंग और ड्रिप जैसी तकनीकों को अपनाएं, तो कम पानी में भी अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं और ज़ायद की खेती को अधिक लाभकारी बना सकते हैं।

# जैविक खेती की बढ़ती मांग और उससे जुड़ी चुनौतियां

दीपेंद्र सिंह सारंगदेवोत विद्यावाचस्पति शोधकर्ता
सस्य विज्ञान विभाग
शैफाली तंवर विद्यावाचस्पति शोधकर्ता, उद्यान विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

**पिछले कुछ वर्षों में भारतीय कृषि एक महत्वपूर्ण बदलाव के दौर से गुजर रही है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से जहाँ एक ओर भूमि की उर्वरता प्रभावित हुई है, वहीं दूसरी ओर मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर भी गंभीर खतरे उत्पन्न हुए हैं। ऐसे में जैविक खेती एक सुरक्षित, टिकाऊ और लाभकारी विकल्प के रूप में उभरकर सामने आई है। आज न केवल भारत में बल्कि वैश्विक स्तर पर जैविक उत्पादों की मांग निरंतर बढ़ रही है, किंतु इसके साथ कई व्यावहारिक चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं।**

## जैविक खेती की बढ़ती मांग के कारण

जैविक खेती की बढ़ती लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता है। उपभोक्ता अब यह समझने लगे हैं कि रसायन युक्त खाद्य पदार्थ दीर्घकालीन बीमारियों का कारण बन सकते हैं। जैविक उत्पादों को पोषक तत्वों से भरपूर और सुरक्षित माना जाता है, इसलिए शहरी क्षेत्रों में इनकी मांग तेज़ी से बढ़ी है। दूसरा प्रमुख कारण पर्यावरण संरक्षण है। जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता, जिससे मिट्टी की जैविक संरचना बनी रहती है, भूजल प्रदूषण कम होता है और जैव विविधता को संरक्षण मिलता है। जलवायु परिवर्तन के दौर में यह खेती पद्धति टिकाऊ कृषि की दिशा में एक सशक्त कदम मानी जा रही है। इसके अतिरिक्त, निर्यात संभावनाएँ भी जैविक खेती को बढ़ावा दे रही हैं। यूरोप, अमेरिका और खाड़ी देशों में भारतीय जैविक उत्पादों की अच्छी मांग है। मसाले, चाय, कॉफी, बासमती चावल, दालें और फल-सब्ज़ियाँ जैविक रूप में अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में ऊँचे दामों पर बिकती हैं।

सरकार द्वारा भी जैविक खेती को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY), मिशन ऑर्गेनिक वैल्यू चेन डेवलपमेंट फॉर नॉर्थ ईस्ट रीजन (MOVCDNER) जैसी योजनाओं ने किसानों को इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है।

## जैविक खेती से किसानों को मिलने वाले लाभ

जैविक खेती किसानों को दीर्घकालीन लाभ प्रदान करती है। इससे उत्पादन लागत में धीरे-धीरे कमी आती है क्योंकि किसान स्वयं जैविक खाद, जीवामृत, कम्पोस्ट और जैव-कीटनाशक तैयार कर सकता है। मिट्टी की सेहत सुधरने से फसलों की गुणवत्ता बेहतर होती है और बाज़ार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। साथ

ही, यह खेती पद्धति किसानों को आत्मनिर्भर बनने की दिशा में भी प्रेरित करती है।

## जैविक खेती से जुड़ी प्रमुख चुनौतियां

हालाँकि जैविक खेती के लाभ अनेक हैं, लेकिन इसे अपनाने में किसानों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सबसे बड़ी चुनौती है शुरुआती उत्पादन में गिरावट। रासायनिक खेती से जैविक खेती की ओर संक्रमण के पहले 2-3 वर्षों में फसल उत्पादन कम हो सकता है, जिससे किसानों की आय प्रभावित होती है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह जोखिम उठाना आसान नहीं होता।

दूसरी प्रमुख समस्या है प्रमाणीकरण (Certification) की जटिल प्रक्रिया। जैविक उत्पादों को बाज़ार में उचित पहचान दिलाने के लिए प्रमाणन आवश्यक है, जो समय-साध्य और खर्चीला होता है। कई किसान जानकारी के अभाव में इस प्रक्रिया से वंचित रह जाते हैं।

बाज़ार और मूल्य निर्धारण भी एक बड़ी चुनौती है। जैविक उत्पादों के लिए संगठित और पारदर्शी बाज़ार अभी पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पाया है। कई बार किसानों को जैविक उत्पादों का वही मूल्य मिलता है जो पारंपरिक उत्पादों का होता है, जिससे उनका उत्साह कम हो जाता है। इसके अलावा, तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की कमी भी एक गंभीर समस्या है। जैविक खेती में कीट नियंत्रण, पोषक तत्व प्रबंधन और फसल चक्र की सही जानकारी आवश्यक होती है, जो सभी किसानों तक नहीं पहुँच पाती।

## आगे की राह

जैविक खेती को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि सरकार, वैज्ञानिक संस्थान और किसान मिलकर कार्य करें। किसानों को संक्रमण अवधि में आर्थिक सहायता, सरल प्रमाणन व्यवस्था, स्थानीय स्तर पर बाज़ार की सुविधा और नियमित प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाना चाहिए। साथ ही, उपभोक्ताओं को भी यह समझना होगा कि जैविक उत्पादों की वास्तविक कीमत उनके स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण से जुड़ी है।

## निष्कर्ष

जैविक खेती केवल एक कृषि पद्धति नहीं, बल्कि स्वस्थ जीवन और सतत भविष्य की ओर एक आंदोलन है। बढ़ती मांग यह संकेत देती है कि समाज अब सुरक्षित और पर्यावरण-अनुकूल खाद्य प्रणाली की ओर बढ़ रहा है। यदि मौजूदा चुनौतियों का समाधान किया जाए, तो जैविक खेती भारतीय किसानों की आय बढ़ाने के साथ-साथ देश की कृषि को नई दिशा दे सकती है।

01/2025-26

# गेंदा : एक बहुउपयोगी गार्डन पौधा

**युवराज कुमावत** Young Plant Breeder, Master's in Genetics and Plant Breeding, Jobner, Jaipur (Raj.)

**शंकर लाल ताकर** Horticulturist, CEO- Choudhary Agro Seeds Company Kalakh, Jobner, Jaipur (Raj.)

**परिचयः** गेंदा (Tagetes spp.) पूरे भारत में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है और अपनी कई तरह से इस्तेमाल होने और आसानी से उगाने की वजह से कमर्शियल फूलों की फसलों में इसका खास रोल है। कटे हुए फूल, खुले फूल और गमले के पौधे के तौर पर इसका बहुत इस्तेमाल होता है, यह धार्मिक समारोहों, सामाजिक कामों और लैंडस्केप डेकोरेशन का एक जरूरी हिस्सा है। गेंदा एक साथी पौधे के तौर पर काम करके सस्टेनेबल खेती में भी मदद करता है जो कीड़ों को दूर भगाता है, फायदेमंद कीड़ों को खींचता है और मिट्टी की सेहत को बेहतर बनाता है। इसके अलावा, इसका रिच फाइटोकेमिकल प्रोफाइल - जिसमें ल्यूटिन, टैगेट्स ऑयल और क्रेरसेटागेटिन जैसे कंपाउंड शामिल हैं - कई तरह के दवा, कॉस्मेटिक और इंडस्ट्रियल इस्तेमाल में मदद करता है। त्योहारों के दौरान मजबूत मार्केट डिमांड के साथ, गेंदे की आर्थिक फायदे की संभावना अच्छी मार्केटिंग और कटाई के बाद के मैनेजमेंट सिस्टम से और बढ़ जाती है।

फूलों की खेती, खेती की एक जरूरी ब्रांच बन गई है, जिसकी खासियत इसका आर्थिक और सांस्कृतिक महत्व है। गेंदा भारत में सबसे ज्यादा बिकने वाले फूलों में से एक है, जो गुलाब और गुलदाउदी के बाद तीसरे नंबर पर आता है। पुराने समय में, एज्टेक सभ्यता गेंदे को उसके आध्यात्मिक, औषधीय और सजावटी गुणों के लिए बहुत पसंद करती थी, और 1500 के दशक में स्पेनिश खोजकर्ताओं के इस फूल को यूरोप लाने के बाद इसकी खेती फैल गई, जो बाद में क्रांति के बाद उत्तरी अमेरिका पहुँच गई। भारत में, गेंदे को हिंदू परंपराओं में पवित्र दर्जा प्राप्त है, जहाँ इसका इस्तेमाल देवताओं को सजाने और त्योहारों को सजाने के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है आजकल की खेती के तरीके गेंदे को एक असरदार साथी पौधे के रूप में पहचानते हैं। पॉलिनेटर और शिकारी कीड़ों को आकर्षित करने, अपनी तेज खुशबू से कीड़ों को दूर भगाने और नेमाटोड की आबादी को कम करके मिट्टी की सेहत को बेहतर बनाने की इसकी क्षमता इसे सब्जियों के बगीचों में बहुत कीमती बनाती है। सजावटी बागवानी और टिकाऊ खेती में इस पौधे की दोहरी भूमिका इसके सांस्कृतिक और आर्थिक महत्व को बढ़ाती है।

**कल्चरल और कमर्शियल महत्वः** गेंदा सबसे ज्यादा उगाए जाने वाले फूलों में से एक है, क्योंकि इसकी खेती आसान है, यह कई तरह से उग सकता है और देखने में भी अच्छा लगता है। इसे बगीचे की सजावट में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है और यह धार्मिक और सामाजिक आयोजनों में इस्तेमाल होने वाली मालाओं और ढीले-ढाले सजावट के लिए पसंदीदा फूल है। गेंदे के चमकीले रंग और अलग-अलग ऊँचाई इसे बगीचे की क्यारियों में बड़े पैमाने पर दिखाने, कंटेनर में लगाने, हैंगिंग बास्केट में लगाने और शहरी इलाकों में किनारों पर लगाने के लिए बहुत अच्छा बनाती हैं। दशहरा और दिवाली जैसे बड़े त्योहारों के दौरान, गेंदे के फूलों की माँग बढ़ जाती है, जो फूलों के बाजार में इसकी अहम भूमिका को दिखाता है।

**अफ्रीकन मैरीगोल्ड (टैगेट्स इरेक्टा):** यह किस्म आम तौर पर लंबी (90 बउ तक) होती है, जिसमें बड़े, डबल, गोल फूलों के गुच्छे होते हैं, जिनका रंग नींबू और पीले से लेकर सुनहरे पीले, प्रिमरोज और नारंगी तक होता है। बौनी किस्में (20 से 30 सेंमी) भी मिलती हैं। खास किस्मों में जायंट डबल अफ्रीकन ऑरेंज, जायंट डबल अफ्रीकन येलो, क्रैकर जैक, क्लाइमैक्स, डबलून, गोल्डन एज, क्राइसेंथेमम चार्म, क्राउन ऑफ गोल्ड और स्पन गोल्ड शामिल हैं।

**फ्रेंच मैरीगोल्ड (टैगेट्स पटुला):** फ्रेंच मैरीगोल्ड आम तौर पर छोटा और जल्दी खिलने वाला होता है, जिसमें पीले, नारंगी, प्रिमरोज, महोगनी, रस्टी रेड, टैंजेरीन या गहरे लाल रंग के सुंदर सिंगल या डबल फूल होते हैं। हालांकि कई वैरायटी मौजूद हैं जैसे रेड बोराकेड, रस्टी टेड, बटरस्कॉच, वैलेंसिया, सुसाना, लेकिन मार्केट में इसके शानदार लुक की वजह से अफ्रीकन जायंट डबल ऑरेंज वैरायटी को ज्यादा पसंद किया जाता है।

**फाइटोकेमिकल बनावट और इलाज के इस्तेमालः** एस्टेरेसी परिवार से जुड़ा गेंदा न सिर्फ अपनी सजावटी सुंदरता के लिए बल्कि कॉस्मेटिक्स और पारंपरिक दवा में इसके बड़े पैमाने पर इस्तेमाल के लिए भी कीमती है। इसके फूल ज्यादातर पीले होते हैं और इन्हें प्रोसेस करके कीमती कंपाउंड निकाले जाते हैं। इनमें खास है ल्यूटिन सी 40 आइसोप्रेनॉइड बैकबोन वाला एक ऑक्सीकैरोटेनॉयडक्जो चमकीला रंग और एंटीऑक्सीडेंट फायदे देता है। दूसरे फाइटोकेमिकल्स में एक तेज खुशबू वाला एसेंशियल ऑयल (टैगेट्स ऑयल), क्रेरसेटागेटिन और इसके ग्लूकोसाइड डेरिवेटिव, सिरिंजिक एसिड, मिथाइल-3,5-डाइहाइड्रॉक्सी-4-मेथॉक्सी बेंजोएट, क्रेरसेटिन, थिएनिल कंपाउंड और एथिल गैलेट शामिल हैं। ये चीजें कई तरह के दवा वाले गुणों में मदद करती हैं, जिनमें एंटीबैक्टीरियल, एंटीमाइक्रोबियल, लिवर प्रोटेक्टिव, कीटनाशक, मच्छर मारने वाला, नेमाटोसाइडल, घाव भरने वाला, एंटीऑक्सीडेंट और दर्द कम करने वाला काम शामिल हैं। पारंपरिक रूप से, गेंदे के पत्तों का इस्तेमाल बवासीर, किडनी की बीमारियों, मांसपेशियों में दर्द, अल्सर और घावों के इलाज के लिए किया जाता है, जबकि फूलों का इस्तेमाल बुखार, मिर्गी के दौरे (आयुर्वेदिक तरीकों के अनुसार), पाचन संबंधी समस्याओं और लिवर की शिकायतों को ठीक करने में किया जाता है।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



✍ **आशीष कुमार** (सहायक प्रोफ़ेसर), विधि विभाग,
APEX UNIVERSITY, (जयपुर राजस्थान) 302020

# कृषि उपज मंडी समिति अधिनियम (APMC एक्ट)

## प्रस्तावना

कृषि उपज मंडी समिति अधिनियम, जिसे आमतौर पर APMC एक्ट कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण कानून है जो भारत में कृषि बाजारों की संरचना और संचालन को नियंत्रित करता है। यह अधिनियम खेती से जुड़ी गतिविधियों में पारदर्शिता, प्रतिस्पर्धा, और किसानों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से लागू किया गया था। इस लेख में, हम इस अधिनियम का इतिहास, प्रमुख प्रावधान, सामाजिक और आर्थिक प्रभाव, और इसके भविष्य की दिशा पर विस्तार से चर्चा करेंगे। साथ ही, हम यह भी समझेंगे कि यह अधिनियम किसानों, व्यापारियों, और सरकार के लिए क्यों महत्वपूर्ण है।

## अधिनियम का इतिहास और उद्देश्य

कृषि क्षेत्र में मंडियों का गठन सदियों से होता आ रहा है। हालांकि, जब भारत सरकार ने 2000 में यह अधिनियम पारित किया, तब इसे आधुनिक कृषि बाजार के समुचित नियम बनाने का प्रयास माना गया। इसका मुख्य उद्देश्य था किसानों को प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में सही मूल्य दिलाना और व्यापार के नियमों में पारदर्शिता लाना। इस अधिनियम का प्रारंभिक चरण में उद्देश्य था, किसानों और व्यापारियों के बीच विश्वास का निर्माण, और मंडियों को संगठित एवं सुव्यवस्थित करना।

## महत्वपूर्ण प्रावधान और संरचनात्मक बदलाव

यह अधिनियम सरकारी मंडी समिति की स्थापना करता है, जो कृषि उपज की खरीद-बिक्री का संचालन करती है। मंडी समिति, जिसके सदस्य किसान, व्यापारियों, और सरकारी अधिकारी होते हैं, मंडी की निगरानी का कार्य संभालते हैं। इसके अलावा, अधिनियम किसानों को विकल्प प्रदान करता है। उन्हें मंडी के बाहर भी अपनी उपज बेचने का विकल्प है, लेकिन इसके लिए उन्हें न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) या मंडी में उपलब्ध सुविधाओं का लाभ लेने का अधिकार है। नेताओं और नीति निर्माताओं ने इस अधिनियम को इस तरह डिजाइन किया कि इससे कृषि बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़े, और फसलों की कीमतें उचित रहें। इसमे यह भी सुनिश्चित किया गया कि मंडी शुल्क, परिश्रम, और अन्य कर सही तरीके से वसूले जाएं। इस तरह, यह अधिनियम कृषि हितों की रक्षा तथा आर्थिक समावेशन को बढ़ावा देने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

## कृषि उपज मंडी की भूमिका और कार्यप्रणाली

कृषि उपज मंडी का मुख्य कार्य किसान की उपज को व्यवस्थित ढंग से खरीदना और उचित बाजार में भेजना है। मंडियां किसानों को एक स्थान पर लाती हैं, जहां वे अपनी उपज का सही मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही, मंडियां व्यापारियों को भरोसेमंद विक्रय माध्यम प्रदान करती हैं। इससे न केवल किसानों की छवि मजबूत बनती है, बल्कि व्यापार में भी पारदर्शिता आती है। मंडी भी व्यापारियों, सरकारी एजेंसियों, और उपभोक्ताओं के लिए एक केंद्र के रूप में कार्य करती है। इस मंडी व्यवस्था के माध्यम से, किसानों की उपज का सही मूल्यांकन किया जाता है। मसलन, जब किसान मंडी में अपनी उपज बेचता है, तो व्यापारी उसकी उपज का निरीक्षण कर, उसे खरीदा जाता है। फिर, मंडी समिति यह सुनिश्चित करती है कि सभी लेनदेन सही ढंग से हो, मानक अनुसार था या नहीं। इसके अतिरिक्त, मंडियां फसल की क्वालिटी पर भी ध्यान केंद्रित करती हैं, जो बाजार की गुणवत्ता नियंत्रण नीति का हिस्सा है।

## मंडी का डिजिटलीकरण और आधुनिक तकनीक

वर्तमान दौर में, मंडियों का डिजिटलीकरण भी आवश्यक हो गया है। अब, कई मंडियों में डिजिटल ट्रेडिंग प्लेटफार्मे लागू हो चुकी हैं। इससे, किसानों को अपनी उपज का ऑनलाइन विक्रय करने का विकल्प मिला है, और स्थान आधारित सीमाएं कम हुई हैं। डिजिटल माध्यम से, कीमत का परिवर्तनों का तुरंत पता चलता है, जिससे किसानों को सही जानकारी मिलती है। नतीजतन, किसान अधिक प्रभावी निर्णय ले सकते हैं।

## अधिनियम के फायदे और चुनौतियां

यह अधिनियम कई पहानों में लाभकारी साबित हुआ है। सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह किसानों को राष्ट्रीय बाजार से जोड़ता है। इससे उनकी उपज का सही मूल्य मिलने की संभावना बढ़ जाती है। साथ ही, नई मंडी व्यवस्था किसानों को मंडी शुल्क जैसे अतिरिक्त कर से मुक्त कराती है, जिससे उनकी आय बढ़ती है। हालांकि, इस अधिनियम के साथ कई चुनौतियां भी हैं। कुछ व्यापारी और मंडी कर्मचारी इसे प्रतिस्पर्धा के खिलाफ मानते हैं। वे स्वरोजगार के नुकसान का भय भी दिखाते हैं। इसके अतिरिक्त, कई मंडियों में डिजिटल बदलाव को स्वीकार करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसके कारण, कुछ किसान उत्साहित नहीं हैं और पुरानी व्यवस्था से जुड़े रहना चाहते हैं। आसान शब्दों में कहें, तो इस अधिनियम के कार्यान्वयन में अनेक बाधाएं हैं, जिन्हें सुधारने की आवश्यकता है। सरकार को चाहिए कि वह इन चुनौतियों का समाधान हठधर्मी या बढ़ते दबाव के बिना करे। इससे, कृषि क्षेत्र में सुधार संभव होगा और किसानों का जीवन बेहतर बनेगा।

## संशोधन और नई नीतियों का विकास

वर्तमान में, सरकार ने कई सुधारात्मक कदम उठाए हैं। जैसे कि, किसान एग्रीमेंट और फसल बीमा योजनाओं को मजबूत किया गया है। इसके साथ-साथ, ऐप आधारित ट्रेडिंग प्लेटफार्म ओपन किए गए हैं, जो सरल और पारदर्शी हैं। इन कदमों से, किसान और व्यापारी दोनों को सुविधा मिली है। अध्यादेश और नए संशोधन भी समय-समय पर किए जाते हैं, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि कानून का उद्देश्य पूरा हो सके। इसके अंतर्गत, मंडियों के अधिकार, कर निर्धारण, और बाजार की सहभागिता को मजबूत किया जा रहा है। इससे पता चलता है कि इस अधिनियम में निरंतर सुधार हो रहा है, जो किसानों और कृषि व्यापार दोनों के हितों में है।

## निष्कर्ष

अंत में, कहा जा सकता है कि कृषि उपज मंडी समिति अधिनियम 2000, किसानों को अधिकार और बाजार की सुविधाएं प्रदान करने का प्रयास है। यह अधिनियम कृषि क्षेत्र में पारदर्शिता, प्रतिस्पर्धा, और टिकाऊ विकास का स्तंभ बन सकता है। हालांकि, इसके लागू होने में कई चुनौतियां भी हैं। इन चुनौतियों का समाधान आवश्यक है ताकि अधिनियम का उद्देश्य पूरी तरह से हासिल हो सके। सरकार, किसान, और व्यापारी यदि मिलकर काम करें, तो यह अधिनियम भविष्य में मजबूत कृषि बाजार बनाने में सहायक साबित होगा।

## समापन विचार

इस अधिनियम के जरिए हम यह भी समझ सकते हैं कि आधुनिक कृषि बाजार का विकास तभी संभव है, जब सभी पक्ष मिलकर नए सुधारों को स्वीकार करें। किसान जब अधिक जागरूक, समर्थ, और सुरक्षित होंगे, तभी भारत का कृषि क्षेत्र समृद्ध और सशक्त बन पाएगा। अंततः, इस अधिनियम का उद्देश्य अपने किसानों को बजट, सुविधा, और सम्मान देना है। इसलिए, यह जरूरी है कि हम इस कानून को समय-समय पर सुधारें, ताकि प्रत्येक किसान का यह सपना पूरा हो सके कि उसकी मेहनत का उचित फल मिले।

।। श्री गणेशाय नम ।।

फक्कड़ बाबा
खाद बीज भण्डार
खाद बीज एवं कृषि
कीटनाशक दवाईयों
के विक्रेता

सदर बाजार गंज मुरार, ग्वालियर, मोबा. 9926988124, 9340964335
01/2025-26

# केले की खेती के लिए उपयुक्त उन्नत किस्मों की विशेषताएं

पालव जोशी और डॉ. एस.एस. लाखावत
राजस्थान कॉलेज ऑफ एग्रिकल्चर, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर, (राजस्थान)

परिचयः केला (Musa spp.) विश्व के सबसे महत्वपूर्ण फलों में से एक है, जो उत्पादन की दृष्टि से चौथे स्थान पर आता है। यह कार्बोहाइड्रेट और सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर एक प्रमुख आहार फल है, जिसे उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में व्यापक रूप से उगाया जाता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा केला उत्पादक देश है और कुल वैश्विक उत्पादन में लगभग 19.4 प्रतिशत योगदान करता है। हमारे देश में मिट्टी और जलवायु की विविधता के कारण कई किस्में प्रचलन में हैं। किस्म का चयन खेती की सफलता में निर्णायक होता है क्योंकि यह स्थानीय जलवायु अनुकूलन, उपयोग (टेबल और प्रोसेसिंग) तथा रोग-प्रतिरोध जैसी विशेषताओं को प्रभावित करता है। इस लेख में पाँच प्रमुख किस्मों-ग्रैंड नाइन, पूवन, नेय पूवन, मंथन और रेड बनाना की विशेषताओं का तुलनात्मक विवरण दिया जा रहा है।

**ग्रैंड नाइनः** ग्रैंड नाइन, जिसे जी-9 भी कहा जाता है, कैवेंडिश समूह की एक लोकप्रिय वाणिज्यिक किस्म है। भारत में यह ऊतक संवर्धन द्वारा बड़े पैमाने पर लगाई जाती है। पौधे लगभग 1.8 से 2.3 मीटर ऊँचे होते हैं और 10-12 हाथों वाले गुच्छों में 175-225 फल तक दे सकते हैं। यह किस्म लगभग 10-12 महीनों में तैयार हो जाती है और प्रति पौधा 25-35 किलोग्राम तक उत्पादन दे सकती है, जिससे औसतन 60-80 टन प्रति हेक्टेयर उपज मिलती है। फलों का आकार लंबा और बेलनाकार होता है, छिलका गाढ़ा हरा-पीला तथा गूदा मीठा और क्रीमी स्वाद वाला होता है। इसका छिलका अपेक्षाकृत मोटा होने से परिवहन और भंडारण की क्षमता उत्कृष्ट होती है। हालांकि, यह फ्यूजेरियम विल्ट (पनामा रोग) के प्रति संवेदनशील होती है।

**नेय पूवनः** नेय पूवन एक पारंपरिक द्विगुणी किस्म है, जो मुख्यतः तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल में उगाई जाती है। इसके पौधे पतले व लगभग 2.5-3 मीटर ऊँचे होते हैं। गुच्छों का औसत वज़न 12-18 किलोग्राम तक होता है और इन्हें परिपक्व होने में लगभग 11-12 माह लगते हैं। इसके फल सुनहरे पीले रंग के, पाउडरी गूदे वाले और अत्यधिक सुगंधित होते हैं। नेय पूवन का सबसे बड़ा लाभ इसकी अच्छी शेल्फ-लाइफ है, जबकि इसकी कमजोरी फ्यूजेरियम विल्ट और बनाना ब्रैक्ट मोज़ेक वायरस के प्रति संवेदनशीलता है।

**पूवनः** पूवन, दक्षिण भारत की पारंपरिक और व्यावसायिक किस्म है। पौधे लगभग 3 मीटर ऊँचे और बहुवर्षीय प्रकृति के होते हैं। इसके गुच्छे मध्यम आकार के होते हैं जिनमें हाथ आपस में सघन रूप से जुड़े रहते हैं। फल मध्यम आकार के, हल्के खट्टे-मीठे स्वाद और विशिष्ट सुगंध वाले होते हैं। यह किस्म परिवहन और भंडारण के लिए उपयुक्त मानी जाती है। हालांकि, यह किस्म बनाना ब्रैक्ट मोज़ेक वायरस और बनाना स्ट्रिक वायरस के प्रति संवेदनशील है।

**मंथन :** मंथन मुख्यतः पकाने और प्रसंस्करण के लिए प्रसिद्ध किस्म है। इसके पौधे, ऊँचे और मजबूत होते हैं तथा लगभग 12-14 माह में तैयार हो जाते हैं। औसतन इसके गुच्छों का वज़न 18-25 किलोग्राम होता है जिसमें लगभग 60-80 फल पाए जाते हैं। फल अपेक्षाकृत मोटे, पाँच कोणीय आकार के तथा मोटे छिलके वाले होते हैं। गूदा कठोर होता है और पकने पर हल्का पीला दिखाई देता है। यह किस्म सूखा-सहिष्णु मानी जाती है और इसकी पत्तियाँ एवं तना भी उपयोगी हैं। मंथन निमेटोड एवं सिगाटोका पत्ती धब्बा रोग के प्रति सहनशील है, लेकिन फ्यूजेरियम विल्ट के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है। इसके बावजूद प्रसंस्करण उद्योग एवं मिश्रित खेती प्रणालियों में इसकी विशेष भूमिका है।

**रेड बनानाः** रेड बनाना दक्षिण भारत की एक विशिष्ट एवं प्रीमियम डेज़र्ट किस्म है जो विशेषकर केरल और तमिलनाडु में प्रसिद्ध है। इसके पौधे अपेक्षाकृत मजबूत होते हैं और तना तथा फलों के छिलके में लालिमा लिए होते हैं। गुच्छों का वज़न सामान्यतः 15-22 किलोग्राम तक होता है। इसका गूदा क्रीमी, मीठा और नारंगी-पीला होता है, साथ ही विटामिन-C और पोटैशियम से भरपूर होता है। हालांकि, यह किस्म बनाना बंची टॉप वायरस, फ्यूजेरियम विल्ट और निमेटोड्स के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है।

**निष्कर्षः** इन पाँचों किस्मों की खेती विशेषताएँ अपनी-अपनी जगह पर महत्वपूर्ण हैं। ग्रैंड नाइन उच्च उत्पादन और निर्यात के लिए उपयुक्त हैं, जबकि मंथन प्रसंस्करण उद्योग एवं सहनशीलता के लिए उपयोगी है। रेड बनाना स्वाद और प्रीमियम बाजार के लिए आदर्श है, लेकिन रोग-प्रतिकारक क्षमता कम है। नेय पूवन सुगंध और स्वाद के कारण स्थानीय बाजार में लोकप्रिय है, वहीं पूवन बहुउपयोगी पारंपरिक किस्म है, जो फल, पत्ते और रेशे- तीनों के लिए महत्त्व रखती है। सही किस्म का चयन, स्थानीय परिस्थितियों और रोग प्रबंधन रणनीतियों के अनुसार करना चाहिए।

## तुलनात्मक सारणी

| किस्म | पौधे की ऊँचाई | फसल अवधि | गुच्छे का औसत वज़न | फलों की विशेषता | रोग-कीट सहनशीलता/संवेदनशीलता |
|---|---|---|---|---|---|
| ग्रैंड नाइन (AAA) | 1.8-2.4 मीटर | 10-12माह | 25-35किग्रा (175-225 फल) | लंबे, बेलनाकार, मीठे, अच्छी शेल्फ-लाइफ | फ्यूजेरियम विल्ट के प्रति संवेदनशील |
| नेय पूवन (AB) | 2.5-3 मीटर | 11-12 माह | 12-18 किग्रा | सुगंधित, सुनहरे पीले, पाउडरी गूदा | सिगाटोका सहनशील; फ्यूजेरियम व बी.बी.एम.वी. संवेदनशील |
| पूवन (AAB) | 2.5-3.2 मीटर | 11-13 माह | 15-22 किग्रा | हल्का खट्टा-मीठा स्वाद, अच्छी शेल्फ-लाइफ | बी.बी.एम.वी. व बी.एस.वी. संवेदनशील |
| मंथन (ABB) | 3-3.2 मीटर | | | | |
| | 12-14 माह | 18-25 किग्रा (960 फल) | मोटे, पाँच कोणीय, कठोर गूदा | फ्यूजेरियम विल्ट संवेदनशील; निमेटोड व सिगाटोका सहनशील | |
| रेड बनाना (AAA) | 3-3.6 मीटर | 13-16 माह | 15-22 किग्रा | लालिमा लिए छिलका, नारंगी-पीला गूदा, मीठा | बी.बी.टी.वी., फ्यूजेरियम व निमेटोड संवेदनशील |

शीतला कृषि सेवा केन्द्र

बंटी सिंह गुर्जर (बामौर वाले)
99267-31867, 83055-69923
खाद, बीज एवं कीटनाशक दवाओं के थोक एवं खेरिज विक्रेता

हमारे यहां धान, गेहूँ, सोयाबीन, सरसों, तिली एवं सब्जियों के बीज, खाद एवं उच्चकोटि की कीटनाशक दवाईयां उचित मूल्य पर मिलती है।
पता : पशु अस्पताल के सामने, भितरवार रोड, डबरा ग्वालियर (म.प्र.)
01/205-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# वृक्षायुर्वेद आधारित औषधीय पादप विपणन मॉडल

✍ **श्री खेता राम** सहायक आचार्य (वृक्षायुर्वेद), वृक्षायुर्वेद विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान मानद विश्वविद्यालय (डी नोवो), जयपुर

## प्रस्तावना

भारत में औषधीय पादपों की मांग आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध एवं हर्बल उद्योगों के विस्तार के साथ निरंतर बढ़ रही है। परंतु वर्तमान विपणन व्यवस्था में गुणवत्ता, ट्रेसबिलिटी, मूल्य निर्धारण तथा किसान-हित संरक्षण की समस्याएँ विद्यमान हैं। वृक्षायुर्वेद के सिद्धांत–भूमि चयन, बीज शुद्धि, पोषण, संरक्षण एवं सम्यक् संचयन– के आधार पर यदि एक समन्वित विपणन मॉडल विकसित किया जाए, तो गुणवत्तायुक्त औषधीय कच्चे माल की आपूर्ति, किसानों की आय में वृद्धि तथा औषध उद्योग को प्रमाणिक द्रव्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। प्रस्तुत लेख में वृक्षायुर्वेद आधारित औषधीय पादप विपणन मॉडल का स्वरूप, घटक, कार्यप्रणाली एवं लाभों का विवेचन किया गया है।

वृक्षायुर्वेद प्राचीन भारतीय आयुर्वेद का वह शास्त्र है जो पादपों के संवर्धन, पोषण एवं संरक्षण का वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। आज के संदर्भ में औषधीय पादपों का उत्पादन केवल कृषि गतिविधि न होकर एक सशक्त व्यावसायिक अवसर बन चुका है। किंतु बाज़ार तक पहुँच, उचित मूल्य, गुणवत्ता प्रमाणन एवं प्रसंस्करण की कमी किसानों के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ हैं।अतः आवश्यक है कि उत्पादन से लेकर उपभोक्ता तक एक वृक्षायुर्वेद-आधारित एकीकृत विपणन मॉडल तैयार किया जाए।

## वृक्षायुर्वेद आधारित विपणन मॉडल की अवधारणा

**यह मॉडल चार प्रमुख स्तंभों पर आधारित है-**

**(1) गुणवत्तायुक्त उत्पादन (Quality Production)**

देशी बीज एवं रोपण सामग्री का चयन
भूमि परीक्षण एवं दोषानुसार उपचार
जीवामृत, कुणपजल, पंचगव्य आदि का उपयोग
रसायन-मुक्त संरक्षण पद्धति
सम्यक् काल में संचयन (Harvesting at proper stage)

* इससे औषधीय गुणधर्म सुरक्षित रहते हैं और बाजार में उच्च मूल्य प्राप्त होता है।

**(2) प्रमाणन एवं ब्रांडिंग (Certification & Branding)**

वृक्षायुर्वेद आधारित "Quality Assured" टैग
GAP (Good Agricultural Practices) अनुपालन
जैविक प्रमाणन
ट्रेसबिलिटी सिस्टम (फार्म से फैक्ट्री तक)
स्थानीय ब्रांड निर्माण (जैसे-"धन्वंतरि हर्बल प्रोड्यूस")

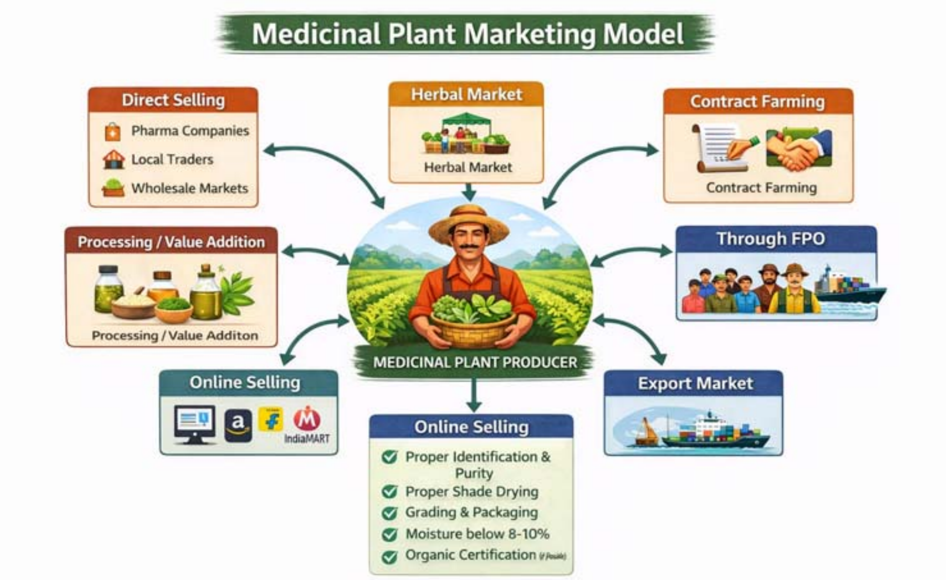

**चित्र:- मॉडल प्रदर्शनी (AI)**

* ब्रांडिंग से उत्पाद की विश्वसनीयता एवं बाजार मूल्य बढ़ता है।

**(3) मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण (Value Addition & Processing)**

* प्राथमिक प्रसंस्करण (सफाई, ग्रेडिंग, सुखाना)
* पाउडर, अर्क, घनसार, तेल निर्माण
* पैकेजिंग एवं लेबलिंग
* छोटे स्तर पर हर्बल उत्पाद निर्माण
* कच्चे माल की बजाय प्रसंस्कृत उत्पाद बेचने से 2-5 गुना अधिक लाभ संभव।

**(4) प्रत्यक्ष विपणन एवं डिजिटल प्लेटफॉर्म (Direct & Digital Marketing)**

* किसान उत्पादक संगठन (FPO) गठन
* औषध निर्माण कंपनियों से MoU
* ई-मार्केटप्लेस (GeM, e-NAM, ऑनलाइन पोर्टल)
"e - charak जैसे मोबाइल ऐप आधारित विपणन
* औषधीय पादप मेले एवं प्रदर्शनी
* बिचौलियों की भूमिका कम होकर किसान को उचित मूल्य मिलता है।

(5) प्रस्तावित विपणन संरचना (Flow Model)

* किसान समूह / FPO
* वृक्षायुर्वेद आधारित उत्पादन एवं गुणवत्ता परीक्षण
* प्राथमिक प्रसंस्करण केंद्र (Collection & Processing Unit)
* ब्रांडिंग एवं पैकेजिंग
* आयुष औषध निर्माण कंपनियाँ / रिटेल / ऑनलाइन प्लेटफॉर्म
* उपभोक्ता

**(6) मॉडल के प्रमुख लाभ**

* गुणवत्तायुक्त औषधीय द्रव्य की उपलब्धता
* किसानों की आय में 30-50% वृद्धि
* निर्यात संभावनाओं में वृद्धि
* पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण
* ग्रामीण रोजगार सृजन
* नीति एवं संस्थागत सहयोग
* राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड (NMPB)- ई चरक प्लेटफॉर्म
* राज्य औषधीय पादप बोर्ड (SMPB)
कृषि विज्ञान केंद्र
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर जैसे शैक्षणिक संस्थान

इन संस्थानों के सहयोग से प्रशिक्षण, बीज बैंक, प्रसंस्करण इकाई एवं विपणन सहायता प्रदान की जा सकती है।

**निष्कर्ष:** वृक्षायुर्वेद आधारित औषधीय पादप विपणन मॉडल पारंपरिक ज्ञान एवं आधुनिक विपणन रणनीति का समन्वित रूप है। यह मॉडल न केवल किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाता है, बल्कि आयुर्वेदिक औषध उद्योग को गुणवत्तायुक्त एवं प्रमाणिक कच्चा माल उपलब्ध कराता है। यदि इस मॉडल को संस्थागत स्तर पर लागू किया जाए, तो भारत औषधीय पादपों के वैश्विक बाजार में अग्रणी स्थान प्राप्त कर सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


जितेंद्र कुमार शर्मा, हर्षवर्धन सिंह शेखावत
विजय कमल मीना, लेखा एवं शक्ति सिंह भाटी
कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

# स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस: आधुनिक और टिकाऊ कृषि का आधार स्तंभ

## प्रस्तावना

बढ़ती जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पिछले दशकों में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अंधाधुंध उपयोग हुआ है। इसका परिणाम मिट्टी की उर्वरता में गिरावट, पर्यावरण प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव के रूप में सामने आया है। इस संकट के समाधान के रूप में जैव-उर्वरक और जैव-कवकनाशी की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। इन्हीं में से एक सबसे प्रभावी और बहुमुखी सूक्ष्मजीव हैंः स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस ।

यह एक ग्राम-निगेटिव, छड़ के आकार का बैक्टीरिया है जो मिट्टी, पानी और पौधों की सतह पर प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। इसे ''फ्लोरेसेंस'' इसलिए कहा जाता है क्योंकि पराबैंगनी प्रकाश के संपर्क में आने पर यह एक पीले-हरे रंग का चमकदार पदार्थ उत्सर्जित करता है।

## 1. स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस की जैविक विशेषताएं

**यह बैक्टीरिया मुख्य रूप से पौधों के राइजोस्फीयर यानी जड़ों के आसपास के क्षेत्र में निवास करता है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:**

**तेजी से प्रसार:** यह अन्य सूक्ष्मजीवों की तुलना में जड़ों पर बहुत तेजी से अपनी कॉलोनी बनाता है।

**प्रतिकूल परिस्थितियों में उत्तरजीविता:** यह विभिन्न प्रकार के तापमान और मिट्टी के पीएच मान में जीवित रहने में सक्षम है।

**बहुआयामी कार्य:** यह न केवल रोगों से लड़ता है, बल्कि पौधों को पोषण देने में भी मदद करता है।

## 2. कार्य करने की प्रणाली

**स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस एक ''सैनिक'' की तरह काम करता है। इसके कार्य करने के मुख्य तरीके इस प्रकार हैं:**

**पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा :** मिट्टी में संसाधनों के लिए संघर्ष होता है। स्यूडोमोनास जड़ों के चारों ओर एक सुरक्षा घेरा बना लेता है। यह हानिकारक फफूंद को भोजन और जगह से वंचित कर देता है, जिससे वे स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं।

**सिडेरोफोर्स का उत्पादन :** लोहा अधिकांश सूक्ष्मजीवों की वृद्धि के लिए आवश्यक है। स्यूडोमोनास 'सिडेरोफोर्स' नामक तत्व पैदा करता है जो मिट्टी में उपलब्ध लोहे को सोख लेता है। इसके परिणामस्वरूप, रोगजनक कवकों को लोहा नहीं मिल पाता और उनकी वृद्धि रुक जाती है।

**एंटीबायोटिक दवाओं का स्त्राव:** यह बैक्टीरिया कई प्राकृतिक एंटीबायोटिक पैदा करता है, जैसेः 2,4-Diacetylphloroglucinol 'DAPG', Phenazine, Pyoluteorin ये रसायन हानिकारक बैक्टीरिया और कवक की कोशिका भित्ति को नष्ट कर देते हैं।

**घ. प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध :** जब स्यूडोमोनास जड़ों के संपर्क में आता है, तो यह पौधे के भीतर एक ''अलार्म'' सक्रिय कर देता है। इससे पौधे की आंतरिक प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत हो जाती है, जिससे पौधा उन बीमारियों से भी लड़ पाता है जो जड़ों से दूर (जैसे पत्तियों पर) होती हैं।

## 3. कृषि में स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस के लाभ

**यह सूक्ष्मजीव किसानों के लिए एक वरदान है। इसके उपयोग से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं:**

**मिट्टी जनित रोगों का नियंत्रण:** यह मिट्टी से होने वाले रोगों जैसे 'जड़ सड़न', 'कॉलर रोट', 'डैम्पिंग ऑफ' और 'फ्युसेरियम विल्ट' को प्रभावी ढंग से रोकता है।

**फसल की वृद्धि में सहायक:** यह कुछ ऐसे हार्मोन (जैसे Auxins और Gibberellins) पैदा करता है जो जड़ों के विकास में मदद करते हैं।

**फास्फोरस का घोलन:** मिट्टी में मौजूद स्थिर फास्फोरस को यह बैक्टीरिया घोलकर पौधों के लिए उपलब्ध कराता है।

**कीट नियंत्रण:** कुछ शोधों के अनुसार, यह मिट्टी में रहने वाले हानिकारक नेमाटोड को भी नियंत्रित करने में सक्षम है।

**मिट्टी की सेहत:** रासायनिक दवाओं के विपरीत, यह मिट्टी की जैविक संरचना को बेहतर बनाता है और केंचुओं जैसे मित्र जीवों को नुकसान नहीं पहुँचाता।

## 4. प्रमुख फसलों में उपयोग

**स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस का उपयोग लगभग सभी प्रकार की फसलों में किया जा सकता है:**

* **अनाज:** धान, गेहूं, मक्का।
* **दलहन:** चना, मूंग, अरहर, उड़द।
* **तिलहन:** सोयाबीन, मूंगफली, सरसों।
* **सब्जियाँ:** टमाटर, मिर्च, बैंगन, गोभी, आलू।
* **फल:** केला, आम, अंगूर, पपीता।

## 5. प्रयोग करने की विस्तृत विधियाँ

अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए इसे सही तरीके से उपयोग करना अनिवार्य हैः

* **बीज उपचार यह सबसे प्रभावी और सस्ती विधि है। विधि:** 10 ग्राम स्यूडोमोनास पाउडर को थोड़े पानी के साथ मिलाकर पेस्ट बनाएं और 1 किलो बीज पर कोटिंग करें। लाभः बीज जनित रोगों से सुरक्षा मिलती है और अंकुरण बेहतर होता है।
* **पौध उपचार सब्जियों के लिए यह विधि सर्वोत्तम है। विधि:** 250 ग्राम पाउडर को 20 लीटर पानी में मिलाएं। पौध लगाने से पहले उसकी जड़ों को 20-30 मिनट तक इस घोल में डुबोकर रखें।
* **मृदा उपचार विधि:** 2 से 2.5 किलो स्यूडोमोनास पाउडर को 100 किलो अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट में मिलाएं। इस मिश्रण को एक एकड़ खेत में बुवाई के समय या पहली सिंचाई के दौरान फैला दें।
* पर्णीय छिड़काव पत्तियों पर होने वाले रोगों (जैसे ब्लास्ट या झुलसा) के लिए।

**विधि:** 5-10 ग्राम पाउडर प्रति लीटर पानी में मिलाकर शाम के समय छिड़काव करें।

## 6. सावधानी और सीमाएं

**स्यूडोमोनास एक जीवित जीव है, इसलिए इसके उपयोग में कुछ सावधानियां बरतनी चाहिए:**

* **रसायनों से बचाव:** इसे कभी भी रासायनिक कवकनाशी या कीटनाशकों के साथ न मिलाएं। यदि रासायनिक दवा का उपयोग किया गया है, तो कम से कम 10 दिनों का अंतर रखें।
* **भंडारण:** इसे सीधी धूप और उच्च तापमान से दूर ठंडी और सूखी जगह पर रखें।
* **एक्सपायरी डेट:** उपयोग करने से पहले पैकेट पर निर्माण की तारीख जरूर जांचें, क्योंकि पुराने पैकेट में जीवित बैक्टीरिया की संख्या कम हो सकती है।
* **समय:** छिड़काव हमेशा सुबह या शाम के समय करें जब धूप कम हो।

## 7. भविष्य की संभावनाएं

आज के युग में जहाँ ''जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग'' और ''जैविक खेती'' पर जोर दिया जा रहा है, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस एक अनिवार्य घटक बन गया है। शोधकर्ता अब इसकी ऐसी प्रजातियां विकसित कर रहे हैं जो सूखे और खारेपन को भी सहन कर सकें, ताकि जलवायु परिवर्तन के दौर में भी फसल सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

## 8. निष्कर्ष

स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस न केवल फसल की रक्षा करता है बल्कि उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा में भी सुधार करता है। यह किसानों की खेती की लागत को कम करने और पर्यावरण को रसायनों के बोझ से मुक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। यदि किसान वैज्ञानिक विधि से इसका नियमित उपयोग करें, तो वे अपनी आय बढ़ाने के साथ-साथ स्वस्थ भविष्य की नींव भी रख सकते हैं।

# कृषि में टिकाऊ/पुनर्योजी खेती (Regenerative Agriculture)

**अनिल जाखड़** विद्यावाचस्पति, सस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

**प्रियंका चौधरी** विद्यावाचस्पति, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

**राहुल जाखड़** विद्यावाचस्पति, सस्य विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

**प्रियंका चौधरी** विद्यावाचस्पति, वनस्पति विज्ञान विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

**शैली पुरोहित** स्नातकोत्तर, उद्यान विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

**प्रस्तावना:** वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में कृषि केवल खाद्यान्न उत्पादन का माध्यम नहीं रही, बल्कि यह पर्यावरणीय स्थिरता, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और मानव स्वास्थ्य से गहराई से जुड़ी हुई एक जटिल प्रणाली बन चुकी है। बीसवीं शताब्दी के मध्य में हरित क्रांति के परिणामस्वरूप उच्च उत्पादक किस्मों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई सुविधाओं के व्यापक उपयोग से उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इसने खाद्य सुरक्षा को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। तथापि, दीर्घकाल में इसके दुष्परिणाम भी सामने आए, जैसे मिट्टी की जैविक उर्वरता में गिरावट, कार्बनिक कार्बन की कमी, भूजल स्तर में निरंतर ह्रास, भूमि क्षरण और जैव विविधता में कमी। इन समस्याओं ने यह स्पष्ट किया कि केवल उत्पादन-केंद्रित कृषि मॉडल दीर्घकालीन समाधान नहीं दे सकता। इसी पृष्ठभूमि में टिकाऊ और पुनर्योजी खेती 'Regenerative Agriculture' की अवधारणा विकसित हुई, जिसका उद्देश्य कृषि को ऐसी दिशा में ले जाना है जहाँ उत्पादन के साथ-साथ संसाधनों का पुनर्निर्माण और संरक्षण भी सुनिश्चित हो।

**पुनर्योजी खेती की अवधारणा और विकास-** पुनर्योजी खेती का मूल विचार यह है कि कृषि प्रणाली को प्राकृतिक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं के अनुरूप बनाया जाए। यह पद्धति मिट्टी को एक ÷जीवित इकाई÷ मानती है, जिसमें सूक्ष्मजीव, केंचुए, कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों का जटिल जाल मौजूद होता है। यदि इस तंत्र को संतुलित रखा जाए, तो मिट्टी स्वयं अपनी उर्वरता और उत्पादकता बनाए रखने में सक्षम होती है। पुनर्योजी खेती का विकास संरक्षण कृषि, जैविक खेती और पारंपरिक ज्ञान के समन्वय से हुआ है। इसमें आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान का उपयोग करते हुए ऐसे उपाय अपनाए जाते हैं जो मिट्टी में कार्बन संचयन बढ़ाएँ, जल संरक्षण करें और जैव विविधता को प्रोत्साहित करें।

## प्रमुख सिद्धांत

1. **न्यूनतम जुताई-** अत्यधिक जुताई मिट्टी की संरचना को कमजोर करती है और कार्बन को वायुमंडल में छोड़ देती है। न्यूनतम या शून्य जुताई से मिट्टी की भौतिक संरचना सुरक्षित रहती है, जिससे जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीव गतिविधि बढ़ती है।

2. **फसल चक्र और विविधता-**एक ही फसल को लगातार उगाने से मिट्टी के विशिष्ट पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तथा कीट-रोग चक्र स्थायी हो जाते हैं। फसल चक्र अपनाने से पोषक संतुलन बना रहता है। दलहनी फसलों के समावेश से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता है। मिश्रित एवं बहुफसली प्रणाली जोखिम को कम करती है और आय के स्रोतों को विविध बनाती है।

### 3. आच्छादन 'Cover Cropping'

मिट्टी को खुला छोड़ने से कटाव और नमी ह्रास होता है। कवर फसलें या फसल अवशेष मिट्टी की सतह को ढककर रखते हैं जिससे नमी संरक्षण, तापमान संतुलन और खरपतवार नियंत्रण संभव होता है। साथ ही, जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है।

### 4. जैविक इनपुट का प्रयोग

गोबर खाद, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद और जैव उर्वरकों का उपयोग मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बढ़ाता है। इससे पोषक तत्वों का प्राकृतिक चक्रण सुदृढ़ होता है और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटती है।

### 5. कृषि वानिकी और पशुधन एकीकरण

पेड़ों, फसलों और पशुधन को एकीकृत करने से कृषि प्रणाली अधिक संतुलित बनती है। वृक्ष कार्बन संचयन में सहायक होते हैं और पशुधन से प्राप्त जैविक खाद मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती है।

## मिट्टी स्वास्थ्य पर प्रभाव

मिट्टी की गुणवत्ता किसी भी कृषि प्रणाली की सफलता का आधार है। पुनर्योजी खेती के माध्यम से मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने पर उसकी संरचना दानेदार और स्थिर हो जाती है। इससे वायु संचार और जल निकास संतुलित रहते हैं। जैविक कार्बन में वृद्धि से सूक्ष्मजीव समुदाय सक्रिय होता है, जो पोषक तत्वों के खनिजीकरण और पौधों की जड़ों तक उनकी उपलब्धता सुनिश्चित करता है। परिणामस्वरूप फसल की जड़ें गहरी और मजबूत होती हैं, जिससे सूखा सहनशीलता बढ़ती है।

## जलवायु परिवर्तन शमन में भूमिका

पुनर्योजी खेती को जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में महत्वपूर्ण समाधान के रूप में देखा जा रहा है। मिट्टी में कार्बन संचयन की क्षमता बढ़ने से वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को कम करने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त, यह प्रणाली सूखा, अनियमित वर्षा और बाढ़ जैसी परिस्थितियों में भी फसल को स्थिर बनाए रखने में सहायक होती है। जल उपयोग दक्षता में सुधार होने से सीमित संसाधनों का बेहतर उपयोग संभव होता है।

## सामाजिक एवं आर्थिक महत्व

पुनर्योजी खेती केवल पर्यावरणीय लाभ तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक और आर्थिक महत्व भी है। रासायनिक इनपुट की आवश्यकता कम होने से उत्पादन लागत घटती है। बहुफसली और विविधीकृत प्रणाली किसानों को बाजार जोखिम से बचाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में जैविक खाद निर्माण, बीज उत्पादन और प्रसंस्करण जैसे सहायक कार्यों से रोजगार के अवसर बढ़ सकते हैं। दीर्घकाल में यह प्रणाली किसानों की आय को स्थिर बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

## भारत में संभावनाएँ और पहल

भारत में अधिकांश किसान छोटे और सीमांत हैं, जिनकी आय और संसाधन सीमित हैं। भूमि क्षरण, भूजल संकट और जलवायु अस्थिरता जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। ऐसे परिदृश्य में पुनर्योजी खेती व्यवहारिक समाधान प्रदान कर सकती है। सरकार द्वारा प्राकृतिक खेती, जैविक कृषि और कृषि वानिकी को प्रोत्साहन देना इस दिशा में सकारात्मक संकेत है। यदि प्रशिक्षण, अनुसंधान और बाजार समर्थन को मजबूत किया जाए, तो इस प्रणाली का व्यापक विस्तार संभव है।

## लाभ

* मिट्टी की दीर्घकालीन उर्वरता में वृद्धि
* जल संरक्षण और बेहतर जल प्रबंधन
* उत्पादन लागत में कमी
* फसल गुणवत्ता और पोषण मूल्य में सुधार
* जैव विविधता का संरक्षण
* जलवायु अनुकूल कृषि प्रणाली का विकास

## चुनौतियां

* प्रारंभिक संक्रमण अवधि में उत्पादन में संभावित कमी
* किसानों में जागरूकता की कमी
* तकनीकी मार्गदर्शन का अभाव
* बाजार संरचना और प्रमाणन संबंधी कठिनाइयाँ

इन चुनौतियों के समाधान हेतु नीति समर्थन, अनुसंधान और विस्तार सेवाओं को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

## निष्कर्ष

पुनर्योजी खेती कृषि के लिए एक दूरदर्शी और समग्र समाधान प्रस्तुत करती है। यह उत्पादन और संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। वर्तमान पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन की पृष्ठभूमि में इसकी प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। यदि इसे वैज्ञानिक अनुसंधान, किसान सहभागिता और नीति समर्थन के माध्यम से व्यापक रूप से अपनाया जाए, तो यह भविष्य की टिकाऊ कृषि व्यवस्था का आधार बन सकती है।

# नदी तल पर कद्दूवर्गीय सब्जियां की खेती से असामयिक आय

✍ **सृष्टि, प्रतिभा सिंह** पीएच.डी. शोधार्थी, सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश-173230

✍ **डॉ. आंचल चौहान** सहायक प्रोफेसर, सब्जी विज्ञान विभाग, बागवानी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश-173230

***सारांश: नदी तल पर खेती करना मानसून की समाप्ति के बाद नदी-तटीय क्षेत्रों में अपनाई जाने वाली एक पारंपरिक, फिर भी प्रभावी, मौसमी सब्जी उत्पादन प्रणाली है। मिट्टी में बची नमी, उपजाऊ जलोढ़ निक्षेपों और अनुकूल सूक्ष्म जलवायु परिस्थितियों का उपयोग करके, किसान तरबूज, खरबूजा, खीरा, लौकी और करेला जैसी कद्दूवर्गीय फसलों को न्यूनतम बाहरी संसाधनों के साथ उगाते हैं। ये जल्दी पकने वाली फसलें बाजार में उच्च मूल्य प्राप्त करती हैं, जिससे नदी तल पर खेती छोटे और सीमांत किसानों के लिए एक टिकाऊ और जलवायु-अनुकूल आजीविका विकल्प बन जाती है।***

**प्रस्तावना:** सब्जी की खेती आय विविधीकरण और पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, फिर भी पारंपरिक उत्पादन अक्सर मौसमी जल संकट, जलवायु परिवर्तनशीलता और बढ़ती लागतों से बाधित होता है। कई नदी घाटियों में, बाढ़ का पानी उतरने के बाद उपजाऊ नदी तल रेत और पोषक तत्वों से भरपूर गाद से समृद्ध होने के बावजूद अप्रयुक्त रह जाते हैं। नदी तल की खेती इन अस्थायी भूभागों को उत्पादक ऑफ-सीजन कृषि क्षेत्रों में परिवर्तित कर देती है, जिससे बाजार में आपूर्ति कम होने पर भी सब्जियां उगाई जा सकती हैं। कद्दूवर्गीय फसलें अपनी अनुकूलनशीलता, तीव्र वृद्धि और उच्च मांग के कारण इस प्रणाली के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं, जिससे नदी तल की खेती कृषि आय बढ़ाने और जलवायु एवं आर्थिक अनिश्चितताओं के प्रति लचीलापन बनाने की एक प्रभावी रणनीति बन जाती है।

## नदी तल की खेती की अवधारणा और सिद्धांत

* मानसून के बाद (नवंबर-अप्रैल) नदी तल और किनारों पर की जाने वाली खेती।
* रेतीली मिट्टी में बची हुई नमी का उपयोग करती है।
* बाढ़ के पानी द्वारा छोड़े गए पोषक तत्वों से भरपूर जलोढ़ निक्षेपों का उपयोग करती है।
* गर्म मिट्टी के तापमान के साथ अनुकूल शीतकालीन सूक्ष्म जलवायु से लाभान्वित होती है।

* किसान नम मिट्टी की परतों तक पहुँचने के लिए गड्ढे या खाइयाँ खोदते हैं और जैविक पदार्थ मिलाते हैं।
* बीज सीधे बोए जाते हैं, जिससे न्यूनतम सिंचाई और बाहरी संसाधनों की आवश्यकता होती है।
* कम लागत वाली प्रकृति इसे संसाधन-गरीब और छोटे किसानों के लिए उपयुक्त बनाती है।

**नदी तल की खेती के लिए कद्दूवर्गीय सब्जियां आदर्श क्यों हैं?**

**कद्दूवर्गीय सब्जियों में कई जैविक गुण होते हैं जो उन्हें नदी तल की परिस्थितियों के लिए आदर्श बनाते हैं-**

* नमी सोखने के लिए गहरी और फैली हुई जड़ प्रणाली
* कम फसल अवधि (60-90 दिन)
* रेतीली और हल्की मिट्टी के प्रति उच्च सहनशीलता
* ऑफ-सीजन महीनों के दौरान मजबूत बाजार मांग

**आमतौर पर उगाई जाने वाली कद्दूवर्गीय सब्जियां:** तरबूज, खरबूजा, खीरा, लौकी, तोरी, करेला और कद्दू खेत में उगाई जाने वाली फसलों की तुलना में जल्दी पक जाते हैं, जिससे किसानों को बाजारों तक जल्दी पहुंचने में मदद मिलती है। जल्दी उपलब्धता से मांग बढ़ती है और उनकी उपज के लिए बेहतर दाम सुनिश्चित होते हैं।

## फसल उत्पादन पद्धतियां

**1.स्थान चयन और भूमि तैयारी:** बाढ़ के न्यूनतम जोखिम वाले ऊंचे नदी तल का चयन किया जाता है। गड्ढे खोदे जाते हैं और नमी बनाए रखने के लिए जैविक पदार्थ से मिश्रित मिट्टी से भरे जाते हैं।

**2.बुवाई और फसल स्थापना:** बीजों को बुनियादी उपचार के बाद सीधे गड्ढों में बोया जाता है। नमी बनाए रखने और खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए पुआल या सूखे पत्तों की मल्चिंग का उपयोग किया जाता है।

**3.पोषक तत्व प्रबंधन:** मुख्य रूप से जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट और खली का उपयोग किया जाता है, और सीमित मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग केवल आवश्यकता पड़ने पर ही किया जाता है।

**4.सिंचाई और नमी प्रबंधन:** फसलें काफी हद तक मिट्टी में बची नमी पर निर्भर करती हैं, और लंबे समय तक सूखे की स्थिति में कभी-कभी पूरक सिंचाई की जाती है।

**5.कीट और रोग प्रबंधन:** शीतकालीन मौसम में कीटों का प्रकोप कम होने के कारण नीम आधारित उत्पादों, राख और मैन्युअल नियंत्रण पर निर्भरता बनी रहती है, जिससे कम रासायनिक खेती पद्धतियों को बढ़ावा मिलता है।

## आर्थिक व्यवहार्यता और लाभप्रदता

**नदी-तल की खेती से निम्न कारणों से अच्छा आर्थिक लाभ मिलता है-**

* खेती की लागत बहुत कम * जल्दी कटाई और बेहतर बाजार मूल्य * सिंचाई और उर्वरक के खर्च में कमी

तरबूज और खरबूजे जैसी फसलें मौसमी सब्जी की खेती की तुलना में अक्सर 2-3 गुना अधिक शुद्ध लाभ देती हैं। कृषि में मंदी के दौर में यह आय विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है।

**जलवायु अनुकूलन, स्थिरता और बाज़ार के अवसर:** नदी-तल पर खेती करना जलवायु के अनुकूल कृषि प्रणाली के रूप में कार्य करता है, क्योंकि यह मिट्टी की अवशिष्ट नमी का कुशलतापूर्वक उपयोग करता है, सिंचाई पर निर्भरता कम करता है और अनिश्चित वर्षा और तापमान की स्थितियों में बाहरी संसाधनों को न्यूनतम करता है। सीमित बाज़ार आपूर्ति के कारण, ऑफ-सीज़न कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती से प्रीमियम मूल्य प्राप्त होते हैं, और सामूहिक विपणन, किसान समूहों और सीधे उपभोक्ताओं को बिक्री के माध्यम से आय को और बढ़ाया जा सकता है, जिससे किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्ति प्राप्त होती है।

## बाधाएँ और जोखिम

**नदी तल पर खेती करने के फायदों के बावजूद, इसमें कई चुनौतियां हैं-** * अचानक बाढ़ से फसलों को नुकसान का खतरा * अस्थायी और अनौपचारिक भूमि स्वामित्व * उन्नत किस्मों और तकनीकी मार्गदर्शन तक सीमित पहुँच * खराब बुनियादी ढाँचा और परिवहन सुविधाएँ

फसल बीमा, पूर्व चेतावनी प्रणाली और संस्थागत सहायता के माध्यम से जोखिम कम करना आवश्यक है।

**निष्कर्ष:** नदी तल पर कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती एक कम लागत वाली, उच्च लाभ वाली और जलवायु-अनुकूल कृषि पद्धति है जो मौसमी नदी तलों को उत्पादक संसाधनों में परिवर्तित करती है। न्यूनतम संसाधनों के साथ ऑफ-सीजन सब्जियों के उत्पादन को सक्षम बनाकर, यह किसानों की आय बढ़ाती है, ग्रामीण आजीविका का समर्थन करती है और खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में योगदान देती है। उचित तकनीकी सहायता, जोखिम प्रबंधन और नीतिगत मान्यता के साथ, नदी तल पर खेती सतत और समावेशी कृषि विकास का एक शक्तिशाली साधन बन सकती है।

# माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषणः समस्या, परिणाम और निवारक उपाय

**श्वेता यादव** शोध छात्रा, आईसीएआर-आईसीएआर-राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (132001), हरियाणा

**डॉ. कृशानु** वरिष्ठ शोध अध्येता, आईसीएआर-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान केंद्र करनाल, हरियाणा

**शची तिवारी** शोध छात्रा, विभाग वनस्पति विज्ञान, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय मेरठ 250005 (उ.प्र.)

## परिचय

**माइक्रो प्लास्टिक के बारे में:** समुद्र में जाने वाला प्लास्टिक विघटित होता है और टूट कर माइक्रोप्लास्टिक के रूप में सामने आता है। माइक्रोप्लास्टिक प्लास्टिक के वे कण होते हैं, जिनका व्यास 5 मिमी से कम होता है।

## वर्गीकरण

**प्राथमिक माइक्रोप्लास्टिक:** वे छोटे कण होते हैं जिन्हें व्यावसायिक उपयोग हेतु डिज़ाइन किया जाता है और माइक्रोफाइबर कपड़ों और अन्य वस्त्रों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है।

**उदाहरण:** व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों, प्लास्टिक छर्रों और प्लास्टिक फाइबर में पाए जाने वाले माइक्रोबीड्स।

**द्वितीयक माइक्रोप्लास्टिक्स:** ये पानी की बोतलों जैसे बड़े प्लास्टिक के टूटने से बनते हैं।

## माइक्रोप्लास्टिक से खतरा

**समुद्री मलबा:** IUCN के अनुसार, हर साल कम-से-कम 8 मिलियन टन प्लास्टिक महासागरों में जाता है और यह सतही जल से लेकर गहरे समुद्र में तलछट तक सभी समुद्री मलबे का लगभग 80% हिस्सा है। यूएनईपी के अनुसार, पिछले चार दशकों में समुद्र के सतही जल में इन कणों की सांद्रता में काफी वृद्धि हुई है।

**समुद्री जीवन पर प्रभाव:** सबसे अधिक दिखाई देने वाले और खतरनाक प्रभावों में सैकड़ों समुद्री प्रजातियों का दम घुटना और उनका जीवन संकट में पड़ना शामिल है। मछली, केकड़े और झींगे जैसे समुद्री जीव इन माइक्रोप्लास्टिक को भोजन के रूप में निगल लेते हैं।

**मनुष्य पर प्रभाव:** मनुष्य इन समुद्री जीवों का समुद्री भोजन के रूप में सेवन करते हैं, जिससे कई स्वास्थ्य जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर द्वारा किये गए एक अध्ययन से पता चला है कि एक औसत व्यक्ति 5 ग्राम प्लास्टिक का उपभोग करता है।

**माइक्रोप्लास्टिक पर WHO:** विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) का दावा है कि पीने के पानी में माइक्रोप्लास्टिक का स्तर अभी तक मनुष्यों के लिये खतरनाक नहीं है, लेकिन भविष्य में संभावित जोखिम को देखते हुए और अधिक शोध किये जाने की आवश्यकता है।

150 माइक्रोमीटर से बड़े माइक्रोप्लास्टिक के मानव शरीर द्वारा अवशोषित होने की संभावना नहीं है, लेकिन नैनो आकार के प्लास्टिक सहित बहुत छोटे माइक्रोप्लास्टिक कणों को अवशोषित करने की संभावना अधिक होती है।

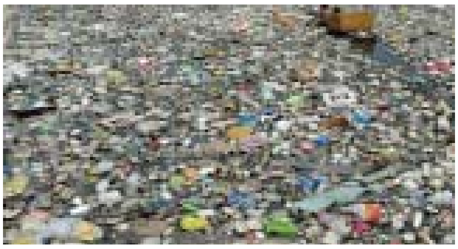

पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या को दर्शाता प्लास्टिक कचरे का विशाल ढेर

**पहल**

**वैश्विक पहल:**

**समुद्री कचरे पर वैश्विक भागीदारी (Global Partnership on Marine Litter - GPML):** मनीला घोषणा में उल्लिखित एक अनुरोध के प्रत्युत्तर में GMPL को वर्ष 2012 में पृथ्वी शिखर सम्मेलन में लॉन्च किया गया था। मनीला घोषणा के तहत 65 हस्ताक्षरकर्ताओं ने उर्वरकों से अपशिष्ट जल, समुद्री कूड़े और प्रदूषण में कमी तथा उसे नियंत्रित करने हेतु नीतियाँ विकसित करने की अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि की।

**G7 शिखर सम्मेलन:** जर्मनी के बवेरिया में वर्ष 2015 में आयोजित G7 शिखर सम्मेलन में नेताओं की घोषणा में माइक्रोप्लास्टिक्स के जोखिमों को स्वीकार किया गया था।

**ग्लोलिटर (GloLitter) पार्टनरशिप प्रोजेक्ट:** IMO और FAO द्वारा शुरू किया गया है, इसका उद्देश्य शिपिंग और मत्स्य पालन के कारण फैलने वाले समुद्री प्लास्टिक कूड़े को रोकना और कम करना है। समुद्री कूड़े से निपटने की इस वैश्विक पहल में भारत समेत 30 देश शामिल हैं।

**लंदन कन्वेंशन, 1972:** डंपिंग वेस्ट और अन्य मैटर द्वारा समुद्री प्रदूषण की रोकथाम को लेकर वर्ष 1972 में आयोजित कन्वेंशन पर समुद्री प्रदूषण के सभी स्रोतों को नियंत्रित करने और अपशिष्ट पदार्थों के समुद्र में डंपिंग के नियमन के माध्यम से समुद्र के प्रदूषण को रोकने हेतु हस्ताक्षर किये गए थे। लंदन कन्वेंशन के लिये वर्ष 1996 प्रोटोकॉल (लंदन प्रोटोकॉल) और जहाज़ों से प्रदूषण की रोकथाम के लिये वर्ष 1978 प्रोटोकॉल इंटरनेशनल कन्वेंशन (MARPOL) इसी तरह की अन्य पहलें हैं।

**विश्व पर्यावरण दिवस, 2018:** इसका आयोजन भारत में किया गया था, दुनिया के नेताओं ने "प्लास्टिक प्रदूषण को मात देने" और इसके उपयोग को पूरी तरह से समाप्त करने की कसम खाई थी।

**प्लास्टिक पैक्ट्स:** प्लास्टिक पैक्ट्स सभी प्रारूपों और उत्पादों के लिये प्लास्टिक पैकेजिंग मूल्य श्रृंखला को बदलने हेतु व्यवसाय आधारित पहल है। वे व्यावहारिक समाधानों को लागू करने के लिये प्लास्टिक मूल्य श्रृंखला के सभी लोगों को एक साथ लाते हैं। पहला प्लास्टिक पैक्ट वर्ष 2018 में यूनाइटेड किंगडम में लॉन्च किया गया था।

**भारत द्वारा शुरू की गई पहलें**

**एकल-उपयोग प्लास्टिक का उन्मूलन:** वर्ष 2019 में भारत के प्रधानमंत्री ने दिल्ली शहरी क्षेत्र में तत्काल प्रतिबंध के साथ वर्ष 2022 तक देश में सभी एकल-उपयोग वाले प्लास्टिक को खत्म करने का संकल्प लिया।

**महत्वपूर्ण नियम:** प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन नियम, 2016 में कहा गया है कि प्लास्टिक कचरे के पृथक्करण, संग्रहण, प्रसंस्करण और निपटान हेतु बुनियादी ढाँचे की स्थापना के लिये प्रत्येक स्थानीय निकाय को ज़िम्मेदार होना चाहिये। प्लास्टिक अपशिष्ट प्रबंधन (संशोधन) नियम, 2018 ने विस्तारित उत्पादक उत्तरदायित्व (Extended Producer Responsibility) की अवधारणा पेश की।

**अन-प्लास्टिक कलेक्टिव (Un-Plastic Collective):** अन-प्लास्टिक कलेक्टिव (UPC) यूएनईपी-इंडिया, भारतीय उद्योग परिसंघ और डब्ल्यूडब्ल्यूएफ-इंडिया द्वारा शुरू की गई एक स्वैच्छिक पहल है। यह हमारे ग्रह के पारिस्थितिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर प्लास्टिक के कारण उत्पन्न होने वाले खतरों को कम करने का प्रयास करता है।

**संबंधित मुद्दे**

**इस क्षेत्र में कम शोध:** माइक्रोप्लास्टिक्स पर कम शोध किया जाता है, शायद इसलिये कि उन्हें पहचानना मुश्किल है। उन्हें नग्न आँखों से नहीं पहचाना जा सकता है, इसके लिये स्पेक्ट्रोफोटोमीटर जैसे परिष्कृत उपकरणों की आवश्यकता होती है। मैंग्रोव, प्रवाल भित्तियों और केल्प्स जैसे पारिस्थितिक रूप से समृद्ध क्षेत्रों पर माइक्रोप्लास्टिक के प्रभाव का भी अच्छी तरह से अध्ययन नहीं किया गया है।

**दूरदराज़ के क्षेत्रों में उपलब्धता:** हाल के दिनों में माइक्रोप्लास्टिक्स की उपस्थिति को रिमोट एरिया, जैसे-माउंट एवरेस्ट, आर्कटिक बर्फ, आइसलैंड के ग्लेशियर, फ्रेंच पाइरेनीज़ और मारियाना ट्रेंच की गहराई में भी दर्ज किया गया है। यह अत्यधिक खतरनाक है क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में प्लास्टिक प्रदूषक कचरे को इकट्ठा करने और प्रबंधित करने की सरकारों की क्षमता कम है।

**सरकार की ओर से गैर-ज़िम्मेदारी:** भारत में लगातार सरकारों ने कचरा प्रबंधन नियम जारी किये हैं, लेकिन कार्यान्वयन के स्तर पर इसमें कोई खास सुधार नहीं हुआ है।

**वर्तमान क्षरण तंत्र की अक्षमता:** फोटोडिग्रेडेशन और जैविक क्षरण माइक्रोप्लास्टिक को पूरी तरह नष्ट करने के बजाय छोटे टुकड़ों में तोड़ते हैं।

**आगे की राह:** कमी करना, पुनः उपयोग करना और पुनर्चक्रण करना विश्व में माइक्रोप्लास्टिक संकट से निपटने का मूल मंत्र होना चाहिए। * घरेलू अपशिष्टों के निष्पादन हेतु खुले में भराव और जलाने पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। * माइक्रोप्लास्टिक के विकल्प के रूप में जैव-प्लास्टिक को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। * स्वच्छ भारत मिशन की तर्ज पर जन-जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए। * सरकार, उद्योग, समुदाय और नागरिक समाज के बीच सहयोग आवश्यक है।

**निष्कर्ष:** माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण एक वैश्विक संकट है जिससे निपटने के लिये पेरिस समझौते की तर्ज पर अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित करना पारिस्थितिकी तंत्र और मानव स्वास्थ्य की रक्षा के लिये अनिवार्य है।

# सब्जी फसलों में मधुमक्खी पालन: वैज्ञानिक प्रबंधन एवं वर्षभर शहद और अन्य मधु उत्पाद उत्पादन

**रोहित** पीएच.डी. शोधार्थी, सब्जी विज्ञान विभाग
**गीता देवी एवं पंकज कुमार** कीट विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार-125004, (हरियाणा)

## परिचय

सब्ज़ी फसलों के साथ मधुमक्खी पालन न केवल शहद का निरंतर उत्पादन सुनिश्चित करता है, बल्कि सब्ज़ियों में परागण (Pollination) द्वारा उपज और गुणवत्ता को भी बढ़ाता है। मधुमक्खी पालन से शहद, मोम (Beeswax), पराग (Bee pollen), रॉयल जेली (Royal jelly) तथा प्रोपालिस जैसे बहुमूल्य उत्पाद मिलते हैं, जो किसानों की आय में वृद्धि करते हैं।

## सब्ज़ी फसलों में मधुमक्खियों का वैज्ञानिक डेटा

**परागण से उपज में वृद्धि**

* मधुमक्खी द्वारा परागण से मूली में 22-100% तक, पत्ता गोभी में 100-300% तथा खीरा में 21.1-411% तक बढ़ोतरी दर्ज की गई है।
* बीच (Broad bean) और गाजर जैसी फसलों में भी परागण से उपज और बीज गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार होता है।

**परागण का महत्व**

* मधुमक्खियों के बिना सब्ज़ियों का परागण अधूरा रह सकता है, जिससे फल/बीज का आकार, वजन और गुणवत्तात्मक विशेषताएं प्रभावित होती हैं।

यह वैज्ञानिक डेटा स्पष्ट रूप से दिखाता है कि मधुमक्खी पालन न सिर्फ शहद उत्पादन का स्रोत है, बल्कि सब्ज़ियों की पैदावार और गुणवत्ता सुधार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

## वर्षभर शहद उत्पादन के लिए प्रबंधन

**1. छत्ते का चयन और रख-रखाव**

* मधुमक्खी छत्तों (Hives) को ऐसी जगह पर स्थापित करें जहाँ आसपास फूलों की विविधता हो ताकि वर्ष भर मधुमक्खियों को भोजन (Nectar & Pollen) उपलब्ध रहे।
* **छत्तों की क्षमता:** प्रत्येक छत्ते में कम से कम 4-6 फ्रेम्स के साथ एक स्वस्थ, युवा रानी होनी चाहिए।

**2. सही स्थान और समय पर स्थानांतरण**

* जब फसल में फूल आने लगें (10-15% फूल खुलने पर), तब छत्तों को खेत के करीब ले जाएँ ताकि मधुमक्खियाँ आसानी से परागण कार्य कर सकें।
* मानसून बाद, रबी व गर्मी सीज़न में अलग-अलग फूलों के अनुसार स्थान परिवर्तन से वर्षभर के लिए उपलब्ध फूल संसाधनों का लाभ उठाया जा सकता है।

**3. उपयुक्त संख्या में छत्तों का प्रावधान**

* औसतन 3-9 मधुमक्खी छत्तों प्रति हेक्टेयर पर्याप्त माना जाता है, यह फसल, मौसम और भू-आकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

**4. रोग और कीट प्रबंधन**

* नियमित रूप से जांचें कि कॉलोनी में रोग या परजीवी तो नहीं हैं। इसके लिए आवश्यक दवा, भोजन की उपलब्धता और पर्यावरण का ध्यान रखना जरूरी है।
* कीटनाशकों का उपयोग फूल आने के समय न करें; एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) अपनाएं ताकि मधुमक्खी स्वास्थ्य प्रभावित न हो।

**5. मौसमी प्रबंधन**

* सर्दियों या संसाधन की कमी वाले महीनों में अतिरिक्त भोजन (Sugar syrup/Carbohydrate feed) उपलब्ध कराएं ताकि कॉलोनी स्वस्थ रहे।

## वर्षभर शहद और अन्य मधु उत्पाद का उत्पादन

* **शहद:** ठीक प्रबंधन पर एक मधुमक्खी वंश से पहले साल में 20-25 किग्रा तथा दूसरे साल से 35-40 किग्रा तक शहद उत्पादन संभव है।
* **मोम:** छत्तों से प्राप्त मोम का उपयोग सौंदर्य प्रसाधन, मोमबत्तियाँ तथा औषधीय उत्पादों में होता है।
* **पराग:** पोषक तत्वों से भरपूर पराग स्वास्थ्य खाद्य पदार्थ के रूप में बाजार में बिकता है।
* **रॉयल जेली और प्रोपालिस:** उच्च मूल्य वाले मधु उत्पाद हैं, जिनका उपयोग स्वास्थ्य सप्लीमेंट्स में होता है।

## लाभ और अवसर

* सब्ज़ियों की पैदावार और गुणवत्ता में वृद्धि
* शहद पर आय का एक अतिरिक्त स्रोत
* विविध मधु उत्पादों से अतिरिक्त आर्थिक आय की संभावना
* सरकारी योजना के अंतर्गत अनुदान और तकनीकी सहायता उपलब्ध (उपकरण पर सब्सिडी, प्रशिक्षण आदि)
* निर्यात और स्थानीय बाज़ार में उच्च मांग

सब्ज़ी फसलों के लिए वर्षभर फ्लोरल कैलेंडर (Beekeeping Floral Calendar)

| महीना | प्रमुख फूल देने वाली सब्ज़ियाँ | पराग/मकरंद उपलब्धता | मधुमक्खी प्रबंधन सुझाव |
|---|---|---|---|
| जनवरी | सरसों, धनिया, मटर, गाजर (बीज फसल) | उच्च | 5-8 छत्ते/हे., शहद संग्रह का अच्छा समय |
| फरवरी | सरसों, धनिया, मूली, पत्ता गोभी | उच्च | सुपर चैंबर लगाएँ, स्वार्मिंग रोकें |
| मार्च | मटर, धनिया, प्याज (बीज), मूली | मध्यम-उच्च | छत्तों का स्थानांतरण संभव |
| अप्रैल | प्याज (बीज), धनिया (बीज), टमाटर | मध्यम | पानी व छाया की व्यवस्था करें |
| मई | लौकी, तोरई, करेला, कद्दू | मध्यम | गर्मी से बचाव, पानी छिड़काव |
| जून | कद्दूवर्गीय सब्ज़ियाँ (ककड़ी, लौकी) | मध्यम | अतिरिक्त शर्करा घोल (Sugar syrup 1:1) |
| जुलाई | भिंडी, कद्दू, करेला, लोबिया | मध्यम | रोग-कीट निगरानी, वर्षा से बचाव |
| अगस्त | भिंडी, लोबिया, कद्दू | मध्यम | रानी की गुणवत्ता जाँचें |
| सितंबर | भिंडी, लौकी, करेला | मध्यम | कॉलोनी को मजबूत करें |
| अक्टूबर | फूलगोभी, पत्ता गोभी (बीज), धनिया | कम-मध्यम | आहार पूरक (Sugar syrup 2:1) |
| नवंबर | सरसों, धनिया, मटर | मध्यम-उच्च | नए छत्ते विभाजन |
| दिसंबर | सरसों, धनिया, मटर | उच्च | शहद उत्पादन का प्रमुख मौसम |

## निष्कर्ष

सब्ज़ी फसलों के साथ वैज्ञानिक मधुमक्खी पालन के माध्यम से किसान न केवल वर्षभर शहद उत्पादन कर सकते हैं, बल्कि सब्ज़ियों की उपज, गुणवत्ता तथा आर्थिक आय को भी बढ़ा सकते हैं। उपरोक्त वैज्ञानिक डेटा और प्रबंधन तकनीकों को अपनाकर मधुमक्खी पालन को एक सफल और लाभदायक कृषि उद्यम में बदला जा सकता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



# गुलाबी सुंडी से बचाव हेतु कपास में अवशेष प्रबंधन कपास की खेती में सफलता के लिए महत्वपूर्ण उपाय

✍ **रोहित** पीएच.डी. शोधार्थी, सब्जी विज्ञान विभाग
✍ **गीता देवी एवं पंकज कुमार** कीट विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार-125004, (हरियाणा)

## परिचय

कपास (Gossypium spp.) भारत में एक महत्वपूर्ण नगदी फसल है और यह कृषि क्षेत्र में आर्थिक विकास में योगदान देती है। हालांकि, कपास की खेती कई कीटों और रोगों से प्रभावित होती है, जिनमें से गुलाबी सुंडी एक प्रमुख कीट है। यह कीट कपास के पौधों पर हमला करके फसल की गुणवत्ता और उत्पादन में भारी नुकसान पहुंचाता है। गुलाबी सुंडी के प्रबंधन के लिए समय पर सही उपायों का पालन करना अत्यंत आवश्यक है। हरियाणा, जो परंपरागत रूप से कपास उगाने वाला क्षेत्र है, यहाँ पर गुलाबी सुंडी (PBW) के अनियंत्रित संक्रमण के कारण इस कीट ने इतना व्यापक बदलाव किया है कि यहाँ के किसान ही नहीं बल्कि अन्य किसान भी धान की खेती की ओर रुख कर रहे हैं, क्योंकि वे वास्तव में इस समस्या का समाधान नहीं कर पा रहे हैं। यह कोई स्थानीय समस्या नहीं बल्कि राजस्थान और पंजाब जैसे पड़ोसी राज्यों में भी देखी जा रही है। हरियाणा राज्य, खास तौर पर सिरसा, फतेहाबाद और हिसार जिलों में कपास की खेती में भारी गिरावट देखी गई है, क्योंकि फसल में बार-बार नुकसान हो रहा है, यह बदलाव काफी हद तक स्पष्ट है क्योंकि इस खरीफ सीजन में कपास का रकबा 2023 में 6.65 लाख हेक्टेयर से घटकर 4.76 लाख हेक्टेयर रह गया है। गुलाबी सुंडी का सीधा असर किसानों को भारी आर्थिक नुकसान के रूप में भुगतना पड़ता है। संक्रमण से उपज और गुणवत्ता में भारी कमी आती है, जिससे बाजार में कीमतें कम हो जाती हैं। कुछ जगहों पर उपज 2 क्विंटल प्रति एकड़ तक कम हो गई है, जहां सामान्य उपज लगभग 12 क्विंटल होती है।

## गुलाबी सुंडी का परिचय

गुलाबी सुंडी या पिंक बॉलवर्म, जिसे वैज्ञानिक रूप से Pectinophora gossypiella के नाम से जाना जाता है, एक प्रकार का कीट है जो मुख्य रूप से कपास की फसल पर हमला करता है। यह कीट कपास के फूल, कलियों और बॉल्स में घुसकर उनकी पत्तियों को खाता है, जिससे पौधे की वृद्धि और उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। गुलाबी सुंडी का संक्रमण शुरू में पौधों की सबसे निचली पत्तियों पर होता है, लेकिन समय के साथ यह पूरे पौधे में फैल सकता है। इसके मुख्य कारण हैं - कीट प्रतिरोधक क्षमता का विकास, फसल अवशेष प्रबंधन की कमी, बीज जनित संक्रमण, तथा गुलाबी सुंडी के प्रसार के लिए अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियां।

## फसल अवशेषों का अनुचित प्रबंधन

यह एक सबसे महत्तवपूर्ण घटक हैं जो गुलाबी सुंडी के परकोप को अगले फसल चक्र में ले जाने का काम करता हैं। फसल कटाई के बाद खेतों में बचे हुए कपास के पौधों के अवशेषों या बरसंटियो में लार्वा जीवित रहते हैं। जब ऐसे अवशेषों का उचित प्रबंधन नहीं किया जाता या उन्हें नष्ट नहीं किया जाता, तो वे कीटों के लिए भंडार बन जाते हैं, जिससे उन्हें फसल के अगले चक्र में आगे बढ़ने का मौका मिल जाता है।

किसानों को गुलाबी सुंडी का प्रकोप नज़र नहीं आता क्योंकि युवा लार्वा कपास के बीज में विकास की अवस्था में प्रवेश करते हैं और बीजों को खाकर अंदर ही रहते हैं। इसका नुक़सान जब कपास की चुगाई के समय ख़राब ऐंव खुले हुए बीज मिलने पर ही पता चल पाता है। कपास के खेतों में लंबे समय तक बचे हुए अवशेष और क्षतिग्रस्त बीजकोषों को न हटाने से यह कीट ऑफ़ सीज़न में भी जीवित रह जाता हैं तथा कीटो को जीवन चक्र पूरा करने में एक महत्वपूर्ण कड़ी बनता है। अतः कपास के बचे अवशेष और बरसंटिया ही गुलाबी सुंडी के प्रसार का मुख्य स्रोत होते है

## गुलाबी सुंडी से बचाव के लिए कपास में अवशेष प्रबंधन के उपाय

**कपास की फसल में गुलाबी सुंडी के आंतक को रोकने हेतु अवशेष प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाया जा सकता है:**

1. फसल की अंतिम चुगाई के बाद खेतों में पशु तथा भेड़ बकरियों को चराये ताकि कपास के पौधों पर लगे अधखीले या बिना खिले टिंडो, फलीय भागो को ये जानवर खाकर नष्ट करदे जिस से कीट की अवस्थाये आगे न बढ़े।
2. कपास की मोढ़ी फसल को खेत में कभी नहीं रखना चाहिये। कपास की बरसंटियो की कटाई जमीन की सतह तक करे तथा जड़ो को निकल कर जला दे ताकि पौधा दोबारा न उग पाए।
3. पुराने उगे पौधो को जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर दे ताकि संक्रमण न फैले।
4. कपास की बरसंटियो को यदि जमा रखना हैं तो संभवतः खेत से दूर किसी स्थान पर एकत्रित करें।
5. जमा की गई बरसंटियो के ढेर को किसी जाली से ढक दे कि अगर कोई गुलाबी सुंडी का पतंगा निकलता है तो जाली में ही नष्ट हो जाए।
6. मार्च माह तक सभी बरसंटियों को अच्छे से झाड़ कर टिंडो और कचरे को जला कर नष्ट कर दें।
7. कपास की बरसंटियो में 1.11% से अधिक नाइट्रोजन, 0.1% फॉस्फोरस और 3.98% पोटाश होता है। इसका मतलब है कि उगाई गई फसल एक हेक्टेयर कपास की खेती वाले क्षेत्र से एकत्र किए गए कपास की बरसंटियो से 1.5 टन कार्बन, 20-25 किलोग्राम नाइट्रोजन, 72 किलोग्राम पोटाश की पूर्ति कर सकती है। बरसंटियो को चिपर के माध्यम से चिप्स या पाउडर में काटा जा सकता है। चिप्स का उपयोग खाद बनाने की प्रक्रिया के लिए फीडिंग सामग्री के रूप में या वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने और अन्य खाद गड्ढों में किया जा सकता है। अपघटन प्रक्रिया को तेज करने के लिए बरसंटियो के चिप्स/पाउडर पर वाणिज्यिक माइक्रोबियल कल्चर का उपयोग किया जा सकता है।
8. अन्यथा, रोटावेटर, एक ट्रैक्टर चालित मशीन की मदद से डंठलों/ बरसंटियो को खेत में काटा जा सकता है और अवशेषों को मिट्टी में मिलाया जा सकता है, क्योंकि यह मिट्टी को 6 इंच तक जोत सकता है। यह कार्य बरसात के मौसम से पहले ही शुरू कर देना चाहिए ताकि कटी हुई बरसंटियो का तेजी से विघटन हो सके। यह कार्य मिट्टी की छिद्रता और उत्पादकता में सुधार करता है। यह मिट्टी को समतल करने में भी मदद करता है और नमी को बनाए रखता है।
9. कपास की बरसंटियो का उपयोग करने का एक और तरीका है ब्रिकेट बनाना। कपास की बरसंटियो में स्वाभाविक रूप से पर्याप्त ऊर्जा होती है। ऊर्जा की मात्रा 17 MJ/kg से 18 MJ/kg तक होती है। बरसंटियो को काटा जा सकता है और फिर ब्रिकेट बनाने के लिए ब्रिकेटर में यांत्रिक रूप से संसाधित किया जा सकता है। इन ब्रिकेट का उपयोग जीवाश्म ईंधन के विकल्प के रूप में ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोत के रूप में किया जा सकता है।

## निष्कर्ष

गुलाबी सुंडी कपास की फसल के लिए एक प्रमुख खतरा है, लेकिन इसके प्रबंधन के लिए सही रणनीतियों और तकनीकों को अपनाकर इससे बचाव किया जा सकता है। किसानों को चाहिए कि वे गुलाबी सुंडी की सक्रियता के संकेतों को पहचानें और इसके लिए समय पर आवश्यक उपायों को लागू करें। अवशेष प्रबंधन के बेहतर उपायों को अपनाकर किसानों को इस कीट से होने वाले नुकसान को नियंत्रित किया जा सकता है। अगर किसान उपयुक्त अवशेष प्रबंधन तकनीकों का पालन करते हैं, तो वे गुलाबी सुंडी के हमले से अपनी कपास की फसल को बचा सकते हैं और उच्च गुणवत्ता और बेहतर उपज प्राप्त कर सकते हैं।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



डॉ. मुनेश्वर प्रसाद मंडल सहायक प्राध्यापक-सह-कनीय वैज्ञानिक, पादप कार्यकी एवं जीव रसायन विभाग, भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया, (बिहार)

# जलवायु परिवर्तन और भारत का भविष्य: खेती, स्वास्थ्य और जल संसाधनों पर प्रभाव

*जलवायु परिवर्तन आज के समय की सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक है, जिसका प्रभाव पृथ्वी के लगभग हर हिस्से में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में इसका प्रभाव और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यहाँ की बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए सीधे प्रकृति और कृषि पर निर्भर है।*

जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों, जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि है, जो औद्योगीकरण, वाहनों के अत्यधिक उपयोग, जीवाश्म ईंधनों के दहन और वनों की कटाई के कारण बढ़ रही है। इसके परिणाम स्वरूप पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ रहा है, जिससे मौसम चक्र में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है और प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति एवं तीव्रता बढ़ रही है।

भारत में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों में तापमान में वृद्धि, मानसून की अनिश्चितता, कहीं अत्यधिक वर्षा और कहीं सूखा, हीट वेव की घटनाओं में वृद्धि तथा बाढ़ और चक्रवात की बढ़ती घटनाएँ इसके प्रमुख संकेत हैं। इन परिवर्तनों का सबसे अधिक प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ रहा है। भारत की लगभग आधी से अधिक आबादी कृषि पर निर्भर है, इसलिए जलवायु परिवर्तन सीधे किसानों की आय और देश की खाद्य सुरक्षा को प्रभावित कर रहा है। बढ़ते तापमान के कारण फसलों की वृद्धि और विकास की प्रक्रिया प्रभावित हो रही है। अधिक तापमान से पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्षमता कम हो जाती है, जिससे फसल की उपज में कमी आती है। गेहूं, धान, मक्का और दलहन जैसी प्रमुख फसलें विशेष रूप से तापमान और वर्षा के प्रति संवेदनशील हैं। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के कारण कीटों और रोगों का प्रकोप भी बढ़ रहा है, जिससे फसलों को अतिरिक्त नुकसान हो रहा है और किसानों की उत्पादन लागत बढ़ रही है।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल कृषि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डाल रहा है। तापमान में वृद्धि के कारण हीट स्ट्रोक, डिहाइड्रेशन और हृदय एवं श्वसन संबंधी रोगों की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। विशेष रूप से बुजुर्गों, बच्चों और कमजोर वर्गों के लोग इससे अधिक प्रभावित हो रहे हैं। इसके अलावा, बदलती जलवायु के कारण मलेरिया, डेंगू और चिकनगुनिया जैसे संक्रामक रोगों के फैलने का खतरा बढ़ गया है, क्योंकि गर्म और आर्द्र वातावरण मच्छरों के प्रजनन के लिए अनुकूल होता है। इसके साथ ही, कृषि उत्पादन में कमी के कारण खाद्य सुरक्षा पर भी खतरा उत्पन्न हो रहा है, जिससे कुपोषण की समस्या बढ़ सकती है और यह समाज के कमजोर वर्गों के स्वास्थ्य को और अधिक प्रभावित कर सकता है।

जल संसाधनों पर भी जलवायु परिवर्तन का गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। भारत में पहले से ही जल की उपलब्धता एक बड़ी चुनौती है, और जलवायु परिवर्तन इस समस्या को और अधिक जटिल बना रहा है। अनियमित वर्षा के कारण जल स्रोतों का पुनर्भरण प्रभावित हो रहा है, जिससे भूजल स्तर लगातार नीचे जा रहा है। कई क्षेत्रों में सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही है, जबकि कुछ क्षेत्रों में अत्यधिक वर्षा के कारण बाढ़ की समस्या उत्पन्न हो रही है। हिमालय के ग्लेशियर, जो भारत की कई प्रमुख नदियों का स्रोत हैं, तेजी से पिघल रहे हैं, जिससे भविष्य में जल संकट की संभावना बढ़ रही है। इसके अलावा, जल की गुणवत्ता भी प्रभावित हो रही है, क्योंकि बाढ़ और सूखे के कारण जल स्रोतों में प्रदूषण बढ़ रहा है, जिससे जलजनित रोगों का खतरा भी बढ़ रहा है।

इन चुनौतियों का समाधान केवल सरकार के प्रयासों से संभव नहीं है, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी आवश्यक है। कृषि क्षेत्र में जलवायु-स्मार्ट तकनीकों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है, जैसे सूखा सहनशील और ताप सहनशील फसल किस्मों का उपयोग, जल संरक्षण तकनीकों जैसे ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई का उपयोग, तथा जैविक और सतत कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देना। इसके साथ ही, वनों का संरक्षण और वृक्षारोपण को बढ़ावा देना भी अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि वृक्ष कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों, जैसे सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना भी आवश्यक है, ताकि जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम हो सके।

इसके अतिरिक्त, जल संरक्षण के उपायों को अपनाना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, जैसे वर्षा जल संचयन, जल का विवेकपूर्ण उपयोग और जल स्रोतों का संरक्षण। जन जागरूकता भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, क्योंकि जब तक आम जनता जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और उसके समाधान के बारे में जागरूक नहीं होगी, तब तक इस समस्या का प्रभावी समाधान संभव नहीं है। स्कूलों, कॉलेजों और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाना आवश्यक है।

अंततः, जलवायु परिवर्तन भारत के भविष्य के लिए एक गंभीर चुनौती है, जिसका प्रभाव खेती, स्वास्थ्य और जल संसाधनों पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। यदि समय रहते उचित कदम नहीं उठाए गए, तो इसका प्रभाव और अधिक गंभीर हो सकता है, जिससे खाद्य संकट, जल संकट और स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ सकती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम सभी मिलकर पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास करें, प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग करें और सतत विकास के सिद्धांतों को अपनाएं। जलवायु परिवर्तन केवल एक पर्यावरणीय समस्या नहीं है, बल्कि यह मानव अस्तित्व और भविष्य से जुड़ा हुआ विषय है, और इसके समाधान के लिए सामूहिक प्रयास ही एक सुरक्षित और समृद्ध भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं।

01/2025-26

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका



# खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की भूमिका

डॉ. दिनेश रजक
डॉ. विशाल कुमार एवं डॉ देवेन्द्र कुमार
प्रसंसकरण एवं खाद्य अभियन्त्रिकी विभाग, कृषि अभियंत्रण एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय,
डॉ. रा. प्र. कें. कृ. वि. पूसा, समस्तीपुर, (बिहार)

## प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों–फल, सब्जियाँ, अनाज, दुग्ध, मांस एवं मत्स्य–का व्यापक उत्पादन होता है। ये सभी उत्पाद हमारी कृषि अर्थव्यवस्था की आधारशिला हैं। फिर भी, पर्याप्त भंडारण, परिवहन और विपणन व्यवस्था के अभाव में बड़ी मात्रा में खाद्य सामग्री नष्ट हो जाती है। यह स्थिति एक ओर किसानों को आर्थिक हानि पहुँचाती है, तो दूसरी ओर खाद्य असुरक्षा और कुपोषण जैसी समस्याओं को बढ़ाती है। ऐसे परिदृश्य में खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

## खाद्य प्रसंस्करण का अर्थ

खाद्य प्रसंस्करण वह वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कच्चे खाद्य पदार्थों को सुरक्षित, टिकाऊ, स्वादिष्ट तथा उपभोक्ता-अनुकूल बनाया जाता है। इसमें सफाई, छँटाई, ग्रेडिंग, कटाई, पकाना, सुखाना, फ्रीज़िंग, पाश्चुरीकरण, डिब्बाबंदी, पैकेजिंग आदि प्रक्रियाएँ शामिल हैं। इन तकनीकों के माध्यम से खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता बनाए रखते हुए उनकी शेल्फ लाइफ बढ़ाई जाती है।

## मूल्य संवर्धन की अवधारणा

मूल्य संवर्धन का अर्थ है किसी कच्चे उत्पाद में ऐसी विशेषताएँ जोड़ना जिससे उसका बाजार मूल्य, उपयोगिता और मांग बढ़ जाए। उदाहरणस्वरूप–टमाटर से सॉस, दूध से पनीर व दही, गेहूँ से आटा एवं बिस्कुट, आम से जूस या अचार बनाना। इस प्रक्रिया से उत्पाद अधिक आकर्षक, उपयोगी और लाभकारी बन जाता है।

## खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन के लाभ

**1. खाद्य अपव्यय में कमी**

भारत में उत्पादन के बाद भंडारण व परिवहन की कमी के कारण काफी मात्रा में खाद्य सामग्री नष्ट हो जाती है। खाद्य प्रसंस्करण इस समस्या को कम करने में सहायक है।

**(i) शेल्फ लाइफ में वृद्धि**

सुखाना, फ्रीज़िंग, डिब्बाबंदी, अचार बनाना तथा अन्य संरक्षण तकनीकों द्वारा नाशवान उत्पादों को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

**(ii) अधिशेष उत्पादन का उपयोग**

जब किसी फसल का उत्पादन अधिक हो जाता है और बाजार में मांग कम रहती है, तब उसे जैम, जेली, जूस, सॉस, पाउडर आदि में परिवर्तित कर उपयोग में लाया जा सकता है।

**(iii) भंडारण एवं परिवहन में सुविधा**

प्रसंस्कृत उत्पादों को संग्रहित करना और दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचाना आसान होता है, जिससे परिवहन के दौरान क्षति कम होती है।

**(iv) मौसमी निर्भरता में कमी**

फल एवं सब्जियाँ सीमित मौसम में उपलब्ध होती हैं। प्रसंस्करण द्वारा उन्हें वर्ष भर उपयोग के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

**(1) गुणवत्ता एवं सुरक्षा में सुधार**

स्वच्छता मानकों के पालन से खाद्य पदार्थ बैक्टीरिया और अन्य हानिकारक तत्वों से सुरक्षित रहते हैं।

**2. किसानों की आय में वृद्धि**

खाद्य प्रसंस्करण किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रभावी माध्यम है।

**(i) उत्पाद का अधिक मूल्य**

कच्चे उत्पादों की तुलना में प्रसंस्कृत उत्पाद अधिक कीमत पर बिकते हैं, जिससे किसानों की आय बढ़ती है।

**(ii) बिचौलियों पर निर्भरता में कमी**

स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण से किसान सीधे बाजार से जुड़ सकते हैं और अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

**(iii) नुकसान में कमी**

नाशवान फसलों को सुरक्षित उत्पादों में बदलकर नुकसान से बचा जा सकता है।

**(iv) निर्यात के अवसर**

प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की वैश्विक मांग अधिक होती है, जिससे किसानों को अंतरराष्ट्रीय बाजार तक पहुँच मिलती है।

**3. रोजगार के अवसर**

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में रोजगार सृजित करता है।

**(i) ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार**

प्रसंस्करण इकाइयाँ कृषि क्षेत्रों के निकट स्थापित होने से स्थानीय युवाओं और महिलाओं को रोजगार मिलता है।

**(ii) महिलाओं का सशक्तिकरण**

अचार, पापड़, मसाले, बेकरी उत्पाद आदि के निर्माण में महिलाओं की भागीदारी अधिक होती है, जिससे उन्हें स्वरोजगार के अवसर मिलते हैं।

**(iii) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार**

मशीन संचालन, पैकेजिंग, विपणन, परिवहन और भंडारण जैसे क्षेत्रों में व्यापक रोजगार उत्पन्न होता है।

**(iv) तकनीकी एवं उद्यमिता अवसर**

फूड टेक्नोलॉजी, गुणवत्ता नियंत्रण और स्टार्टअप के क्षेत्र में युवाओं के लिए नए अवसर उपलब्ध हैं।

### 4. पोषण में सुधार

खाद्य प्रसंस्करण से पोषण स्तर में भी सुधार होता है।

**(i) पोषक तत्वों का संरक्षण**

आधुनिक तकनीकों से विटामिन और खनिज सुरक्षित रहते हैं।

**(ii) फोर्टिफाइड खाद्य पदार्थ**

आयरन, आयोडीन, विटामिन-A एवं D युक्त खाद्य पदार्थ कुपोषण दूर करने में सहायक हैं।

**(iii) सुरक्षित एवं संतुलित आहार**

रेडी-टू-ईट एवं रेडी-टू-कुक उत्पाद संतुलित आहार उपलब्ध कराते हैं।

### 5. निर्यात को बढ़ावा

उच्च गुणवत्ता वाले प्रसंस्कृत उत्पाद अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धी होते हैं।

* अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप पैकेजिंग
* लंबी शेल्फ लाइफ
* अधिक विदेशी मुद्रा अर्जन
* "मेड इन इंडिया" ब्रांड को मजबूती

## खाद्य प्रसंस्करण के प्रमुख क्षेत्र

**1.फल एवं सब्जी प्रसंस्करण :** नाशवान उत्पादों को सुरक्षित एवं उपयोगी बनाना।

**2.दुग्ध एवं दुग्ध उत्पाद :** दूध से पनीर, दही, घी आदि का निर्माण।

**3.अनाज एवं दलहन प्रसंस्करण :** गुणवत्ता सुधार एवं भंडारण सुविधा।

**4.मांस, अंडा एवं मत्स्य प्रसंस्करण :** प्रोटीनयुक्त उत्पादों का सुरक्षित संरक्षण।

## चुनौतियां

* तकनीकी ज्ञान का अभाव * कोल्ड स्टोरेज एवं भंडारण की कमी * पूँजी निवेश की समस्या * जागरूकता की कमी

## निष्कर्ष

खाद्य प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन कृषि क्षेत्र के समग्र विकास की कुंजी है। इससे खाद्य अपव्यय कम होता है, किसानों की आय बढ़ती है, रोजगार के अवसर उत्पन्न होते हैं तथा पोषण स्तर में सुधार होता है। निर्यात में वृद्धि से देश की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है। यदि आधुनिक तकनीक, प्रशिक्षण एवं सरकारी सहयोग को बढ़ावा दिया जाए तो यह क्षेत्र भारत को कृषि से उद्योग की ओर अग्रसर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

# गरमा हरा चारा उत्पादन हेतु ज्वार की वैज्ञानिक खेती

✍आलोक कुमार जिला कृषि पदाधिकारी
✍कालीकान्त चौधरी उप परियोजना निदेशक आत्मा
✍रौशन कुमार उप परियोजना निदेशक (आत्मा)
✍प्रमोद कुमार तिवारी प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी (आत्मा)
✍वैभव पाण्डेय प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी सिवान सदर
✍मनीष पाण्डेय प्रखण्ड तकनीकी प्रबंधक,जिला कृषि कार्यालय सिवान कृषि विभाग (बिहार)

**परिचय:** उष्णकटिबंधीय देशों में ज्वार को मुख्य चारे की फसल के रूप में बोया जाता है जिसे खरीफ में चारे व अनाज दोनों उद्देश्य से उगाया जाता है एवं गरमा में मुख्य रूप से हरे चारे के लिए उगाया जाता है। ज्वार का चारा जानवरो के लिए खाने में स्वादिष्ट एवं पोष्टिक होता है तथा अधिक उत्पादन की स्थिति में इसका "साईलेज" व "हे" के रूप में लम्बे समय हेतु आसानी से संरक्षण भी किया जा सकता है। इसमें एकवर्षीय एवं बहुवर्षीय किस्म उपलब्ध होने के कारण इसका चारा लंबे समय तक उपलब्ध रहता है। ज्वार के चारे में 8-10% क्रूड प्रोटीन एवं 34-35% तक क्रूड फाइबर (रेशा) होता है। ज्वार कम समय में अधिक चारा उत्पादन करने वाली सूखा अवरोधी फसल है जो सूखे की स्थिति को भी लम्बे समय तक सहन करने की क्षमता रखती है।

**जलवायु:** अन्य फसलों की तुलना में ज्वार की फसल अधिक तापमान के प्रति सहनशील होती है, लगभग 30-35° सेल्सियस पर ज्वार के पौधो की वृद्धि अच्छी होती है, ज्वार की फसल को औसतन 400-750 मी.मी वर्षा वाले क्षेत्रो में आसानी से उत्पादित किया जा सकता है।

**मृदा एवं उसकी तैयारी :** ज्वार की फसल हेतु बलुई दोमट या मटियार दोमट मृदा जिसका पी.एच. मान लगभग 6.5-7.5 ही उपर्युक्त माना जाता है। लंबे समय तक जलभराव फसल के लिए हानिकारक होता है। अतः उपर्युक्त जलनिकास वाली सूक्ष्म तत्वों से भरपूर उपजाऊ मृदा ज्वार के गुणवत्तापूर्ण उत्पादन हेतु अहम मानी जाती है। भूरभूरी एवं बारिक जुताई हेतु 2 बार हैरो तथा 1 बार पाटा चलाने की आवश्यकता होती है। इसके अलावा हर तीसरे वर्ष में मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई करना लाभदायक होता है। दीमक की रोकथाम हेतु जुताई के 1-2 दिन पहले फिप्रोनिल (0.3%) 20 कि.ग्रा/हे. की दर से छिड़क कर जुताई कर देवें।

**उन्नत किस्में**

**एक कटाई वाली प्रभेद**

**प्रभेद एवं विशेषता**

1. **एस.एस.जी -226:** इस प्रभेद में प्रूसिक (HCN) अम्ल की मात्रा कम होती है एवं अधिक पत्तीः तना अनुपात अधिक होता है इसलिए पशु इसे चाव से खाता है।

2. **हरियाणा चरी -541:** इस प्रभेद मे प्रूसिक अम्ल की मात्रा कम एवं इसका चारा स्वाद मे मीठा होता है। तना भेदक कीड़े के लिए प्रतिरोधक क्षमता इस प्रभेद का विशिष्ट लक्षण है। हरा चारा उत्पादन क्षमता 500 क्विंटल/हेक्टेयर है।

3. **सी.एस.वी -30 एफ:** सभी चारा उत्पादक राज्यों के लिए यह प्रभेद उपर्युक्त है तथा उत्पादन क्षमता भी ठीक है 7

4. **पूसा चरी- 9 :** यह प्रभेद सम्पूर्ण भारत में उगाई जा सकती है। इस प्रभेद से औसतन 400-450 क्विं. प्रति हेक्टेयर हरे चारे की उपज ली जा सकती है।

5. **जवाहर चरी-6:** यह प्रभेद मध्यप्रदेश राज्य हेतु उपर्युक्त मानी जाती है। अनुकूल वातावरण में इस प्रभेद से 650-750 क्विंटल/हे. हरे चारे की उपज ली जा सकती है।

6. **एस.एल- 44:** यह प्रभेद पंजाब राज्य के लिए उपर्युक्त है। इस प्रभेद से 45-50 क्विं./हे. हरे चारे की उपज ली जा सकती है।

7. **पन्त चरी- 5 :** यह प्रभेद सम्पूर्ण भारत में उगाये जाने के लिए उपर्युक्त मानी जाती है। इस प्रभेद की हरे चारे की उत्पादन क्षमता 400 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**बहु कटाई वाली प्रभेद**

1. **सी.एस.डब्ल्यू - 33 एम.एफ:** यह प्रभेद देश के सभी चारा उत्पादक राज्यों के लिए उपर्युक्त मानी जाती है एवं इसकी उत्पादन क्षमता हरे चारे हेतु 1000 -1050 क्विंटल तथा सूखे चारे के लिए 260 - 280 क्विंटल/हेक्टेयर है।

2. **एस.एस.जी 59 -3 / मीठी सूडान:** यह प्रभेद मुख्यतः उत्तरी भारत के लिए उपर्युक्त है,इसका तना पतला तथा स्वाद में मीठा होता है। इसकी उत्पादन क्षमता हरे चारे के लिए 750 क्विंटल और सूखे चारे के लिए 220 क्विंटल/ हेक्टेयर होती है।

3. **जवाहर चरी-69:** यह प्रभेद मध्य भारत हेतु उपर्युक्त होती है। सिंचित व असिंचित दोनों परिस्थिति में अच्छा चारा उत्पादन क्षमता रखती है। इसकी उत्पादन क्षमता हरे चारे हेतु 530 क्विं. तथा सूखे चारे हेतु 150 क्विं./हे. है।

4. **सी.एस.एच. - 24 :** यह प्रभेद सम्पूर्ण भारत मे उगाने के लिए अच्छी मानी जाती है , जिससे 900 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हरे चारे की पैदावार ली जा सकती है।

5. **सी.ओ - 29 :** यह प्रभेद सभी ज्वार उगाने वाले क्षेत्रो हेतु उपर्युक्त है। इसकी उत्पादन क्षमता बहुत अच्छी है , इससे 1500 क्विंटल प्रति हे. हरे चारे की उपज ली जा सकती है।

6. **सी.ओ.एफ.इस.-29:** यह प्रभेद उन क्षेत्रों हेतु अच्छी है जहाँ बेहतर सिंचाई सुविधा उपलब्ध है। इस प्रभेद से 1700 क्विं. प्रति हे. हरे चारे की उपज ली जा सकती है।

7. **हरियाणा ज्वार - 513:** यह प्रभेद हरियाणा राज्य के उपर्युक्त है। इस प्रभेद की उत्पादन क्षमता 500 क्विं. प्रति हे. है।

8. **पन्त चरी- 6:** यह प्रभेद उत्तरांचल राज्य में उगाये जाने के लिए उपर्युक्त मानी जाती है। इस किस्म की हरे चारे की उत्पादन क्षमता 800-1000 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**संकर प्रभेद**

1. **हरा सोना:** यह किस्म पंजाब,हरियाणा राज्य के लिए उपर्युक्त है। इस किस्म में चारे की 3 कटाई ली जा सकती है जिससे औसतन 630-650 क्विं.ल हरा चारा तथा 150 क्विंटल सूखे चारे का उत्पादन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है।

2. **सी.एस.एच - 28:** यह प्रभेद मध्य व दक्षिण भारत के लिए उपर्युक्त है तथा यह किस्म चारे व अनाज दोनों हेतु अच्छी मानी जाती है।

3. **सी.एस.एच-31 आर:** यह रबी सीजन की संकर किस्म है जो कि अधिक चारे व अनाज उत्पादन हेतु अच्छी मानी जाती है ।

4. **पूसा चरी संकर- 109 :** यह प्रभेद उत्तर पश्चिम भारत के लिए उपर्युक्त होती है। इस किस्म से 800 क्विंटल तक हरे चारे की उपज ली जा सकती है।

**बुवाई का समय :** ज्वार की बुवाई का समय किसान के पास उपलब्ध संसाधनों एवं वहां के वातावरण पर निर्भर करता है। यदि किसान के पास पर्याप्त सिचाई की व्यवस्था उपलब्ध हो तो इसकी बुवाई तय समय से पहले भी की जा सकती है। सामान्यतः एक कटाई एवं दो कटाई वाली किस्मों की बुवाई मानसून के साथ जून-जुलाई में करना चाहिए, जबकि बहु कटाई वाली किस्मों की बुवाई बेहतर सिचाई सुविधा के साथ मार्च-अप्रैल में करना चाहिए। हालांकि दक्षिण भारत में सर्दियों का न्यूनतम तापमान 15 डिग्री तक ही जाता है, इसलिए दक्षिण भारत में ज्वार की बुवाई अक्टूबर-नवम्बर में भी की जा सकती है। हरियाणा, पंजाब, पश्चिम यूपी में सिचाई की व्यवस्था के साथ मध्यम अप्रैल से मई माह तक इसकी बुवाई करके अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

**बीज दर :** बड़े दाने वाली किस्मों की दर 35-40 कि.ग्रा प्रति हे. तथा छोटे दाने वाली प्रभेद की दर 28-30 कि.ग्रा प्रति हे. रखते हैं। बुवाई से पहले एक एकड़ में आवश्यक बीज को 200 ग्रा एजोस्पिरिलियम जैविक टिका+200 ग्रा. फोस्फोटीका, 300-400 एम.एल पानी में मिलाकर उपचारित कर लेने से 15-20% तक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। बुवाई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25-30 सेंमी. रखनी चाहिए। बुवाई की गहराई 1.5-2 सेंमी. से अधिक रखने पर अंकुरण प्रभावित हो जाता है।

**पोषक तत्व प्रबंधन:** पोषक तत्व का प्रबंधन मृदा जांच के आधार पर करना चाहिए जिससे फसल में उर्वरक की संतुलित मात्रा की आपूर्ति को सुनिश्चित किया जा सके। ज्वार की फसल को सामान्यतः अधिक उर्वरक खपत करने वाली फसलों की श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। इसकी प्रति हे. उत्पादकता एवं हरे चारे की गुणवत्ता पर पोषक तत्व प्रबंधन का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। इसलिए समय पर पोषक तत्व की पूर्ति इसके उत्पादन पर महत्वपूर्ण प्रभाव रखती है। इसकी आपूर्ति को सुनिश्चित करने हेतु 10-15 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हे. की दर से उपयोग करना चाहिए। एक कटाई वाली किस्मों में नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश का अनुपात 60, 30, 30 कि.ग्रा/हे. बुवाई के समय, उसके बाद 30 कि.ग्रा. नत्रजन बुवाई के एक महीने बाद छिड़का जाता है जबकि बहु कटाई वाली किस्मों हेतु नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश का अनुपात 80, 60, 40 कि.ग्रा. प्रति हे. बुवाई के समय, उसके बाद हर कटाई के उपरान्त 40 कि.ग्रा. नत्रजन का छिड़काव आवश्यक है। सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति मृदा स्वास्थ जाँच के आधार पर करना चाहिए। सामान्यतः 20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट, 15-20 कि.ग्रा. आयरन सल्फेट का उपयोग बुवाई के समय पर करना इसके चारे की गुणवत्ता हेतु उपयोगी पाया गया है। सूखे की स्थिति में मिट्टी पर उर्वरक न देते हुए, 2% यूरिया का घोल बनाकर पौधो पर छिड़काव करना चाहिए।

**फसल चक्र :** मृदा स्वास्थ को बनाये रखने में फसल चक्र का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। लगातार एक ही प्रकार का फसल चक्र मृदा स्वास्थ पर विपरीत प्रभाव डालता है तथा पोषक तत्वों में अस्थिरता उत्पन्न करता है। इसलिए धान्य फसलो के बाद दलहनी फसलो का समावेश मृदा स्वास्थ के लिए लाभदायक माना जाता है। सामान्यतः खरीफ ज्वार के बाद रबी में बरसीम, रिजका, जई, गेंहू, जौ, इत्यादि फसलो का चयन किया जा सकता है। परन्तु ज्वार अधिक नत्रजन चाहने वाली फसल होने के कारण मृदा स्वास्थ को ध्यान में रखते हुए फसल चक्र में ज्वार के बाद दलहनी फसलो का समावेश करना अधिक लाभदायक सिद्ध होगा।

**अंतरा सस्यन :** चारे की गुणवत्ता एवं उत्पादकता दोनों में सुधार करने हेतु यह सबसे महत्वपूर्ण प्रबंधन क्रिया है। इससे मृदा स्वास्थ पर भी अधिक लाभकारी प्रभाव देखे गए है तथा संसाधनों का बेहतर उपयोग भी सुनिश्चित किया जा सकता है। इस प्रबंधन हेतु उपर्युक्त फसल जैसे लोबिया, ग्वार एवं राइस बीन जैसी फसलों का समावेश उत्तम माना गया है।

# प्राकृतिक खेती के प्रमुख घटक एवं उनका महत्व

आशीष राय, सुनील कुमार मंडल
धीरेन्द्र कुमार एवं संजय कुमार
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर, मधुबनी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, (बिहार)

प्राकृतिक खेती 'संश्लेषित रसायन-मुक्त और पशुधन' आधारित टिकाऊ कृषि पद्दति है। कृषि पारिस्थितिकी पर आधारित यह एक विविध कृषि प्रणाली है जो फसलों, पेड़ों और पशुधन को एकीकृत करती है, जिससे कार्यात्मक जैव-विविधता का अधिकतम उपयोग संभव हो सके।

प्राकृतिक खेती पशुधन (स्थानीय नस्ल की गाय) के साथ एकीकृत है, जिसमें बीजामृत, जीवामृत, धनजीवामृत, नीमास्त्र, दशपर्णी अर्क आदि जैसे आदानों का उपयोग, बहु-फसल प्रणाली, मानसुन पूर्व वुआई, बायोमास आधारित मल्चिंग (कार्बनिक मल्चिंग), बीजों की पारम्परिक किस्मों का उपयोग और वृक्षों का एकीकरण शामिल है। प्रस्तुत आलेख में प्राकृतिक खेती के महत्वपूर्ण घटकों में से बीजामृत, जीवामृत, धनजीवामृत, दशपर्णी अर्क, नीमास्त्र, अग्निास्त्र और ब्रह्मास्त्र में प्रयुक्त होने वाले सामग्रियां, अर्क बनाने की विधि एवं उनके उपयोग की महत्ता का वर्णन सविस्तार से किया गया है।

## प्राकृतिक खेती के प्रमुख घटक

**1. बीजामृत:** बीजामृत स्थानीय देशी गाय के गोबर एवं मूत्र पर आधारित एक प्राकृतिक सूत्रीकरण है जो बीज उपचार की एक तकनीक है। यह बीजों को मिट्टीजनित और बीजजनित बीमारियों से बचाने में मदद करता है।

**प्रयुक्त सामग्रियां (100 किलोग्राम बीज के लिए)**

| | |
|---|---|
| * पानी | 20 लीटर |
| * गाय का गोबर | 5 किलोग्राम |
| * गोमूत्र | 5 लीटर |
| * चूना | 50 ग्राम |

* स्थानीय खेत/मेंढ़ (राइजोस्फेरिक) मिट्टी-मुट्ठीभर-(50 ग्राम)

**बीजामृत की तैयारी:** * 5 किलोग्राम देशी गाय का गोबर लें और उसे एक सुखी कपड़े में लपेट ले। * एक बाल्टी में 20 लीटर पानी लें और कपड़े में लपेटा हुआ 5 किलोग्राम गोबर उसमें रख दें। * अब इसे 12-12 घंटे के लिए छाया में छोड़ दें, ताकि गोबर का अर्क पानी में आ जाए। * 1 लीटर पानी वाले दूसरे वर्तमान में 50 ग्राम चूना लें * अब उपरोक्त दोनों तैयारियों को मिलायें और उसमें इससे 50 ग्राम रइजोस्फेरिक मिट्टी को मिलायें। * अंत में 5 लीटर गोमूत्र उपरोक्त तैयार घोल में मिलायें और इसकों 8-12 घंटे के लिए छोड़ दें। * अब ये तैयार मिश्रण के बीजामृत बीज उपचार के लिए तैयार हैं।

**उपयोग विधि:** किसी भी फसल के बीज में बीजामृत संचारित (मिलाएं)। इन्हें हाथ से मिला कर परत (कोट) करने के बाद सुखा ले और बुआई के लिए इस्तेमाल करें। फलीदार बीजों के लिए, जिनमें बीज की परत पतली हो सकती है, बस उन्हे जल्दी से डुबायें और सूखने दें।

**2. जीवामृत:** जीवामृत एक तरल जैविक खाद है जो प्राकृतिक कार्बन और बायोमास का एक उत्कृष्ट स्त्रोत है और इसमें फसलों के लिए आवश्यक स्थूल और सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं। अन्य प्रकार की खादों की तुलना में, जीवामृत अधिक प्रभावी सावित हुआ है और इसे अन्य खादों के साथ भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यह देशी गाय के गोबर, गोमूत्र, बेसन और गुढ़ के मिश्रण का बना जैविक उत्पाद होता है।

जीवामृत 100% जैविक होता है और इसका मिट्टी के स्वस्थ्य पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। यह दो शब्द ''जीवन'' और ''अमृत'' से मिलाकर बने हैं। पहला शब्द ''जीवन'' का अर्थ जीवन और दुसरा ''अमृत'' का अर्थ है ''औषधी'' यानी ''जीवन औषधी''। जीवामृत के उपयोग से अम्लीय मिट्टी में पी.एच. मान का स्तर बढ़ जाता है। यह स्थायी रूप से फसल की वृद्धि में सुधार करता है, रसायनिक मूल्यों पर होने वाले खर्च को कम करके मिट्टी के सेहत में सुधार करता है।

**प्रयुक्त सामग्रियां (एक एकड़ फसल के लिए):**

| | |
|---|---|
| * ताजा गाय का गोबर | 10 किलोग्राम |
| * पानी | 200 लीटर |
| * गोमूत्र | 10 लीटर |
| * गुड़ | 2 किलोग्राम |
| * बेसन | 1-1.5 किलोग्राम |
| * खेत/मेढ़ (राइजोस्फेरिक) की मिट्टी | मुट्ठीभर (50 ग्राम) |

**जीवामृत की तैयारी:** * एक बैरल में 200 लीटर पानी लें। * उपरोक्त बैरल में 10 लीटर देशी गाय का गोबर (भारतीय नस्ल) और 10 लीटर गोमूत्र ले और इसे पानी में अच्छी तरह से मिलायें। * उपरोक्त घोल में 2 किलोग्राम गुड़, 2 किलोग्राम कोई दाल का आटा (अधिमानत: बेसन) और मुट्ठीभर (लगभग 50 ग्राम) राइजोस्फेरिक मिट्टी मिलायें।

* अब उपरोक्त सभी सामग्रियों की लकड़ी की छड़ी की मदद से घड़ी की सूई के दिशा में घुमाते हुए अच्छी तरह से मिला लें। इस मिश्रण के घोल को कम से कम 10 मिनट तक दो-तीन बार लकड़ी की सहायता से हिलायें।

* बैरल को जूट के थैले से ढ़ककर किण्वन के लिए इस घोल को 48 घंटे तक छाया में स्थिर रखें। उसके बाद यह घोल जीवामृत प्रयोग के लिए तैयार हो जाता है।

**नोट:** जीवामृत को 2-3 दिनों तक इस्तेमाल किया जा सकता है।

**उपयोग विधि:** 5-10 प्रतिशत जीवामृत को पानी में घोलकर फसलों पर छिड़काव कर सकते है। एक नैनोलीटर पानी के लिए 200 लीटर जीवामृत की आवश्यकता होती है। प्रत्येक 7-14 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करने पर नतीजे बेहतर मिलते हैं। जीवामृत को सिंचाई जल के साथ प्रयोग करने पर मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है, जिससे फसलों की वृद्धि और विकास में सहायक होता है।

**जीवामृत से लाभ:** * उपज बढ़ाने के कार्य के साथ-साथ फूलों और फलों की अच्छी गुणवत्ता में वृद्धि होती है। * जब जीवामृत को सिंचाई जल के साथ इस्तेमाल किया जाता है तो मिट्टी की उर्वरता में सुधार होता है।

**जीवामृत के नुकसान भी है:** * यह आदिवासियों/जनजातियों से तैयार किया जा सकता है। * जीवामृत देश के राज्यों में ग्रामीण स्तर पर उपलब्ध होता है, इसलिए इसकाप्रसारण के लिए उपयोग नहीं किया जाता है। * जीवामृत का जीवन-काल 10-12 दिनों से अधिक नहीं होता है, इसके बाद यह प्रभावी नहीं रहता है।

**धनजीवामृत:** यह एक प्रकार का ठोस जैविक खाद है, जो जीवामृत का ठोस रूप होता है। धनजीवामृत मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के साथ-साथ पौधों के विकास को बढ़ावा देने और फसल की पैदावार में सुधार लाता है, खासकर असिंचित क्षेत्रों में।

**प्रयुक्त सामग्रियां (एक एकड़ भूमि के लिए):**

| | |
|---|---|
| गाय का सूखा गोबर | 100 किलोग्राम |
| गोमूत्र | 5 ली. (आवश्यकतानुसार) |
| देशी गुड़ | 1 किलोग्राम |
| बेसन | 2 किलोग्राम |
| जैविक मिट्टी (किसी बड़े पेड़ के नीचे से) | 1 किग्रा |

**धनजीवामृत की तैयारी:** * सूखे गोबर को छाया में 7-8 दिनों तक रखकर पूर्ण चूर्ण बना लें।

* उपरोक्त सभी सामग्रियों के मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर छाया में फैला दें और 2-3 दिनों तक सुखने दें। अच्छी तरह से सुखने व वारिक बनने के बाद यह मिश्रण धनजीवामृत उपयोग के लिए तैयार हो जाता है।

**उपयोग विधि:** फसल की बुआई के समय प्रति एकड़ 100 किलोग्राम सुखा धनजीवामृत का इस्तेमाल किया जाता है।

**धनजीवामृत की विशेषताएँ:** * यह एक जीवाणुयुक्त, सुखा और जैविक खाद है जो पौधों के लिए जीवन अमृत का काम करता है। * यह मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या को बढ़ाता है, जो पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार करते हैं। * धनजीवामृत मिट्टी को नरम बनाता है, जिससे पौधों की जड़ों को फैलने में मदद मिलती है।

**धनजीवामृत से लाभ:** * मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है, जिससे फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है। * पौधों को कीटों एवं बीमारियों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाता है। * बीजों के अंकूरण में सुधार लाता है, जिसका असर फसलों के उत्पादन पर पड़ता है।

**4. दशपर्णी अर्क:** दशपर्णी अर्क एक जैविक कीटनाशक व फफूंदनाशक उत्पाद है जिसे 10 अलग-अलग प्रकार की पत्तियों और अन्य प्राकृतिक सामग्रियों के मिश्रण से बनाया जाता है। यह एक पारंपरिक और प्राकृतिक उत्पादन हैं, जिसे ''दश'' (दस) और ''पर्णी'' (पत्ते) के दो शब्दों से मिलाकर दशपर्णी अर्क का नाम दिया गया है।

**प्रयुक्त सामग्रियां (एक एकड़ भूमि के लिए):**

| | | |
|---|---|---|
| * सभी दस प्रकार की पत्तियां (नीम, करंज, धतुरा, अरण्डी, पपीता, वेल, तुलसी, गेंदा, सीताफल, कनेर) | | प्रत्येक 2-2 किलोग्राम |
| * पानी | - | 200 लीटर |
| * देशी गाय का मूत्र | - | 5 लीटर |
| * देशी गाय का गोबर | - | 3 किलोग्राम |
| * हरी मिर्च का पेस्ट | - | 2 किलोग्राम |
| * लहसुन का पेस्ट | - | 250 ग्राम |
| * हल्दी का पाउडर | - | 500 ग्राम |

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत
कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# देशी गायों की विशेषताएं एवं प्राकृतिक खेती में इनका महत्व

✍डॉ. अंजली कुमारी, डॉ. अनुश्री
सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर (बिहार)

✍डॉ. कुमारी चंद्रकला, डॉ. रंजना सिन्हा
सहायक प्राध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ की 76 प्रतिशत आबादी कृषि कार्यों में लगी हुई है। पशुपालन विशेषकर गाय पालन कृषि का एक महत्वपूर्ण अंग है। गाय दुग्ध उत्पादन का एक महत्वपूर्ण श्रोत है। दुग्ध न केवल गोपालकों को सम्पूर्ण आहार उपलब्ध कराता है साथ ही साथ आय का भी महत्वपूर्ण श्रोत है। भारत में गायों की पूजा की जाती है। धार्मिक मान्यताओं के साथ-साथ यह विज्ञान की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। हमारे पारिस्थितिकी तंत्र में देशी गाय की आवश्यकता उसके द्वारा दिए जाने वाले दूध तक ही सीमित नहीं है। गाय के दूध से लेकर गोबर तक में कई ऐसे गुण पाए जाते हैं जो बीमारियों से लड़ने में हमारी मदद करते हैं। देशी गाय से पांच प्रमुख पदार्थ दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर प्राप्त होते है जिन्हें पंचगव्य कहा जाता है। पंचगव्य मनुष्य के प्रमुख तीन दोषों (वात, पित्त, कफ) को दूर करने में मदद करता हैं। साथ ही साथ गोबर एवं गोमूत्र प्राकृतिक खेती को सफल बनाने में अहम भूमिका निभाते है।

प्राकृतिक खेती एक कृषि पद्धति है जो रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को प्रोत्साहित नहीं करती है। यह मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने एवं टिकाऊ कृषि प्रणालियों को बढ़ावा देने पर केंद्रित है। प्राकृतिक खेती मुख्यतः गोबर, गोमूत्र के विभिन्न उपयोग पर आधारित है। इस प्रकार की खेती से प्राकृतिक संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी और जीवन का संरक्षण होता है। इस लेख के माध्यम से देशी गायों के विशेषताएं एवं प्राकृतिक खेती में इनके उत्पादों तथा सह उत्पादों के उपयोग के तरीके पर पर प्रकाश डाला गया है। देशी गायों की प्रमुख विशेषताएं जो इनको प्राकृतिक खेती के लिए उपयुक्त बनाती है।

**1.कूबड़:** यह भारतीय देशी बैलों और गायों की एक विशेषता है जो उन्हें बिना प्रयास के भार ढोने में सुविधा प्रदान करती है। कूबड़ ही देशी बैलों को खेतो की जुताई एवं सामान ढोने इत्यादि कार्यों के लिए सक्षम बनाता है। भारतीय खेती में देशी बैलों का योगदान सदैव उल्लेखनीय रहा है। खेती में देशी बैलों की भूमिका ट्रैक्टर और आधुनिक कृषि मशीनरी के अविष्कार से पहले भी होती रही है। देशी बैल पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना तथा मिट्टी को खराब किए बिना खेतों की जुताई करते हैं।

**2. दूध:** देशी गाय का दूध अपनी समृद्धि और अद्वितीय गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें आमतौर पर ।-2 बीटा-कैसिइन प्रोटीन का उच्च स्तर होता है, जिसे कुछ विदेशी गाय नस्लों में पाए जाने वाले ।-1 बीटा-कैसिइन प्रोटीन की तुलना में अधिक आसानी से पचने योग्य माना जाता है। ।-2 दूध को हृदय स्वास्थ्य, मधुमेह नियंत्रण और मजबूत प्रतिरक्षा को बढ़ावा देने के लिए भी जाना जाता है। इसके अतिरिक्त, देशी गायों के दूध में लाभकारी एंजाइम और सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं, जो इसके पोषण मूल्य में योगदान करते हैं।

**3. गोबर:** भारतीय नस्ल की गायों के गोबर का उपयोग कृषि तथा औषधि आदि में किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि एक गाय 30 एकड़ भूमि को उर्वर बनाने के लिए पर्याप्त है। एक ग्राम गाय के गोबर में 300 से 500 करोड़ तक विभिन्न कृषि उपयोगी जीवाणु होते हैं। गोबर एंटीबायोटिक, एंटीसेप्टिक, एंटी-फंगल और एंटीऑक्सीडेंट हैं। यह कीटाणुनाशक होते है। साथ ही साथ यह मिट्टी की उर्वरता में भी सुधार करता है। यदि किसी व्यक्ति के पास देशी गाय है तो वह शून्य लागत पर सफलतापूर्वक खेती कर सकता है।

**4. गोमूत्र:** गोमूत्र में ऐसे गुण होते है जो कीटों और अन्य जंतुओं को दूर भगाते हैं। जिससे फसलों को प्राकृतिक रूप से सुरक्षा मिलती है। प्राकृतिक खेती में विभिन्न प्रकार के कीटनाशक, जंतुनाशक जैसे अग्निअस्त्र, ब्रम्हास्त्र, दशपर्णी अर्क इत्यादि बनाने में गोबर के साथ गोमूत्र एक प्रभावी घटक होता है। इनका स्प्रे फसलों को कीटों और बीमारियों से बचाने में मदद करता है। गोमूत्र एवं गोबर का उपयोग बीजामृत बनाने हेतु किया जाता है जो बीजों को उपचारित करने और अंकुरण को बढ़ावा देने में मदद करता है। गोबर और गोमूत्र को मिलाकर वर्मीकम्पोस्ट भी बनाया जा सकता है, जो मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार करता है और फसल की पैदावार बढ़ाता है।

**5. देशी गाय के सींग:** देशी गाय के सींगों को जलाकर गोकाशी बनाया जाता है, जो एक प्राकृतिक धूप है। यह धूप एक प्राकृतिक कीट विकर्षक है, जिसका उपयोग मच्छरों और अन्य कीटों को दूर भगाने के लिए किया जाता है।

**देशी गाय के उत्पाद एवं सहउत्पादः बनाने की प्रक्रिया तथा प्राकृतिक खेती में उपयोग के तरीके**-यदि हम पारंपरिक कृषि तकनीकों का उपयोग करते है तो दूध देना बंद करने के बाद भी देशी गाय की आवश्यकता होगी। उनके सहउत्पाद जैसे नीमास्त्र, ब्रम्हास्त्र, दशपर्णी अर्क, बीजामृत, जीवामृत, कम्पोस्ट एवं वर्मीकम्पोस्ट रसायन मुक्त, प्राकृतिक और जैविक खेती में मदद करते है। इन उत्पादों एवं सहउत्पादों को बनाने की विधि एवं उपयोग की प्रक्रिया निम्नलिखित है।

**1. नीमास्त्र:** यह बहुत ही प्रभावी जैविक कीट विनाशक है। यह रस-चूसक कीट एवं इल्ली ईएस कीटों को नियंत्रित करने के लिए उपयोग में लाया जाता है।

**आवश्यक सामग्री:** 1. पानी 200 लीटर 2. गाय का गोबर 2 किलो ग्राम 3. गोमूत्र 10 लीटर 4. नीम की पत्तियाँ 10 किलो ग्राम

**विधि:** एक बर्तन में 200 लीटर पानी लेते है। इसमें 10 लीटर गोमूत्र, 10 किलो नीम की बारीक कटी पत्तियां एवं 2 किलो गोबर मिलाते है । मिश्रण को एक छड़ी से दक्षिणवर्ती दिशा में घुमाते है। इसे छायेदार स्थान पर ढक कर रख देते है। घोल को प्रतिदिन सुबह शाम घड़ी की सुई की दिशा में हिलाते है। 48 घंटे बाद यह घोल उपयोग हेतु तैयार हो जाता है। तैयार घोल को मलमल के कपडे से छान लेते है। नीमास्त्र को 6 महीने तक संग्रहीत करके भी रखा जा सकता है।

**2. ब्रह्मास्त्र:** यह एक प्राकृतिक कीटनाशक है, जिसमें कीटों को दूर रखने के लिए विशिष्ट एल्कलॉइड होते हैं। यह फलियों और फलों में मौजूद सभी चूसने वाले कीटों और छिपी हुई इल्लियों को नियंत्रित करता है।

**आवश्यक सामग्री:** 1. गोमूत्रः 20 लीटर 2. नीम की पत्तियांः 2 किलो ग्राम 3. करंज की पत्तियांः 2 किलो ग्राम 4. सरीफा की पत्तियांः 2 किलो ग्राम 5. धतूरे की पत्तियांः 2 किलो ग्राम

**विधि:** एक बर्तन में 20 लीटर गौमूत्र, 2 किलो नीम की पत्ति, 2 किलो करंज की पत्ति, 2 किलो सरीफा की पत्ति एवं 2 किलो धतूरे की पत्तियों का पेस्ट मिलाते है। इसे एक या दो उबाल आने तक धीमी आंच पर पकाते है। इसे घडी की सुई की दिशा में हिलाते है । दो उबाल आने के बाद उबालना बंद कर देते है और इसे 48 घंटे तक ठंडा होने देते है ताकि पत्तियों में मौजूद एल्कलॉइड मूत्र में मिल जाए। 48 घंटे के बाद घोल को मलमल के कपड़े से छानकर रख लेते है। इसे छाया में रखना बेहतर होता है। यह मिश्रण 6 महीने तक उपयोग के लिए संग्रहीत किया जा सकता है।

**उपयोग:** 6-8 लीटर ब्रह्मास्त्र को 200 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसलों के पत्ते पर स्प्रे के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

**3. अग्निस्त्र:** इसका उपयोग सभी रस चूसने वाले कीटों, फली में छेद करने वाले, फली को कुतरकर खाने वाले, पत्ती में छेद करने वाले, तना छेदने वाले कीट और कैटरपिलर को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

**आवश्यक सामग्री:** 1. गाय का मूत्रः 20 लीटर 2. नीम की पत्तिः 2 किलो 3. तम्बाकू पाउडरः 500 ग्राम 4. हरी मिर्चः 500 ग्राम 5. लहसुन का पेस्टः 250 ग्राम 6. हल्दी पाउडरः 200 ग्राम

**विधि:** एक बर्तन में 200 लीटर गोमूत्र, 2 किलो नीम की पत्तियों का पेस्ट, 500 ग्राम तंबाकू पाउडर, 500 ग्राम हरी मिर्च का पेस्ट, 250 ग्राम लहसुन का पेस्ट और 200 ग्राम हल्दी पाउडर डाल कर मिलाते है। मिश्रण को दक्षिणवर्ती दिशा में हिलाते है और इसे ढक्कन से ढक कर रख देते है और फिर इस मिश्रण को झाग आने तक उबालते है। झाग आने के बाद इसे आग से हटा देते है और बर्तन को 48 घंटे तक ठंडा करने के लिए सीधे धूप से दूर छाया में रखते है। इस किण्वन अवधि के दौरान घटकों को दिन में दो बार हिलाते है। 48 घंटे के बाद इसे पतले मलमल के कपड़े से छानकर रख लेते है। इसे 3 महीने तक संग्रहीत किया जा सकता है।

**उपयोग:** 6-8 लीटर अग्निआस्त्र को 200 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसलों के पत्ते पर छिड़काव करना चाहिए।

**4. दशपर्णी अर्क:** यह नीमास्त्र, ब्रम्हास्त्र और अग्निआस्त्र के विकल्प के रूप में कार्य करता है। इसका उपयोग सभी प्रकार के कीटों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

**आवश्यक सामग्री:** 1. पानीः 200 लीटर 2. गोमूत्रः 20 लीटर 3. गोबरः 2 किलो 4. हल्दी पाउडरः 500 ग्राम 5. हींगः 10 ग्राम 6. तंबाकू पाउडरः 1 किलो7. मिर्च का गूदाः 1 किलो 8. लहसुन का पेस्टः 500 ग्राम 9. अदरक का पेस्टः 200 ग्राम 10. निम्नलिखित कोई भी 10 प्रकार की पत्तियां

'**नीम की पत्तियाँ**-3 किलो, सरीफा की पत्तियाँ-2 किलो, अरंडी की पत्तियाँ-2 किलो, धतूरा की पत्तियाँ-2 किलो, गुड़हल की पत्तियां-2 किलो, आम की पत्तियां- 2 किलो, पुटुस की पत्तियां-2 किलो, अमरूद की पत्तियाँ- 2 किलो, अनार की पत्तियाँ- 2 किलो, सहजन की पत्तियाँ-2 किलो, कॉफी की पत्तियाँ-2 किलो, महुआ की पत्तियां- 2 किलो, कोको की पत्तियां-2 किलो, बबूल की पत्तियां-2 किलो, करेले की पत्तियां-2 किलो

**विधि:** एक बर्तन में 200 लीटर पानी लेते है उसमें 20 लीटर गोमूत्र और 2 किलो गाय का गोबर डालते है। इसे अच्छे से मिलाते है तथा बोरी से ढककर 2 घंटे के लिए अलग रख देते है। मिश्रण में 500 ग्राम हल्दी पाउडर, 200 ग्राम अदरक का पेस्ट, 10 ग्राम हींग मिलाते है। इसे अच्छी तरह से घड़ी की सुई की दिशा में हिलाते है। बोरी से ढक कर रात भर रखते है। अगली सुबह, 1 किलो तम्बाकू पाउडर, 2 किलो गर्म हरी मिर्च का पेस्ट और 500 ग्राम लहसुन का पेस्ट डालते है और इसे लकड़ी की छड़ी से दक्षिणावर्ती दिशा में अच्छी तरह से हिलाते है फिर बोरी से ढक देते है और छाया में 24 घंटे के लिए छोड़ देते है। अगली सुबह, मिश्रण में सूची से किसी भी 10 प्रकार की पत्तियों का पेस्ट मिलाते है। मिश्रण को अच्छी तरह से हिलाते है और बोरी से ढक देते है। इसे किण्वन के लिए 30-40 दिनों तक रखा जाता है ताकि पत्तियों में मौजूद एल्कलॉइड मिश्रण में घुल जाएं।

# जलवायु अनुकूल, पोषण सुरक्षा: बाजरा की खेती एक आदर्श विकल्प

✍ दिग्विजय सिंह, रत्नेश कुमार झा
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
पूसा, समस्तीपुर, बिहार- 848125

✍ हर्षिता सिंह सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

✍ ओम प्रकाश कृषि विज्ञान केंद्र, ममित, लेंगपुई, मिजोरम- 796421

बाजरा, जिसे मिलेट वर्ग के अंतर्गत सबसे अधिक क्षेत्रफल में उगाया जाने वाला अनाज माना जाता है, पारंपरिक रूप से %गरीबों के भोजन% के रूप में जाना जाता रहा है। हालांकि वर्तमान में यह धारणा बदल रही है और बाजरा एक अत्यंत पोषक, टिकाऊ और बहुपयोगी फसल के रूप में वैश्विक स्तर पर मान्यता प्राप्त कर चुका है। यह मुख्य रूप से एशिया और अफ्रीका के अर्ध-शुष्क और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाया जाता है, जहाँ जल की कमी और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी यह फसल सफलतापूर्वक पनपती है। ऐसी जलवायु अनुकूलता के कारण यह उन स्थानों में भी उगाई जा सकती है, जहाँ परंपरागत अनाज जैसे मक्का, गेहूं या धान की खेती करना संभव नहीं होता। बाजरा न केवल खाद्यान्न के रूप में उपयोगी है, बल्कि यह पशु चारा और बायोफ्यूल (जैव ईंधन) के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पोषण के दृष्टिकोण से देखें तो यह आयरन, जिंक, मैग्नीशियम, और फाइबर जैसे अनेक सूक्ष्म पोषक तत्वों से समृद्ध है। इसके सेवन से पाचन क्रिया में सुधार, रक्त शर्करा नियंत्रण, और रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि जैसे कई स्वास्थ्य लाभ मिलते हैं। वर्तमान में इसे सीलिएक रोग (ग्लूटेन एलर्जी), कब्ज और डायबिटीज़ जैसे कई गैर-संचारी रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए भी उपयुक्त माना जा रहा है। बदलते समय के साथ बाजरा अब केवल 'गरीबों का भोजन' नहीं, बल्कि 'सुपरफूड' के रूप में उभरकर स्वास्थ्य और खाद्य सुरक्षा का एक सशक्त विकल्प बन चुका है।

सतत कृषि के दृष्टिकोण से बाजरा एक अत्यंत उपयोगी फसल है, क्योंकि इसकी खेती के लिए बहुत कम पानी की आवश्यकता होती है और यह सूखा-प्रतिरोधी होने के कारण वर्षा आधारित क्षेत्रों में आसानी से उगाई जा सकती है, जिससे जल संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। बाजरा जैविक और प्राकृतिक तरीकों से उगाया जा सकता है, जिससे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता घटती है और यह मिट्टी व पर्यावरण के लिए अनुकूल बनता है। यह फसल उच्च तापमान और असमान वर्षा जैसी कठोर जलवायु परिस्थितियों में भी अच्छी पैदावार देती है, जिससे यह जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशील और टिकाऊ बनती है। साथ ही, इसे अन्य फसलों के साथ फसल चक्र में शामिल किया जा सकता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है और कीट-रोग का खतरा भी कम होता है।

**पोषण की चुनौती के समाधान में बाजरा की खेती का महत्व:** लौह तत्व की कमी से उत्पन्न होने वाला रोग-एनीमिया-विश्व स्तर पर एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है, जिससे करोड़ों लोग प्रभावित हैं। यह स्थिति रक्त में हीमोग्लोबिन की अपर्याप्तता के कारण उत्पन्न होती है, जिससे शरीर के अंगों तक पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं पहुंच पाती। जिंक या दस्ता एक अनिवार्य सूक्ष्म पोषक तत्त्व है, जो मानव शरीर में होने वाली जैव रासायनिक प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह तत्त्व कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा और न्यूक्लिक एसिड के चयापचय में सक्रिय रहने वाले 300 से अधिक एंजाइमों की क्रियाशीलता में सह-कारक के रूप में योगदान देता है। इस कारण यह न केवल मानव स्वास्थ्य, बल्कि पादपों और पशुओं के सामान्य विकास और वृद्धि के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। भारत में सूक्ष्म पोषक तत्वों की व्यापक कमी, विशेषकर लौह और जिंक की न्यूनता, कुपोषित शिशुओं, प्रजनन आयु की महिलाओं, गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली माताओं के बीच निरंतर एक प्रमुख स्वास्थ्य चुनौती बनी हुई है। ऐसी स्थिति में आहार विविधता को बढ़ावा देना–अर्थात विभिन्न प्रकार के पोषण-समृद्ध खाद्य पदार्थों का सेवन करना–कुपोषण से निपटने और जनसंख्या में आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति सुनिश्चित करने का एक प्रभावी उपाय सिद्ध हो सकता है। साथ ही, यह कृषि क्षेत्र में मुख्य खाद्य फसलों पर पड़ने वाले अत्यधिक दबाव को भी संतुलित करने में सहायक बन सकता है। बाजरा में पोषक तत्वों की भरपूर मात्रा होती है, जैसे प्रोटीन, फाइबर और मिनरल्स, जो इसे स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद बनाते हैं। बाजार में इसकी बढ़ती मांग से इसे एक मूल्यवान कृषि उत्पाद बना सकती है। इसके अलावा, बाजरा पशु आहार के रूप में भी उपयोगी है, जिससे इसके व्यापारिक उपयोग की संभावनाएं और बढ़ जाती हैं।

**सारणी 01: बाजरा में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व एवं उनकी मात्रा**

| पोषक तत्व | प्रतिशत (100 ग्राम में) |
|---|---|
| ऊर्जा (कैलोरी) | 378 kcal (उर्जा की मात्रा) |
| प्रोटीन | 11.6 ग्राम (11.6%) |
| कार्बोहाइड्रेट | 67.5 ग्राम (67.5%) |
| फाइबर (आहार तंतु) | 8.5 ग्राम (8.5%) |
| वसा (Fat) | 4.2 ग्राम (4.2%) |
| कैल्शियम | 42 मिलीग्राम (0.042%) |
| आयरन (लोहा) | 2.3 मिलीग्राम (0.0023%) |
| मैग्नीशियम | 114 मिलीग्राम (0.114%) |
| फास्फोरस | 289 मिलीग्राम (0.289%) |
| पोटैशियम | 195 मिलीग्राम (0.195%) |
| जिंक (जस्ता) | 1.6 मिलीग्राम (0.0016%) |
| विटामिन B1 (थायमिन) | 0.4 मिलीग्राम (0.0004%) |
| विटामिन B2 (रिबोफ्लेविन) | 0.1 मिलीग्राम (0.0001%) |

**बिहार में बाजरा उत्पादन की संभावनाएं:** बिहार में बाजरा उत्पादन की संभावनाएं बहुत अच्छी हैं, क्योंकि यह राज्य कई दृष्टियों से बाजरा उगाने के लिए उपयुक्त है। सबसे पहले, बिहार की जलवायु और मिट्टी बाजरा के लिए आदर्श हैं। राज्य की उष्णकटिबंधीय जलवायु और लाल-भूरी मिट्टी बाजरा की खेती के लिए उपयुक्त हैं, और यह कम पानी में भी अच्छी पैदावार दे सकता है, जिससे सूखा या कम बारिश वाले क्षेत्रों में इसकी खेती बढ़ाई जा सकती है। खासकर पानी की कमी वाले इलाकों में, बाजरा एक वैकल्पिक फसल के रूप में किसानों के लिए लाभकारी साबित हो सकता है। इसके अलावा, बिहार सरकार ने कई योजनाओं के माध्यम से बाजरा जैसे कम पानी वाली फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देने की दिशा में कई कदम उठाए हैं। "मुख्यमंत्री कृषि ऋण माफी योजना", "प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना" और "राष्ट्रीय कृषि विकास योजना" जैसी योजनाओं से किसानों को वित्तीय सहायता, तकनीकी प्रशिक्षण और उच्च गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता मिलती है। इन योजनाओं से किसानों को बाजरा की खेती के लिए प्रोत्साहन मिलता है और उनके जोखिम को कम करने में मदद मिलती है।

**खेत की तैयारी एवं बुवाई:** बाजरा की खेती के लिए हल्की दोमट बलुई मृदा उपयुक्त मानी जाती है, जिसमें जल निकास की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। बाजरा के बीज बहुत छोटे होते हैं, इसलिए इसके अच्छे जमाव के लिए भूमि का भुरभरा होना आवश्यक है। खेत की तैयारी के लिए दो से तीन बार कल्टीवेटर से जुताई कर पाटा लगाना चाहिए। खरीफ बाजरा की बुआई जुलाई के अंतिम सप्ताह से लेकर 15 अगस्त तक कर लेनी चाहिए, जबकि जायद बाजरा बोने का उपयुक्त समय जनवरी के अंतिम सप्ताह से फरवरी के पहले सप्ताह तक होता है। बुआई हेतु बीज की मात्रा 5-6 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए। बुआई के समय क्यारियों के बीच की दूरी 45 सेंटीमीटर तथा पौधों के बीच की दूरी 15 सेंटीमीटर रखनी चाहिए।

**उन्नत प्रभेद:** बिहार हेतु उपयुक्त बाजरा की उन्नत किस्में- एनबीएच 30 (NBH 30), आरएचबी 121 (RHB 121), एचएचबी 67 सुधारित (HHB 67 Improved), आईसीएमवी 221 (ICMV 221), राज बाजरा 452, सुपर बाजरा 1 और सुपर बाजरा 4।

**उर्वरक प्रबंधन:** मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें। संकर प्रजाति के लिए प्रति हेक्टेयर 80 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस और 40 किलोग्राम पोटाश का प्रयोग करें। फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा बुआई के समय दें। बची हुई नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा 30-35 दिन बाद और शेष बाली निकलने के समय भुरकाव करें।

**खरपतवार प्रबंधन :** बाजरा में निराई-गुड़ाई जरूरी है। पहली निराई बुआई के 15 दिन बाद और दूसरी 35-40 दिन बाद करें। रासायनिक नियंत्रण हेतु 1 किलोग्राम एट्राजीन या सिमाजीन (सक्रिय तत्व) को 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे. बुआई के दो दिन के अंदर छिड़काव करें।

**सिंचाई प्रबंधन :** खरीफ मौसम में आवश्यकता अनुसार 1-2 सिंचाई करें, यदि वर्षा में अंतराल हो। जबकि जायद या गर्मी के मौसम में अधिक वाष्पीकरण के कारण 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

**कीट प्रबंधन :** बाजरा के प्रमुख कीट तनाछेदक और टिड्डी हैं। तनाछेदक नियंत्रण हेतु 2 लीटर एल्ड्रिन 20 सीसी का दो बार छिड़काव करें। टिड्डी नियंत्रण के लिए बी.एच.सी. 5% पाउडर का छिड़काव करें।

**रोग प्रबंधन:** डाउनी मिल्ड्यू की रोकथाम हेतु डाइथेन एम-45 या जेड-78 से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें। अर्गट नियंत्रण हेतु बीजों को पहले 20% नमक के घोल में उपचारित कर ताजे पानी से धोएं, फिर थीरम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से बीजोपचार करें।

**फसल कटाई, मड़ाई एवं भंडारण:** जब दानों में 20% नमी हो और वे सख्त हो जाएं, तो हंसिया से बाली या पूरे पौधे काटकर 4-5 दिन धूप में सुखाएं। मड़ाई मानव श्रम, बैलों या ओलपैड थ्रेशर से की जा सकती है। मैनुअल विधि में उत्पादन 17-20 किग्रा/घंटा होता है, जबकि मशीन से 75 किग्रा/घंटा तक प्राप्त होता है और लागत भी कम (3-3.5 रु./किग्रा) आती है। थ्रेशिंग के बाद दानों को 10-12% नमी तक सुखाकर, सूखी जगह पर मनी बैग में सुरक्षित रखें।

**उत्पादन:** वर्षा आधारित खेती में बाजरा की उपज 12 से 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है, जबकि सिंचित खेती में यह 25 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है। इसके अतिरिक्त, 100-125 क्विंटल हरा चारा भी प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है।

**स्वास्थ्य लाभ:** बाजरा एक पोषक तत्वों से भरपूर अनाज है, जो स्वास्थ्य के कई लाभ प्रदान करता है। इसमें प्रोटीन, फाइबर, आयरन, कैल्शियम, और मैग्नीशियम जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व होते हैं, जो हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं, पाचन को सुधारते हैं, और रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। यह वजन घटाने में सहायक है, हड्डियों को मजबूत करता है और त्वचा व बालों के स्वास्थ्य को भी सुधारता है। इसके अलावा, बाजरा में उपस्थित एंटीऑक्सीडेंट्स और मिनरल्स हॉर्मोनल संतुलन बनाए रखने में मदद करते हैं, जिससे यह एक संपूर्ण स्वास्थ्य लाभकारी आहार बनता है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


कल्प दास (सब्जी विज्ञान विभाग)
पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)

# गाजर की फसल में प्रमुख रोग, उनके लक्षण एवं समेकित नियंत्रण उपाय

गाजर की खेती में जड़ों की गुणवत्ता का विशेष महत्व होता है, क्योंकि यही भाग उपभोग और विपणन के लिए उपयोग किया जाता है। यदि जड़ों में किसी प्रकार की शारीरिक विकृति या रोगजनित धब्बे उत्पन्न हो जाएँ, तो उपज की गुणवत्ता तथा बाजार मूल्य दोनों प्रभावित होते हैं। जड़ों से संबंधित दो प्रमुख समस्याएँ– जड़ों में दरारें पड़ना तथा जड़ों में धंसे हुए धब्बे (कैविटी स्पॉट)–अक्सर किसानों के लिए चिंता का कारण बनती हैं। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है:

**1. जड़ों से संबंधित रोग**

**(क) जड़ों में दरारें पड़ना (Root Cracking)-** गाजर की जड़ों में दरारें पड़ना एक शारीरिक विकृति (Physiological Disorder) है, जो प्रायः असंतुलित पोषण एवं अनियमित सिंचाई प्रबंधन के कारण उत्पन्न होती है। जब लंबे समय तक खेत में नमी की कमी रहती है और अचानक अधिक सिंचाई कर दी जाती है, तो जड़ें तेजी से पानी अवशोषित करती हैं। इस अचानक वृद्धि के कारण जड़ की बाहरी त्वचा (परिधीय भाग) दबाव सहन नहीं कर पाती और उसमें लम्बवत दरारें पड़ जाती हैं।

**प्रमुख कारण:** * अधिक सिंचाई, विशेषकर सूखे के बाद अचानक भारी पानी देना * नाइट्रोजन उर्वरकों का अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग * मिट्टी में असमान नमी की स्थिति * भारी या कड़ी मिट्टी में जल संचयन

**लक्षण:** * जड़ों में लंबी, गहरी दरारें दिखाई देना * दरारें अक्सर जड़ के ऊपरी भाग से नीचे की ओर फैलती हैं * प्रभावित जड़ों का आकार असमान हो जाता है * बाजार में ऐसी जड़ों का मूल्य कम मिलता है

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * सिंचाई का नियमित एवं संतुलित कार्यक्रम अपनाएँ; मिट्टी में नमी का स्तर समान बनाए रखें * नाइट्रोजन उर्वरकों का अनुशंसित मात्रा में विभाजित खुराक में प्रयोग करें * जैविक खाद एवं कंपोस्ट का उपयोग कर मिट्टी की संरचना सुधारें * अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी का चयन करें * फसल के विकास काल में अचानक अधिक सिंचाई से बचें

**(ख) जड़ों में खाली धंसे धब्बे (Cavity Spot):** कैविटी स्पॉट एक रोगजनित समस्या है, जो प्रायः अधिक नमी और मिट्टी में जल निकास की कमी के कारण उत्पन्न होती है। यह मुख्यतः पिथियम प्रजाति के फफूंद से संबंधित माना जाता है। यह रोग जड़ों की बाहरी सतह पर छोटे, धंसे हुए धब्बों के रूप में प्रारंभ होता है, जो बाद में आकार में बढ़ सकते हैं।

**प्रमुख कारण:** * खेत में लगातार अधिक नमी * जल निकास की उचित व्यवस्था का अभाव * भारी एवं चिकनी मिट्टी * अत्यधिक सिंचाई

**लक्षण:** * जड़ों की सतह पर आयताकार या गोल, धंसे हुए भूरे धब्बे * धब्बे समय के साथ बड़े होकर घाव का रूप ले लेते हैं * प्रभावित जड़ों की बाहरी सतह खुरदरी हो जाती है * भंडारण क्षमता में कमी

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करें * आवश्यकता के अनुसार ही सिंचाई करें, जलभराव न होने दें * संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएँ * फसल चक्र (Crop Rotation) अपनाएँ, विशेषकर गाजर के बाद ऐसी फसल लें जो फफूंद के चक्र को तोड़े
* रोग के अधिक प्रकोप की स्थिति में अनुशंसित फफूंदनाशी का प्रयोग करें

**2. फफूंद जनित रोग**

**(क) आर्द्र विगलन (Damping Off)**

**कारक जीव: Pythium प्रजाति**– यह रोग विशेष रूप से नर्सरी एवं प्रारंभिक वृद्धि अवस्था में अधिक हानि पहुँचाता है। अधिक नमी, जलभराव तथा ठंडी परिस्थितियाँ इसके विकास को बढ़ावा देती हैं।

**लक्षण:** * अंकुरण के तुरंत बाद पौधों का जमीन की सतह से गिर जाना। * बीज का मिट्टी में ही सड़ जाना, जिससे अंकुर बाहर नहीं निकल पाता। * तने का निचला भाग पानीदार होकर गल जाता है।

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * बुवाई से पूर्व बीजों को 3 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। * नर्सरी में जलभराव न होने दें तथा उचित जल निकास की व्यवस्था रखें। * हल्की एवं भुरभुरी मिट्टी का उपयोग करें। * आवश्यकता पड़ने पर अनुशंसित फफूंदनाशी का छिड़काव करें।

**(ख) स्क्लेरोटीनिया विगलन (Sclerotinia Rot)**–यह रोग ठंडे एवं अधिक आर्द्र वातावरण में तेजी से फैलता है और पौधों के विभिन्न भागों को प्रभावित करता है।

**लक्षण:** * पत्तियों एवं तनों पर प्रारंभ में सूखे धब्बे दिखाई देते हैं। * बाद में पौधे पीले होकर सूखने लगते हैं। * जड़ों में सड़न उत्पन्न हो जाती है। * प्रभावित भागों पर सफेद रुईनुमा कवक वृद्धि दिखाई दे सकती है।

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * बुवाई से पूर्व थायरम 30 किलोग्राम प्रति हे. मिट्टी में मिलाएँ। * कार्बेन्डाजिम 1 किलोग्राम को 1000 लीटर पानी में घोलकर 15-20 दिन के अंतराल पर 3-4 छिड़काव करें। * खेत में फसल चक्र अपनाएँ और संक्रमित अवशेषों को नष्ट करें।

**(ग) चूर्णी फफूंद (Powdery Mildew)-** यह रोग शुष्क लेकिन ठंडे वातावरण में अधिक प्रकट होता है।

**लक्षण:** * पत्तियों, तनों एवं अन्य भागों पर सफेद चूर्ण जैसा आवरण दिखाई देता है। * पत्तियाँ पीली होकर समय से पहले सूख सकती हैं। * प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया प्रभावित होने से उपज घटती है।

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * कैराथेन 50 मि.ली. प्रति 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। या घुलनशील सल्फर 200 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। * रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखते ही उपचार करें।

**(घ) सर्कोस्पोरा पर्ण झुलसा (Cercospora Leaf Blight)-** यह रोग पत्तियों एवं बीज उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करता है।

**लक्षण:** * पत्तियों पर भूरे या काले गोल धब्बे बनते हैं। * धब्बों के चारों ओर हल्का पीला घेरा हो सकता है। * पत्तियाँ मुड़कर झुलस जाती हैं।
* बीज उत्पादन में कमी आती है।

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * बीज उपचार थायरम से करें। * रोग दिखाई देने पर मैंकोजेब 25 किग्रा या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 किग्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। * फसल अवशेषों को खेत से हटाकर नष्ट करें।

**3. जीवाणु एवं विषाणु जनित रोग**

(क) जीवाणुज मृदु विगलन (Bacterial Soft Rot)

**कारक:** Erwinia carotovora- यह रोग मुख्यतः भंडारण एवं अधिक नमी की स्थिति में गंभीर हो जाता है।

**लक्षण:** * गूदेदार जड़ों का नरम होकर सड़ना। * दुर्गंधयुक्त गलन। * प्रभावित भाग पानीदार हो जाते हैं।

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * खेत में उचित जल निकास सुनिश्चित करें। * संतुलित नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग करें। * संक्रमित पौधों को तुरंत निकालकर नष्ट करें। * भंडारण से पूर्व स्वस्थ जड़ों का चयन करें।

**(ख) कैरट येलोज (Carrot Yellows – विषाणु जनित)**–यह रोग कीटों द्वारा फैलता है और जड़ों की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।

**लक्षण:** * पत्तियों का पीला एवं चितकबरा होना। * पत्तियों का मुड़ना। * जड़ों का आकार छोटा रह जाना। * स्वाद में कड़वाहट।

**नियंत्रण एवं प्रबंधन:** * 0.02% मैलाथियान का छिड़काव कर वाहक कीटों को नियंत्रित करें। * रोगग्रस्त पौधों को खेत से हटा दें।

**सूत्रकृमि (Nematode) का प्रकोप-** सूत्रकृमि सूक्ष्म कीट हैं जो मिट्टी में रहते हैं और जड़ों को क्षति पहुँचाते हैं।

**लक्षण:** * जड़ों में गांठें बनना। * पौधों का बौना रह जाना। * पत्तियों का पीला पड़ना और मुरझाना। * उपज में कमी।

**समेकित नियंत्रण (Integrated Management):**

1.गर्मियों में गहरी जुताई कर मिट्टी को धूप में खुला छोड़ें।
2.बीज उपचार कार्बोफ्यूरान/फोरेट से करें।
3.जैविक खाद 20-25 दिन पहले मिट्टी में मिलाएँ।
4.प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।
5.आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक उपचार:
* कार्बोफ्यूरान/फोरेट 2 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर।
* एल्डीकार्ब (टेमिक) 11 किग्रा प्रति हेक्टेयर।

**खुदाई का उचित समय-** गाजर की खुदाई उस समय करनी चाहिए जब जड़ों का ऊपरी व्यास लगभग 2.5-3.5 सेंटीमीटर हो जाए। समय से अधिक देर करने पर जड़ें कठोर हो सकती हैं तथा गुणवत्ता में कमी आ सकती है।

**संभावित पैदावार-**यदि किसान उचित किस्म का चयन करें, संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएं, नियमित सिंचाई करें तथा रोगों का समय पर नियंत्रण करें तो सामान्य परिस्थितियों में 180-200 क्विं. प्रति हे. तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। उन्नत तकनीकों और समेकित रोग प्रबंधन अपनाने से इससे भी अधिक उपज संभव है।

ISSN-2582-5976
www.krishakbharti.in
मध्य भारत कृषक भारती
हिन्दी भाषी राज्यों में प्रमुखता से पढ़ी जाने वाली कृषि पत्रिका


# धान सघनता पद्धति: धान उत्पादन की आधुनिक तकनीक

✍**मनीष कुमार सोनी** सस्य विज्ञान विभाग
गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पंतनगर, (उत्तराखण्ड)

✍**अभिषेक द्विवेदी** कीट विज्ञान विभाग

✍**अनुराग सिंह** मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग

✍**दीपांशु सिंह, अमन यादव** कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज,अयोध्या (उ.प्र.)

**परिचय:** मेडागास्कर विधि धान उत्पादन की एक तकनीक है जिसके द्वारा पानी के बहुत कम प्रयोग से भी धान का बहुत अच्छा उत्पादन सम्भव होता है। इसे सघन धान प्रनाली (System of Rice Intensification-SRI या श्री पद्धति) के नाम से भी जाना जाता है। जहां पारंपरिक तकनीक में धान के पौधों को पानी से लबालब भरे खेतों में उगाया जाता है, वहीं मेडागास्कर तकनीक में पौधों की जड़ों में नमी बरकरार रखना ही पर्याप्त होता है, लेकिन सिंचाई के पुख्ता इंतजाम जरूरी हैं, ताकि जरूरत पड़ने पर फसल की सिंचाई की जा सके। सामान्यतः जमीन पर दरारें उभरने पर ही दोबारा सिंचाई करनी होती है। इस तकनीक से धान की खेती में जहां भूमि, श्रम, पूंजी और पानी कम लगता है, वहीं उत्पादन 300 प्रतिशत तक ज्यादा मिलता है। SRI एक उन्नत धान उत्पादन तकनीक है, जिसमें कम बीज, कम पानी और जैविक संसाधनों का उपयोग करके अधिक उपज प्राप्त की जाती है। यह पद्धति 1980 के दशक में Henri de Laulanié द्वारा Madagascar में विकसित की गई थी।

**SRI की उत्पत्ति और विकास: -SRI (System of Rice Intensification -** धान सघनता प्रणाली) धान उगाने की एक पारिस्थितिक अनुकूल विधि है, जिसे 1980 के दशक में मेडागास्कर में फादर हेनरी डी लौलानी ने विकसित किया था। यह कम बीज, कम पानी और जैविक खाद का उपयोग करके 50-100त्न अधिक उपज और जड़ों के बेहतर विकास पर केंद्रित है, जिसमें 8-12 दिन के छोटे पौधों की रोपाई की जाती है।

**उत्पत्ति (1980 का दशक):** फादर हेनरी डी लौलानी ने मेडागास्कर में स्थानीय किसानों के साथ मिलकर 34 वर्षों तक अनुसंधान किया और 1980 के दशक में इस पद्धति को विकसित किया। यह पद्धति मिट्टी, पानी और पौधों के बेहतर प्रबंधन पर आधारित है।

**विकास (1990 का दशक - अब तक):** 1990 के दशक में, यह तकनीक मेडागास्कर से बाहर फैली। Carnell University के सहयोग से, इसे चीन, इंडोनेशिया, कंबोडिया, श्रीलंका और भारत सहित कई देशों में अपनाया गया। भारत में, 2003 के आसपास आंध्र प्रदेश के 22 जिलों में इसका परीक्षण किया गया और बाद में यह अन्य राज्यों में लोकप्रिय हुई।

**SRI विधि की विशेषताएं:** कम पानी, कम बीज और कम लागत में 40-50% अधिक उपज देती है। इसकी मुख्य विशेषताओं में प्रति वर्ग मीटर कम पौधे (16-25 पौधे), अंकुरित बीजों का जल्दी (8-12 दिन) रोपण, जैविक खादों का उपयोग, खेत में पानी भरा न रखना (सिंचाई की बचत) और निराई-गुड़ाई के लिए वीडर का प्रयोग शामिल है

**कम बीजों की आवश्यकता:** प्रति हेक्टेयर पारंपरिक खेती की तुलना में बहुत कम बीजों की आवश्यकता होती है।

**पौधों की कम उम्र में रोपाई:** 8-12 दिनों के छोटे पौधों की रोपाई की जाती है, जिससे जड़ों का विकास बेहतर होता है।

**अधिक दूरी पर रोपाई:** पौधों के बीच 25×25 सेमी या उससे अधिक की दूरी रखी जाती है, जिससे उन्हें अधिक पोषक तत्व और धूप मिलती है।

**जल प्रबंधन:** खेत में पानी भरा नहीं जाता, बल्कि मिट्टी को नम रखा जाता है (समय-समय पर सुखाना और भिगोना), जिससे 25-30% पानी की बचत होती है।

**जैविक खादों का प्रयोग:** रासायनिक उर्वरकों की जगह गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट पर जोर दिया जाता है।

**निराई-गुड़ाई:** वीडर का उपयोग करने से मिट्टी में हवा का संचार (aeration) बढ़ता है और खरपतवार नियंत्रित रहते हैं

**SRI की कृषि-विज्ञान सिद्धांत:**

**जड़ वृद्धि में सुधार:** चौड़ी दूरी और कम पानी की वजह से पौधों की जड़ें गहराई तक फैलती हैं। इससे पोषक तत्वों का अवशोषण अधिक होता है।

**प्रकाश संश्लेषण में वृद्धि:** कम घनत्व के कारण पौधों को अधिक धूप मिलती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण बढ़ता है।

**सूक्ष्मजीव सक्रियता:** गीला-सूखा चक्र मिट्टी में वायुसंचार बढ़ाता है, जिससे लाभकारी सूक्ष्मजीव सक्रिय होते हैं।

**अधिक टिलर :** SRI में एक पौधे से 30-50 तक टिलर निकल सकते हैं जबकि पारंपरिक विधि में 10-15 ही निकलते हैं।

**नर्सरी प्रबंधन :** 8-12 दिन की कोमल पौध रोपाई के लिए तैयार होती है।

**बीज चयन:** स्वस्थ, प्रमाणित एवं उच्च अंकुरण क्षमता वाले बीज चुनें।

**बीज मात्रा:** SRI में प्रति एकड़ केवल 5-8 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता है।

**बीज उपचार:** नमक घोल से हल्के बीज अलग करें, फफूंदनाशक या जैविक उपचार (ट्राइकोडर्मा/जीवामृत) करें।

**नर्सरी तैयारी:** ऊँची क्यारी (Raised Bed) बनाएं, मिट्टी में गोबर की सड़ी खाद मिलाएं।

**बुवाई:** बीजों को पतली परत में छिड़कें,हल्की मिट्टी से ढकें।

**पोषक तत्व प्रबंधन :** जैविक खाद (गोबर, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट) का प्रयोग करें, हरी खाद (ढैंचा, सन) का उपयोग लाभकारी है, रासायनिक उर्वरक संतुलित मात्रा में दें (NPK परीक्षण अनुसार), जैव उर्वरक (Azospirillum, PSB) उपयोगी हैं। टॉप ड्रेसिंग:नाइट्रोजन 2-3 बार में दें।

**SRI विधि के प्रमुख लाभ:** अधिक उत्पादनः पारम्परिक खेती की तुलना में पैदावार में 40 से 50 मन तक की वृद्धि।

**कम पानी की आवश्यकता:** खेत को लगातार जलमग्न रखने के बजाय केवल नम रखा जाता है, जिससे 25-30% पानी की बचत होती है।

**बीज और लागत में कमी:** इस तकनीक में प्रति एकड़ कम बीजों की आवश्यकता होती है, जिससे बीज की लागत 90% तक कम हो सकती है।

**स्वस्थ और मजबूत पौधे:** कम घने रोपण के कारण जड़ों का विकास बेहतर होता है, पौधे ज्यादा कल्ले (tillers) देते हैं, और अनाज का वजन बढ़ता है।

**पर्यावरण के अनुकूल:** इसमें रासायनिक उर्वरकों की निर्भरता कम होती है और मीथेन गैस का उत्सर्जन कम होने से जलवायु के लिए बेहतर है।

**समय की बचत:** इस तकनीक में फसल की परिपक्वता अवधि में 10 दिनों की कमी हो सकती है।

**भारत में SRI का प्रभाव:** भारत में SRI तकनीक को राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM) के अंतर्गत बढ़ावा दिया गया। इससे छोटे और सीमांत किसानों को अधिक लाभ हुआ है।

**मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव**

**मृदा की संरचना में सुधार:** इस विधि में रसायनों के बजाय जैविक खाद (FYM, वर्मीकम्पोस्ट) के उपयोग पर जोर दिया जाता है जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है।

**वायु संचार :** रोटरी वीडर के उपयोग से मिट्टी की बार-बार जुताई होती है, जिससे मिट्टी में वायु संचार बढ़ता है और जड़ें गहराई तक विकसित होती हैं।

**सूक्ष्मजीवों की सक्रियता:** खेत में पानी भरा न रहने के कारण मिट्टी में ऑक्सीजन बनी रहती है, जो फायदेमंद सूक्ष्मजीवों को सक्रिय करती है और पोषक तत्वों को पौधों तक पहुँचाने में मदद करती है।

**जैविक कार्बन:** यह विधि मृदा में कार्बनिक कार्बन को बढ़ाने में सहायक है।

**पारंपरिक बनाम SRI तुलना**

| बिंदु | पारंपरिक | SRI |
|---|---|---|
| बीज दर | 30–40 किग्रा | 5–8 किग्रा |
| पानी | अधिक | कम |
| पौध आयु | 25–30 दिन | 8–12 दिन |
| उपज | सामान्य | अधिक |

**अनुसंधान एवं भविष्य की संभावनाएं-**SRI पद्धति पर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) और विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा शोध किए जा रहे हैं। भविष्य में इसे अन्य फसलों (गेहूँ, गन्ना) में भी अपनाने की संभावना है।

**निष्कर्ष:** धान की सघन खेती प्रणाली, जिसे हिंदी में 'श्री विधि' या मेडागास्कर विधि कहा जाता है, धान उत्पादन की एक आधुनिक और टिकाऊ तकनीक है। इसका मुख्य उद्देश्य कम पानी, कम बीज और कम लागत में अधिक पैदावार प्राप्त करना है। यह विधि पारंपरिक तरीके (खेत में पानी भरकर खेती) से बिल्कुल अलग है

**कम लागत, अधिक मुनाफा:** इस विधि में पारंपरिक खेती की तुलना में 50% से अधिक पानी की बचत होती है और 80-90% कम बीजों की आवश्यकता होती है। इसमें रासायनिक खादों की जगह कार्बनिक खाद (गोबर की खाद) को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे उत्पादन लागत काफी कम हो जाती है।

**अधिकतम उत्पादन :** SRI तकनीक से धान की पैदावार में 30% से 50% या उससे भी अधिक की वृद्धि देखी गई है। स्वस्थ और मजबूत पौधों के कारण, प्रति पौधे अधिक कल्ले (Tillers) निकलते हैं।

**जल संरक्षण :** इस विधि में खेत में लगातार पानी भरने के बजाय "अल्टरनेट वेटिंग एंड ड्राइंग" (AWD - रुक-रुक कर सिंचाई) तकनीक का उपयोग किया जाता है। इससे मिट्टी को नमी मिलने के साथ-साथ ऑक्सीजन (Aeration) भी मिलती है, जो जड़ों के विकास के लिए आवश्यक है।

मध्य भारत कृषक भारती
Participate into the Future of Agriculture & Agro Farming Technology
KISAN
AGRI & AGRO
TECH EXPO
ANDHRA PRADESH
The International B2B and B2C Exhibition and Conference on Agriculture & Horticulture Technologies
26-28 JUNE 2026
(10.30 am to 6.30 pm)
Vijayawada, Amaravathi, Andhra Pradesh
This Event Endorsement & Supported by*
* Confirmation awaited
Organised by:
SHINY TRADE EXHIBITIONS
Call/E-mail for more Information:
+91-9849583036, 9989113036
agri.agrotechexpo@gmail.com
Farm Machinery
Agriculture Inputs
Cold Chain
Processing Technologies
Dairy, Poultry & Live Stock
Organic Farming
Amaravati - The People's Capital of Andhra Pradesh, The Land of Infinite Opportunities

Postal Regd. No.: Gwalior/40020242/2025-27

R.N.I. Regd. No.: MPHIN/2006/16946

मध्य भारत कृषक भारती

मार्च-2026

20 21 22 23 मार्च 2026

अंबेडकर ग्राउंड, रतलाम मध्यप्रदेश | Ambedkar Ground, Ratlam, Madhya Pradesh

# MADHYA BHARAT Agri Expo AND SOLAR, MILLETS FESTIVAL

**LARGEST AND MOST SUCCESSFUL INTERNATIONAL AGRICULTURE EXHIBITION OF MADHYA PRADESH**

INTERNATIONAL EXHIBITION & CONFERENCE ON ORGANIC AGRICULTURE AND NATURAL PRODUCTS, HORTICULTURE, DAIRY, FOOD PROCESSING, SOLAR AND MILLETS PRODUCTS.

ORGANISERS: Balaji Event & Exhibition

CO-ORGANISERS: KRIPALU BALAJI REALINFRA PVT. LTD

SUPPORTED BY

MEDIA PARTNERS: KJ KRASHI JAGRAN, Kisaan Helpline

MADHYA BHARAT Agri Expo AND SOLAR, MILLETS FESTIVAL

## कृपया संपर्क करें

+91 7771020371/7771020354 | Email : madhyabharatagriexpo@gmail.com

Madhyabharat Agriexpo | madhyabharatagriexpo | Madhyabharat Agriexpo

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक राजू सिंह गुर्जर द्वारा कंचन ऑफसेट, चिंतामणि शास्त्री की गली, सात भाई की गोठ, लक्कडखाना,ग्वालियर, म.प्र.-474001 से मुद्रित एवं ई.एम.-120, कुशवाह मार्केट के पास, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म.प्र.-474005 से प्रकाशित। संपादक : राजू सिंह गुर्जर ( मोबा. 9425101132, 0751-4070802 )